देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
October 2025
Vol.-22, Issue-4

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

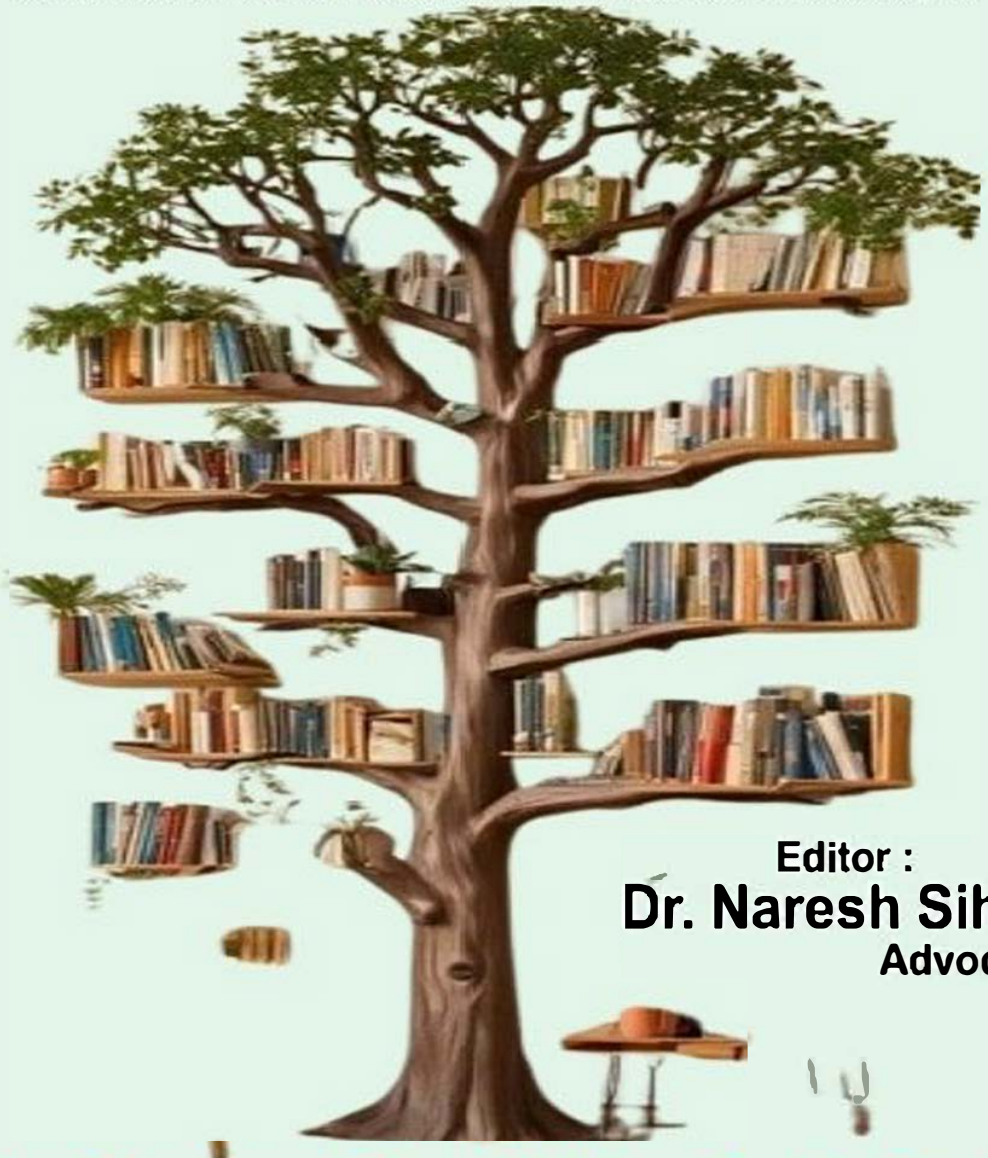

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 **ISSUE-4** **(अक्टूबर 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमणिका-अक्टूबर 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	10-10
2.	भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना : वेद, पुराण और उपनिषदों के सन्दर्भ में	डॉ० अरुण कुमार सिंह	11-15
3.	Education and National Values: Bridging Tradition and Modernity	Kuldeep Singh Tandwal	16-20
4.	किन्नरों की व्यथा और कानूनी अधिकार	डॉ0 बॉबी यादव, रेनु	21-26
5.	भारतीय समाज में महिलाओं की बदलती भूमिका: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण	Dr.Deepa Bharti	27-30
6.	A Brief Ecocritical Study of Contemporary Indian English Poetry	Sumit Dameh	31-34
7.	सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में निहित राष्ट्रीय चेतना एवं स्त्री विमर्श	अमरीन याक़ूब	35-38
8.	सुशीला टाकभौरे की कहानी में स्त्री चेतना	अंजना भारती	39-44
9.	नयी कहानी आंदोलन में पाठकों के योगदान का अध्ययन	कौसर साबिदा सुलताना	45-50
10.	Digital India and Panchayati Raj: Transforming Rural Administration in Jharkhand	Jyoti Bala	51-55
11.	भारतीय लोकतांत्रिक ढाँचे में चुनावी फ्रीबी प्रचलन का समाज पर पड़ता सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव : एक विश्लेषण	देवेन्द्र राय	56-61
12.	पंचवटी का काव्य-शिल्प	डॉ0 स्नेहलता कुमारी	62-65
13.	वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में पारिस्थितिक समस्याएँ	अनिताराणी आर	66-69
14.	Role of Women in the Economic System of Ancient India	Damini Kumari	70-73
15.	ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में प्रतिरोध के स्वर	डॉ. चन्दीर पासवान	74-77
16.	तुलसीदास कृत्त 'गीतावली' और चन्दा झा कृत्त मिथिला भाषा	डॉ. नूतन कुमारी	78-82

	रामायण में सीता वनवास प्रसंग : एक तुलनात्मक अध्ययन		
17.	भारत के आर्थिक विकास पर डिजिटलाइजेशन का प्रभाव	प्रो. राजेश बारिया	83-85
18.	प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में सुदूर पूर्व एवं चीनी मार्ग की निर्णायक भूमिका	दामिनी कुमारी, प्रो. जया कुमारी आर्यन	86-90
19.	अल्पायु विवाह एक सामाजिक समस्या; न्यीशी जनजाती के विशेष संदर्भ में	डॉ. डूरी शांति	91-93
20.	हिन्दी उपन्यासों में स्त्रियों का बदलता स्वरूप और पति-पत्नी संबंध (विशेष संदर्भ : आर्थिक उदारीकरण के पश्चात हिन्दी के प्रमुख उपन्यास)	उर्वशी कुमारी	94-98
21.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित मातृभाषा में विद्यालयी शिक्षा की प्रासंगिकता	श्रीमती ऊषा देवी	99-103
22.	'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में लोकगीत : एक सांस्कृतिक और सामाजिक विमर्श	दिव्या रानी	104-107
23.	देवगायक का संघर्षमय जीवन	डॉ . कृष्ण कान्त भट्ट	108-112
24.	झारखण्ड की संस्कृति से लोक को जोड़ती जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ	ईशप्रिया किंडो	113-116
25.	फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद के आधार पर 'आपका बंटी' उपन्यास का अध्ययन	रेवा महरा	117-121
26.	उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	रश्मि बी. जे.	122-126
27.	इंद्रा स्वप्न की कहानी 'दोहे के भाव' में बालमन	डॉ. कुलदीप	127-130
28.	तरुण भटनागर के उपन्यास ‘बेदावा’ में किन्नर समाज	मनीषा देवी, डॉ. कृष्णा जून	131-134
29.	झारखण्ड में मातृभाषा आधारित शिक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	मुन्ना राम महतो	135-141
30.	علی اکبر آمبوری : "برف سی اجلی" کی افسانوی جمالیات	ڈاکٹر میمونہ بیگم سرڈگی	142-149
31.	उत्तराखण्ड की लोककलाएँ	श्रीमती मंजिता रतूड़ी	150-153

32.	भारत की जनजातिय भाषाएं और साहित्य संस्कृति की प्रासंगिकता (छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले में निवासरत गोंड जनजाति के संदर्भ में)	डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव	154-157
33.	महावाक्य के अपरोक्षावबोध की आवश्यकता एवं महत्त्व (वेदान्ताचार्य सर्वज्ञात्ममुनि के कृतित्व के विशेष परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. ममता स्नेही	158-161
34.	अद्वैतवेदान्त दर्शनानुसार आत्मतत्त्व विवेचन	डॉ. सत्यमुदिता स्नेही	162-165
35.	कुमाउँनी काव्य में लोक विश्वास एवं रूढ़ियों का अध्ययन	गरिमा पंत त्रिपाठी	166-170
36.	समुदायिक सशक्तिकरण में संवाद /समाधान का महत्व	डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव	171-174

संपादकीय

वर्तमान समय में जब साहित्यिक पत्रिकाएँ बाजारवाद, क्लिक संस्कृति और प्रचार-प्रसार की होड़ में अपनी मौलिकता खोती जा रही हैं, 'बोहल शोध मंजूषा' लगातार उस परंपरा को आगे बढ़ा रही है जो रचनाशीलता को सम्मान देती है, शोध को प्रामाणिकता प्रदान करती है और अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक बनाती है। इस अंक में प्रकाशित रचनाएँ केवल साहित्यिक स्वाद की पूर्ति नहीं करतीं, बल्कि पाठक के मन में सवाल जगाती हैं — समाज, समय, व्यक्ति और परिवर्तन के प्रति।

इस बार के अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें समकालीन साहित्यकारों के साहित्य पर केन्द्रित कुछ शोध आलेखों को स्थान दिया गया है, जिनमें उनके लेखन में समाज, स्त्री, किसान, और पर्यावरण जैसे विषयों के यथार्थ को गहराई से विश्लेषित किया गया है। साहित्यकारों का साहित्य न केवल यथार्थ का दस्तावेज है, बल्कि वह जन-मन की पीड़ा, संघर्ष और उम्मीद का भी प्रतीक है। उनके लेखन पर किए गए शोध आज के युवा शोधार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होंगे।

संपादकीय दृष्टि से यह अंक केवल साहित्यिक प्रस्तुति नहीं, बल्कि **विचार की प्रयोगशाला** भी है। इसमें समाजशास्त्रीय, दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से रचनाओं की विवेचना की गई है। यह पत्रिका केवल प्रशंसा की नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण आलोचना की भी समर्थक है — क्योंकि आलोचना ही साहित्य की आत्मा को जीवित रखती है।

हम यह भी स्वीकार करते हैं कि वर्तमान समय में हिंदी साहित्य के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं — पाठक वर्ग का सीमित होना, प्रिंट माध्यम का घटता प्रभाव, और सोशल मीडिया पर साहित्य की अव्यवस्थित उपस्थिति। इन सबके बावजूद यह प्रसन्नता का विषय है कि 'बोहल शोध मंजूषा' के पाठकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। शोधार्थी, अध्यापक, विद्यार्थी और रचनाकार — सभी इस मंच को एक सशक्त संवाद स्थल के रूप में स्वीकार कर चुके हैं। यह विश्वास हमारी सबसे बड़ी पूँजी है।

हमारे इस अंक में प्रकाशित समीक्षाएँ और कविताएँ न केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं, बल्कि सामाजिक चेतना की दस्तक भी हैं। वे हमें सोचने पर विवश करती हैं कि क्या हम अब भी मनुष्यता के प्रति उतने ही संवेदनशील हैं जितने हमारे पूर्वज थे? क्या तकनीकी विकास के इस युग में हमने अपने भीतर के 'मनुष्य' को बचा पाया है? साहित्य का उत्तर है — "हाँ, यदि हम पढ़ना और महसूस करना नहीं छोड़ते।"

अंततः, यह अंक उन सभी रचनाकारों, समीक्षकों और शोधार्थियों को समर्पित है जिन्होंने अपने लेखन से समाज में संवेदना, विचार और आशा का दीप जलाए रखा है। 'बोहल शोध मंजूषा' का प्रयास रहेगा कि वह आने वाले अंकों में भी इस वैचारिक परंपरा को और अधिक सशक्त बनाए, नयी प्रतिभाओं को मंच प्रदान करे, और हिंदी साहित्य को उसकी गरिमा तथा गहराई के साथ प्रस्तुत करती रहे।

हम अपने पाठकों, सहयोगियों और सभी लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इस यात्रा को सार्थक बनाया। यह अंक केवल एक प्रकाशन नहीं, बल्कि एक साझा चेतना की दस्तावेज़ी अभिव्यक्ति है — जहाँ हर शब्द मनुष्य के मन से निकला है और मनुष्य के मन तक पहुँचने की आकांक्षा रखता है।

सादर,

डॉ.नरेश सिहाग 'एडवोकेट'

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना : वेद, पुराण और उपनिषदों के सन्दर्भ में

डॉ० अरुण कुमार सिंह
प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, आजमगढ़, उ०प्र०

सारांश-

भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना का स्वर न केवल दार्शनिक ग्रंथों में सिद्धांत रूप में मिलता है, अपितु व्यवहारिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में उसकी झलक देखी जा सकती है। वेदों में प्रकृति को देवत्व का दर्जा प्राप्त है। ऋग्वेद में पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल तथा आकाश को पूजनीय माना गया है। उपनिषदों में प्रकृति के साथ एकात्मता की अवधारणा प्रतिपादित की गई है. जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम तथा यत्र विश्वं भवत्येकनीडम जैसे सूत्र प्रकृति और मानव के परस्पर संबंधों को स्थापित करते हैं। पुराणों में पर्यावरण संतुलन बनाए रखने हेतु वनों, नदियों, पर्वतों एवं जीव-जंतुओं की महत्ता का वर्णन मिलता है। इस शोध लेख में भारतीय दर्शन के इन मूल स्रोतों में प्रतिपादित पर्यावरणीय चेतना का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रंथों में प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्धन के विचार निहित थे और उनका आज के पर्यावरणीय संकटों में समाधानकारी स्वरूप है।

मुख्य शब्द- भारतीय दर्शन, पर्यावरण चेतना, वेद, उपनिषद, पुराण, प्रकृति संरक्षण लोक कल्याण, संसार, वैश्विक एकता आदि।

प्रस्तावना-

वर्तमान समय में सम्पूर्ण मानव जाति गहरे पर्यावरणीय संकट से जूझ रही है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, औद्योगीकरण की तीव्र गति, नगरीकरण, प्रदूषण और जैव विविधता का तीव्र हास जैसी समस्याएँ आज न सिर्फ भौतिक अस्तित्व पर बल्कि सभ्यता और संस्कृति की निरंतरता पर भी गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रही हैं। पर्यावरणीय असंतुलन ने वैश्विक स्वास्थ्य, आर्थिकी और सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे सतत विकास और मानवीय कल्याण की अवधारणा संकट में पड़ गई है। इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि भारतीय चिंतन परम्परा में हजारों वर्षों पूर्व ही प्रकृति के संरक्षण और संतुलन पर विशेष बल दिया गया था।

भारतीय 'दर्शन' शब्द का अर्थ और इसके तत्व चिंतन के वास्तविक आधार अत्यन्त प्राचीन है। यह शब्द प्रयोग में कब से आया और इसका वास्तविक अर्थ क्या है, इस बात पर भी मतैक्य नहीं है। दासगुप्त का कहना है- "यथार्थ तत्त्व-विषयक ज्ञान के अर्थ में दर्शन शब्द का प्रयोग सबसे पहले कणाद के वैशेषिक-सूत्र' में पाया जाता है जो मेरे मतानुसार बुद्ध-पूर्व काल की रचना है।" दर्शन का अर्थ इसी प्रकार अन्य विद्वानों और इतिहासकारों ने दिया। किन्तु इस बात में संदेह नहीं है कि दर्शन का अर्थ तत्त्व चिंतन किया जाने से पहले से ही इस देश में तत्त्व-चिंतन सम्बन्धी सम्प्रदाय सम्प्रदायान्तर विद्यमान थे, जिसकी सीमा सिर्फ यहीं तक नहीं मिलती है, वह अत्यन्त विराट है, जिसमें दुनिया भर के सभी विषय उपविषय का निरूपण दिखायी देता है।

भारतीय दर्शन में पर्यावरण को केवल संसाधन के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे पवित्र सत्ता, जीवित इकाई और दैवीय चेतना के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। वेदों में पृथ्वी को माता और आकाश को पिता कहा गया है तथा समस्त पंचमहाभूतों के प्रति श्रद्धा का भाव विकसित किया गया। ऋग्वेद में पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और वनस्पतियों की महत्ता का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है, जो दर्शाता है कि पर्यावरणीय चेतना भारतीय जीवनदर्शन का मूल अंग रही है। उपनिषदों में प्रकृति के साथ तादात्म्य का विचार अत्यन्त गहन रूप से उपस्थित है। ईशावास्यमिदं सर्वम् जैसे उपनिषद वाक्य सम्पूर्ण जगत को ईश्वर का ही स्वरूप मानते हैं, जिससे मनुष्य में उपभोग नहीं, संरक्षण की चेतना विकसित होती है। छांदोग्य और तैत्तिरीय उपनिषद में प्रकृति के पंचमहाभूतों को परम तत्व से उत्पन्न माना गया, जिससे इनका अनादर पाप तुल्य माना गया। पुराणों में भी पर्यावरण संरक्षण की भावना को विविध आख्यानों और प्रसंगों के माध्यम से प्रसारित किया गया। विशेष रूप से मत्स्य, वराह, कूर्म अवतारों में जल और भू-रक्षा का संदेश प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादित किया गया। आज जब आधुनिक विकास मॉडल प्रकृति के विनाश का कारण बन रहे हैं, तब भारतीय दर्शन में निहित यह पर्यावरणीय दृष्टिकोण अत्यन्त प्रासंगिक हो उठा है। भारतीय परम्परा में सम्पूर्ण पृथ्वी को कुटुम्ब के रूप में देखने की भावना सांस्कृतिक आदर्श भी है और वर्तमान संकट का समाधान भी।

शोध प्रश्न-

. भारतीय दर्शन के किन प्रमुख ग्रंथों में पर्यावरण चेतना का सर्वाधिक स्पष्ट उल्लेख मिलता है?

.वेदों में प्रकृति और मानव के परस्पर संबंध का स्वरूप क्या है और उसे किस प्रकार देवत्व से जोड़ा गया है?

. उपनिषदों में प्रकृति संरक्षण की अवधारणाएँ किन तत्त्वों पर आधारित हैं और उनका दार्शनिक आधार क्या है?

.पुराणों में वनों, नदियों, पर्वतों तथा जीव-जंतुओं के प्रति संरक्षण और श्रद्धा के विचार किस प्रकार व्यक्त हुए है?

.भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण की तुलना आधुनिक पर्यावरणीय चिन्तन से करने पर कौन से साम्य और भेद प्रकट होते हैं?

.आज के पर्यावरण संकट की चुनौती का सामना करने में भारतीय दर्शन के विचार कितने उपयोगी और प्रासंगिक है?

शोध का उद्देश्य-

.भारतीय दार्शनिक ग्रंथों में प्रकृति और पर्यावरणिक दृष्टि का विश्लेषण करना।

.प्राचीन भारतीय चिंतन परम्परा में निहित पर्यावरणीय चेतना के तत्त्वों को पहचान कर उनके दार्शनिक आधार को स्पष्ट करना।

.पर्यावरणीय संरक्षण के संदर्भ में वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों की शिक्षाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

.भारतीय पर्यावरण दृष्टिकोण की आधुनिक पर्यावरणीय विचारधारा से तुलना कर उनके सामंजस्य और भेदों को उजागर करना।

.समकालीन पर्यावरण संकट के समाधान में भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।

.पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और जीवन दृष्टि की भूमिका को रेखांकित करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

शोध पद्धति-

इस शोध-पत्र में ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा पाठ-आधारित पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध का मुख्य उद्देश्य भारतीय दर्शन के मूल ग्रंथों में निहित पर्यावरण चेतना का गहन विश्लेषण करना तथा उनके सिद्धांतों की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता का परीक्षण करना है। प्राथमिक स्रोत में यजुर्वेद, ऋग्वेद और अथर्ववेद के पर्यावरण से संबंधित सूक्त, ईशावास्य, तैत्तिरीय और छांदोग्य उपनिषद के मंत्र तथा मत्स्य, वराह एवं भागवत पुराण के प्रसंगों

को आधार बनाकर उनके तात्त्विक और दार्शनिक अर्थ स्पष्ट किए गए। साथ ही द्वितीयक स्रोत के रूप में विविध विद्वानों, टीकाकारों एवं समकालीन शोधकर्ताओं द्वारा रचित पुस्तकों, निबंधों एवं आलोचनात्मक लेखों का सन्दर्भ लिया गया। इन द्वितीयक स्रोतों ने प्राचीन विचारधारा को आधुनिक दृष्टिकोण से जोड़ने में सहायता प्रदान की।

शोध में तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से प्राचीन भारतीय पर्यावरण चेतना और समकालीन पर्यावरणीय चिन्तन जैसे सतत विकास और जैव विविधता संरक्षण के बीच समानताओं और भिन्नताओं को स्पष्ट किया गया। ग्रंथों में वर्णित प्रतीकों, उपमाओं एवं अवधारणाओं का दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण कर उनकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अर्थ खोजने का प्रयास किया गया। प्रस्तुत विचारों को उनके वास्तविक संदर्भ में व्याख्यायित किया गया ताकि पर्यावरण चेतना की अंतःप्रेरणा को रेखांकित किया जा सके। अंततः इस शोध का उद्देश्य यह परीक्षण करना है कि प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण वर्तमान पर्यावरण संकट की चुनौतियों में किस सीमा तक उपयोगी और समाधानपरक हो सकता है।

वेदों में पर्यावरणीय चेतना-

वेदों में पर्यावरण चेतना का स्वर अत्यंत सशक्त और समग्र दृष्टि वाला है। ऋग्वेद में पृथ्वी को माता माना गया है, जो सम्पूर्ण जीवमात्र को पोषण, आश्रय और आधार प्रदान करती है। पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी की समृद्धि, स्थिरता और पवित्रता की कामना करते हुए कहा गया है "माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः, अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं।"[1] इस मंत्र से स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषियों के लिए धरती मात्र संसाधन नहीं, बल्कि आत्मीय सत्ता थी। इसी सूक्त में पर्वतों, नदियों, वनों, औषधियों एवं वनस्पतियों का वर्णन कर उनके संरक्षण की प्रेरणा दी गई है। ऋषियों ने यह कामना की है कि पृथ्वी की धरोहरें नष्ट न हों और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें। ऋग्वेद के अग्नि सूक्त में अग्नि को पावकः' एवं शुद्धिकारक' कहा गया है। अग्नि को केवल यज्ञ की शक्ति ही नहीं, बल्कि जीवनदायिनी ऊर्जा माना गया है। ऋषि अग्नि से प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे लिए पोषक, हितकारी और कल्याणकारी बने। यहां स्पष्ट है कि प्राकृतिक शक्तियों के प्रयोग में संयम, आदर और मर्यादा अनिवार्य है।

यजुर्वेद में भी प्रकृति के प्रति गहन श्रद्धा का सन्देश मिलता है। यजुर्वेद के मंत्रों में वनस्पतियों को 'औषधीनां जननीः' कहा गया है. अर्थात् वे सभी रोगों का निवारण करने वाली हैं। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है- 'योषधीः पृथिवीम् अप्येतु", अर्थात् औषधियाँ पृथ्वी को आवृत कर उसका कल्याण करें।[1] इससे स्पष्ट होता है कि वनस्पति जीवन की आधारशिला मानी गई है और उनके रक्षण को नैतिक कर्तव्य कहा गया है। इसी प्रकार जल के संदर्भ में यजुर्वेद में अनेक मंत्र हैं, जहाँ उसकी शुद्धता, पवित्रता एवं अक्षुण्णता की कामना की गई है। जल को 'आपः' कहकर देवी स्वरूप में प्रतिष्ठित किया गया है और इसके माध्यम से शरीर व मन की शुद्धि का आह्वान किया गया है। वेदों में पर्यावरण चेतना केवल उपदेशात्मक विचार तक सीमित नहीं रही, बल्कि जीवन के व्यवहार में भी उसे अनिवार्य अंग माना गया। ऋषियों ने प्रकृति को देवत्व का प्रतीक मानकर उसमें अपार श्रद्धा प्रकट की। ऋग्वेद के सूक्तों में कहा गया है कि पृथ्वी और आकाश का सामंजस्य ही जीवन का मूल आधार है। यह दृष्टिकोण आधुनिक काल के 'सस्टेनेबल डेवलपमेंट' की अवधारणा से कहीं अधिक समावेशी और जीवन्त प्रतीत होता है।[1] अतः वेदों का यह पर्यावरणीय दर्शन आज के संकटग्रस्त समय में विशेष प्रासंगिक हो उठता है। यह चेतना हमें प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व बोध और सह-अस्तित्व की भावना सिखाती है।

उपनिषदों में पर्यावरणीय चेतना-

उपनिषदों में प्रकृति के प्रति एक अद्वितीय एकात्म दृष्टि का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वर का ही स्वरूप माना गया है। ईशावास्य उपनिषद का उद्घोष- "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत[1] अर्थात यह जगत, इसके सभी प्राणी, वनस्पतियाँ, नदियाँ और पर्वत सब ईश्वर की सत्ता से व्याप्त हैं। इस दृष्टिकोण में मनुष्य और प्रकृति का द्वैत समाप्त होकर सह-अस्तित्व और परस्पर निर्भरता की चेतना प्रकट होती है। यह भाव पर्यावरण के संरक्षण की गहन प्रेरणा देता है, क्योंकि यदि सम्पूर्ण प्रकृति को दिव्य मान लिया जाए तो उसका शोषण करना नैतिक रूप से अनुचित और पाप तुल्य हो जाता है। ईशावास्य उपनिषद आगे कहता है कि मनुष्य को उपभोग में संयम रखना चाहिए और केवल आवश्यकता के अनुसार संसाधनों का उपयोग करना चाहिए। यह विचार आज के भोगवादी युग में विशेष प्रासंगिक है, जहाँ अनियंत्रित उपभोग ने पर्यावरण संकट को जन्म दिया है। उपनिषद की यह शिक्षा प्रकृति के साथ आंतरिक तादात्म्य स्थापित करने का संदेश देती है. जो वर्तमान समय में सतत विकास की अवधारणा का भी आधार हो सकता है।

छांदोग्य उपनिषद में पर्यावरण के पंचमहाभूत सिद्धांत का विस्तार से प्रतिपादन हुआ है। इसमें बताया गया है कि सम्पूर्ण जगत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों से उत्पन्न हुआ है।[1] उपनिषद में कहा गया है कि इन तत्वों का संतुलन ही जीवन की आधारशिला है। यदि इनमें कोई असंतुलन उत्पन्न होता है, तो सम्पूर्ण सृष्टि संकट में पड़ जाती है। यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकी (Ecology) के वैज्ञानिक सिद्धांतों से अद्भुत साम्यता रखता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन की महत्ता पर बल देता है। छांदोग्य उपनिषद में अन्न, जल और तेजस (ऊर्जा) को भी पंचमहाभूतों से उत्पन्न माना गया है. जिससे स्पष्ट होता है कि जीवन के सभी आयामों का सीधा संबंध प्रकृति से है।[1] इससे हमें पता चलता है कि पर्यावरण को संरक्षित करना केवल बाहरी कार्य नहीं, बल्कि आत्मचेतना और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का भी विषय है। उपनिषदों की यह एकात्म दृष्टि मानव और प्रकृति के बीच ऐसी सहजीविता की स्थापना करती है, जिसमें दोनों का कल्याण सुनिश्चित होता है।

पुराणों में पर्यावरणीय चेतना-

पुराण साहित्य में पर्यावरणीय आदर्श अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पुराणों ने प्रकृति को मात्र भौतिक सत्ता न मानकर उसमें दैवी चेतना और पावनता का समावेश किया। विष्णु के दशावतारों में मत्स्य, कूर्म और वराह अवतार विशेष रूप से पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक माने जाते हैं। मत्स्य अवतार का प्रसंग जल की पवित्रता और उसके संरक्षण की गाथा प्रस्तुत करता है। इसमें कहा गया है कि महाप्रलय के समय भगवान ने मत्स्य का रूप धारण कर वेदों और समस्त जीवधारियों को सुरक्षित किया।

"यदा समुद्रेण धृता मही च वरेण सत्वानां हिताय भूयः।
वराह रूपं समुपेत्य विष्णुरुदधिमध्ये विन्यदभूत् पृथिव्याम ॥"[1]

यह प्रसंग पृथ्वी के संरक्षण और उसके सम्मान का संदेश देता है। कूर्म अवतार में विष्णु ने कूर्म (कछुआ) रूप में मंदार पर्वत को अपने पृष्ठ पर धारण कर समुद्र मंथन कराया। यह आख्यान प्रतीक रूप में जल संरक्षण और जीव-मूल्यों की रक्षा की प्रेरणा देता है। वराह अवतार में विष्णु ने पृथ्वी को जल के गर्भ से उबार कर पुनः स्थापित किया, जिससे स्पष्ट होता है कि पृथ्वी की रक्षा को धर्म का कार्य माना गया। कूर्म अवतार में विष्णु ने कूर्म रूप में मंदार पर्वत को अपने कंधों पर धारण कर समुद्र-मंथन कराया।[2] इस प्रसंग में पर्वत और समुद्र दोनों के संरक्षण तथा सह-अस्तित्व का संदेश अंतर्निहित है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पारिस्थितिकी के विचारों से अद्भुत साम्यता रखता है।

---

[1] ईशावास्य उपनिषद, मन्त्र – 1

[2] मत्स्य पुराण: अध्याय -249, कूर्म अवतार

पुराणों में वनों, नदियों और पर्वतों की महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है। स्कंद पुराण में कहा गया है कि वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति अपने पूर्वजों को तृप्त करता है और देवताओं को प्रसन्न करता है। पद्मपुराण और भागवत पुराण में वनों की उपादेयता तथा वनस्पतियों के महत्व पर बल दिया गया है। नदियों को माता का दर्जा दिया गया-गंगा, यमुना, गोदावरी आदि को दैवी रूप में प्रतिष्ठित कर उनकी शुद्धता और संरक्षण का आदर्श स्थापित किया गया। पर्वतों के संदर्भ में हिमालय को देवात्मा कहा गया है, जिसका अर्थ है-देवस्वरूप आत्मा। इस दृष्टि से पर्वत केवल भू-आकृति नहीं, बल्कि अध्यात्म का आधार और पर्यावरण का रक्षक माने गए।[1] पुराणों में अनेक प्रसंग इस विचार को पुष्ट करते हैं कि प्रकृति की प्रत्येक सत्ता मनुष्य के जीवन और संस्कृति का अनिवार्य अंग है। उनका शोषण न केवल अनैतिक, बल्कि अधार्मिक भी माना गया। इन पुराणीय आख्यानों और मान्यताओं से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय मनीषा में पर्यावरण संरक्षण और जैव विविधता का आदर एक सुदृढ़ सांस्कृतिक मूल्य था। यह आदर्श आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जब वैश्विक पर्यावरण संकट के समाधान के लिए ऐसे दार्शनिक प्रेरणा स्रोतों की आवश्यकता बढ़ गई है।

निष्कर्ष-

वेद, उपनिषद और पुराणों में निहित पर्यावरण चेतना का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय दर्शन में प्रकृति को केवल जीवन निर्वाह का साधन न मानकर एक पूजनीय सत्ता, सह-अस्तित्व की साझीदार और आत्मीय तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। वैदिक सूक्तों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को देवतुल्य मानते हुए उनके संरक्षण की प्रेरणा दी गई। उपनिषदों में सम्पूर्ण जगत को ईश्वर का ही स्वरूप मानकर पर्यावरण के प्रति श्रद्धा और संयम की भावना का प्रचार हुआ। पुराणों में विविध आख्यानों, विशेष रूप से मत्स्य, वराह और कूर्म अवतारों के माध्यम से पृथ्वी, जल, पर्वत और जीव-जगत की रक्षा को धर्म का कार्य बताया गया। आज जब विश्व गहरे पर्यावरणीय संकट से जूझ रहा है, तब भारतीय दर्शन की यह पर्यावरणीय दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक हो उठी है। प्राचीन भारतीय चिंतन हमें सिखाता है कि प्रकृति के साथ तादात्म्य और सहजीवन की भावना से ही पर्यावरण संकट का समाधान सम्भव है। आधुनिक पर्यावरण नीति और विज्ञान की उपलब्धियों के साथ यदि इस आत्मीय दृष्टि का समन्वय किया जाए, तो यह सतत विकास और जीवन के सभी स्तरों पर संतुलन स्थापित करने में सहायक हो सकता है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन की पर्यावरण चेतना न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि वह आज के समय की अनिवार्य आवश्यकता भी है। इसका पुनर्पाठ और व्यवहारिक क्रियान्वयन ही मानवता को पर्यावरणीय संकट से उबारने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची-

1. एस. एन. दासगुप्त ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, खण्ड-1, पृष्ठ-68, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, सं. 1922-1925.
2. ऋग्वेद 10:18:10.
3. यजुर्वेद 5.23-औषधिक सूक्त।
4. S.N Mishra: Environment in Ancient Indian Thought, P-22-27, Concept Publishing, Delhi, Editon-2002.
5. ईशावास्य उपनिषद, मंत्र 1.
6. छांदोग्य उपनिषद अध्याय-6. पंचमहाभूत सिद्धांत।
7. स्वामी रणछोड़दास उपनिषदों का पर्यावरण दृष्टिकोण, पृष्ठ-45-52, मोतीलाल बनारसीदास प्रेस,
8. सं. 2009.
9. विष्णु पुराण 1.4.4.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 16-20
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Education and National Values: Bridging Tradition and Modernity

Kuldeep Singh Tandwal
Assistant Professor,
Department of Education,
H.V.M. (P.G.) College, Raisi, Haridwar (Uttarakhand)

Abstract
Education serves not only as a means of knowledge transfer but also as a vital tool for instilling cultural identity and values. As societies evolve, educational systems must adapt to incorporate traditional values while preparing students for the challenges of a globalized world.

Historically, education has emphasized communal knowledge and cultural heritage, but modern curricula often prioritize skills such as critical thinking and technological proficiency, sometimes at the expense of traditional practices. This research paper advocates for an integrative approach that blends traditional knowledge with contemporary educational practices. Strategies include implementing culturally relevant pedagogy, promoting project-based learning, and developing interdisciplinary curricula that highlight the significance of national values.

Ultimately, this research underscores that effective education can cultivate a strong sense of identity and belonging while equipping individuals with the skills necessary for success in a dynamic world. By harmonizing traditional values with modern demands, education can play a transformative role in promoting social cohesion and cultural continuity, ensuring that future generations remain rooted in their heritage while thriving in an ever-changing landscape.

Key words: Education, National values, Tradition, Modernity, Cultural identity, Moral education, Heritage, Innovation, Curriculum development, Value-based education, Globalization, Ethics

Introduction

Education is a cornerstone of societal development, shaping not only individual capabilities but also the collective values and identity of a nation. In the context of globalization and rapid technological advancement, the challenge lies in balancing the preservation of traditional values with the demands of a modern educational framework. National values—those shared beliefs and ideals that bind communities—play a crucial role in fostering social cohesion and cultural identity. As educational systems evolve, it becomes essential to explore how they can effectively bridge the gap between tradition and modernity.

Historically, education has served as a vital means of transmitting cultural heritage, instilling shared norms and ethics through community engagement and experiential learning.

However, contemporary educational practices often prioritize critical thinking, technological proficiency, and global perspectives, which can inadvertently marginalize traditional knowledge and values. This tension raises important questions: How can education honour its role as a custodian of culture while preparing students for a dynamic, inter connected world?

To address this challenge, it is imperative to integrate traditional knowledge into modern curricula, promoting culturally relevant pedagogy and interdisciplinary approaches. Engaging communities in the educational process can foster collaboration and ensure that curricula reflect local customs and values. By examining successful models from various countries, this paper aims to highlight effective strategies for harmonizing traditional values with modern educational practices.

The Role of Education in Shaping National Values

Education plays a pivotal role in shaping national values, serving as a primary vehicle for transmitting cultural heritage, social norms, and ethical standards across generations. As societies evolve, the educational system becomes crucial in instilling a sense of identity and belonging among citizens, enabling them to navigate both local and global contexts.

Historical Context

Historically, education has been the cornerstone of cultural transmission. In many societies, traditional forms of education, such as storytelling and communal gatherings, were essential in imparting values and beliefs. These practices not only preserved local customs but also fostered a sense of community and shared identity. For instance, Indigenous education systems emphasize oral traditions and community involvement, ensuring that cultural values are deeply rooted in the younger generation.

In contemporary settings, formal education systems have evolved to include structured curricula that address a wide range of subjects. However, this transition poses challenges in maintaining the balance between modern educational demands and the preservation of traditional values. While critical thinking, technological proficiency, and global awareness are vital in today's educational landscape, it is equally important to integrate national values into these frameworks. Doing so fosters a sense of civic responsibility, ethical behaviour, and social cohesion.

Curricula that incorporate national values can help students understand their cultural heritage and its relevance in modern society. Subjects like history and social studies provide opportunities for students to learn about their country's achievements, struggles, and core values, thereby nurturing a sense of pride and identity. Additionally, incorporating ethics education helps in still virtues such as respect, integrity, and empathy, which are essential for responsible citizenship.

Furthermore, community engagement in education enhances the relationship between schools and local cultures. Partnerships with community organizations, local leaders, and families can enrich the educational experience, allowing students to connect their learning with real-world applications of national values. Programs that involve students in community service or cultural events encourage active participation and reinforce the importance of contributing to society.

In conclusion, education is instrumental in shaping national values by preserving cultural heritage, fostering civic responsibility, and promoting ethical behaviour. By effectively integrating traditional values into modern curricula and engaging communities, educational systems can cultivate a strong sense of identity and belonging. This holistic approach ensures that future generations are not only equipped with the skills needed for the modern world but also grounded in the values that define their nation.

Evolution of Educational Frameworks

As societies evolved, so did their educational systems. The advent of formal schooling introduced standardized curricula and pedagogical approaches aimed at fostering individual achievement. However, this shift often came at the expense of traditional knowledge and values. Modern education increasingly prioritizes critical thinking, technological proficiency, and global perspectives, sometimes side-lining the cultural heritage that shapes national identity.

In response to this evolution, many educational systems have recognized the need to integrate traditional values into modern curricula. This integration not only enriches the educational experience but also fosters a sense of belonging and identity among students.

Bridging Tradition and Modernity

Integrating Traditional Knowledge

To bridge the gap between tradition and modernity, educational frameworks must actively incorporate traditional knowledge. This can be achieved through several approaches:

1. **Culturally Relevant Pedagogy**: Teachers can utilize culturally relevant materials and teaching methods that resonate with students' backgrounds. This approach fosters a sense of pride in one's heritage while engaging students in meaningful learning experiences.
2. **Project-Based Learning**: By involving students in community projects that highlight local traditions and practices, educators can create opportunities for experiential learning. Such projects not only preserve cultural heritage but also promote critical thinking and problem-solving skills.
3. **Interdisciplinary Curriculum**: An interdisciplinary approach allows educators to connect traditional knowledge with modern subjects. For instance, integrating Indigenous ecological practices into environmental science classes can highlight the relevance of traditional knowledge in addressing contemporary challenges.

Curriculum Development

Curriculum development is essential in creating a balanced educational framework. Effective curricula should reflect both traditional values and modern skills. Key strategies include:

- **Ethics and Values Education**: Schools should prioritize ethics and values education to in still a sense of responsibility and citizenship. Teaching students about national values, such as respect, integrity, and community service, helps them connect with their cultural roots while preparing them for active participation in society.
- **Language and Literature**: Incorporating local languages and literature into the curriculum can help preserve cultural heritage. Language is a key component of identity, and teaching students in their mother tongue can enhance their connection to their culture.
- **History and Social Studies**: A robust history and social studies curriculum that emphasizes national values, historical milestones, and cultural achievements can foster a sense of pride and belonging among students.

Challenges to Bridging Tradition and Modernity

Resistance to Change

One of the significant challenges in integrating traditional values into modern education is resistance to change. Some educators, parents, and community members may view modern educational practices as a threat to traditional values. This resistance can manifest in various ways, including reluctance to adopt new curricula or teaching methods.

To address this challenge, it is essential to foster open dialogue within communities. Engaging stakeholders in discussions about the importance of preserving cultural heritage while embracing modernity can help build consensus and support for educational reforms.

Globalization and Cultural Homogenization

The forces of globalization often lead to the homogenization of cultures, posing a significant challenge to preserving local values. As global influences permeate societies, traditional practices and beliefs may be overshadowed by dominant cultures, particularly in education.

To combat this issue, education systems must actively promote local cultures and traditions. This can be achieved by emphasizing the unique aspects of national identity within the curriculum and encouraging students to explore their cultural heritage.

Strategies for Effective Integration

Teacher Training and Professional Development

Educators play a crucial role in bridging tradition and modernity. Therefore, teacher training programs should equip educators with the skills and knowledge necessary to integrate traditional values into modern curricula. Professional development opportunities can focus on culturally responsive teaching methods, project-based learning, and interdisciplinary approaches.

Policy Initiatives

Government policies can significantly influence educational practices. Policymakers should prioritize initiatives that encourage the integration of traditional values into education. This may include funding for programs that promote cultural heritage, supporting bilingual education models, and providing resources for community engagement.

For instance, countries like Canada have implemented policies that recognize and support Indigenous education, promoting the inclusion of Indigenous knowledge and perspectives within mainstream curricula. Such initiatives not only preserve cultural heritage but also foster a more inclusive educational environment.

Community Engagement

Engaging local communities in the educational process is vital for successful integration. Schools should collaborate with community organizations, cultural institutions, and local leaders to create educational programs that reflect the values and traditions of the community. This collaboration can take various forms, including:

- **Cultural Festivals**: Schools can host cultural festivals that celebrate local traditions, allowing students to learn about their heritage in a fun and engaging way.
- **Mentorship Programs**: Connecting students with community elders and cultural practitioners can provide valuable insights into traditional practices and values.
- **Service Learning**: Encouraging students to participate in community service projects can help them understand the importance of civic responsibility and community engagement.

Case Studies

Example 1: Bhutan’s Gross National Happiness and Education

Bhutan's unique approach to education emphasizes Gross National Happiness (GNH) as a guiding principle. This holistic framework integrates traditional values, such as community well-being and environmental conservation, into the education system. Schools in Bhutan focus on fostering compassion, respect, and social responsibility, demonstrating how national values can be harmoniously integrated into modern educational practices.

Example 2: Finland’s Education Model

Finland's education system is renowned for its emphasis on equity, creativity, and holistic development. While it prioritizes modern educational practices, it also values the importance of local culture and traditions. Finnish curricula include subjects that promote national identity and cultural heritage, showcasing how modern educational frameworks can incorporate traditional values.

Conclusion

Education serves as a critical bridge between tradition and modernity, enabling societies to preserve national values while preparing individuals for the complexities of a globalized world. By integrating traditional knowledge into modern curricula, fostering community engagement, and addressing challenges through strategic initiatives, educational systems can create an inclusive and dynamic learning environment.

The preservation of cultural heritage and the promotion of modern skills are not mutually exclusive; rather, they can coexist and enrich one another. As societies navigate the challenges of modernization, it is imperative to recognize the importance of education in shaping values, identity, and community cohesion. By embracing this dual focus, we can foster a future where individuals are not only equipped to succeed in a globalized world but also grounded in their cultural heritage.

References

1. Banks, J. A. (2008). *An Introduction to Multicultural Education*. Pearson.
2. Delors, J. (1996). *Learning: The Treasure Within*. UNESCO Publishing.
3. Freire, P. (1970). *Pedagogy of the Oppressed*. Continuum.
4. Halsey, A. H., Lauder, H., Brown, P., & Stuart, J. (1997). *Educational Theory and Its Impact on Education Policy*. British Journal of Sociology of Education, 18(1), 55-67.
5. UNESCO. (2005). *Education for All: The Quality Imperative*. UNESCO Publishing.
6. Young, M. F. D. (2013). *Curriculum and the Idea of Education*. In P. O. H. J. (Ed.), *the Cambridge Handbook of Curriculum Studies*. Cambridge University Press.
7. Ura, K. (2012). *Gross National Happiness and Education in Bhutan: The National Vision of Holistic Education*. Journal of Bhutan Studies, 26, 2-21.
8. Sahlberg, P. (2011). *Finnish Lessons: What Can the World Learn from Educational Change in Finland?* Teachers College Press.
9. Durkheim, E. (1925). *Education and Sociology*. Free Press.
10. Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
11. Stevenson, H. W., & Sato, H. (2012). *Learning and Achievement in Japan*. In *International Handbook of Research on Teachers and Teaching* (pp. 215-230). Springer.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 21-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नरों की व्यथा और कानूनी अधिकार

डॉ0 बॉबी यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रेनु,
शोधार्थिनी

सारांश- किन्नर समाज के शारीरिक मानसिक दर्द को खत्म करने के लिए केवल कानूनी प्रक्रिया ही काफी नहीं है। बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाना बेहद जरूरी है।उन्हें शिक्षा रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच प्रदान करना जरूरी है।इसके साथ ही उन्हें जानना उनकी अलग-अलग लैंगिकता के साथ उनको स्वीकार करना, अपनेपन का भाव देना, और परिवार समाज में उनके अस्तित्व का निर्माण करना चाहिए। सामान्य लड़कों की तरह उन्हें जीवन जीने के लिए परिवार, समाज,डॉक्टर,तीनों को मदद करनी चाहिए।किन्नरों के गुणों को परख कर उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन, मार्गदर्शन,और मदद करना चाहिए। हालांकि अधिकारों को जमीनी स्तर पर पूरी तरह से लागू करने और समुदाय के सामने आने वाली सामाजिक बाधाओं को दूर करने के लिए अभी भी बहुत काम किया जाना बाकी है ।

बीज शब्द - ट्रांसजेंडर, ट्रांसमैन, किन्नर,ट्रांसवुमन,अनुच्छेद- 14 15 16 19

हमारा समाज दो वर्गों को हमेशा से ही स्वीकारता चला आ रहा है।किंतु इन दो वर्गों के अलावा एक और वर्ग है 'किन्नर वर्ग'जिसे समाज ने कभी स्वीकार नहीं किया है। देखने में ये ट्रांसजेंडर मनुष्य ही है। फर्क बस इतना ही है, कि ये न तो पूर्ण पुरुष होते हैं और न ही पूर्ण स्त्री, जिन्हें हमारा समाज किन्नर, ट्रांसजेंडर, हिजड़ा,नपुंसक कहता है।

हिजड़ा 'अरबी' शब्द है। हिजड़ों की चार शाखाएं होती हैं- बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होते हैं। नीलिमा स्वयं बनते हैं। मनसा स्वेछा से शामिल हो जाते हैं। तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण हिजड़े बन जाते हैं।

नकली हिजड़ों को अबुआ कहते हैं। जबरन बनाए गए हिजड़े को द्विबरा कहते हैं।

पौराणिक कथाओं में भी इनका वर्णन मिलता है। रामायण में राम जब बनवास के लिए निकलते हैं। तब राम को विदा करने के लिए अयोध्या के सभी नगर वासी आए हुए थे। उनमें किन्नर भी थे।

भगवान राम ने उनसे आग्रह किया कि सभी नर और नारी वापस लौट जाए, लेकिन किन्नरों ने खुद को न नर न नारी समझा और श्री राम के वापस आने तक वहीं रुक गए। 14 वर्षों के बाद जब राम वापस लौटे तो किन्नरों को वहीं

पर खुद का इंतजार करते पाया। और भगवान राम यह सब देखकर प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया कि किन्नरों का आशीर्वाद शुभ कार्यों में फलदायक होगा। महाभारत में कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों को जीत मिले इसके लिए अरावन ने अपना खून काली माता को चढ़ा दिया था।अरावन ने मृत्यु से पूर्व शादी करने की इच्छा व्यक्त की थी।तब कृष्ण ने मोहिनी का रूप लेकर अरावन से शादी की।इसी के उपलक्ष्य में तमिलनाडु में हर साल अप्रैल-मई में विल्लुपुरम जिले के कुआँगम गांव के अरावनी मंदिर में 18 दिनों का उत्सव होता है। महाभारत में अर्जुन को वृहन्नला के रूप में रहना पड़ा था। महाभारत में शिखंडी का भी उल्लेख मिलता है। वेद पुराणों में तृतीय पन्थियों के लिए 'क्लीव'शब्द प्रचलित है। वात्स्यायन के कामसूत्र में 'तृतीय प्रकृति' के रूप में 'हिजड़ों' का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में किन्नर की कल्पना'मानवमुखी'पक्षी के रूप में की गई है।आजकल किन्नरों की पीड़ा को कथ्य बनाकर काफी उपन्यास, आत्मकथा और कहानियों का सृजन किया जा रहा है।

निराला ने अपने उपन्यास 'कुल्लीभाट'(1939) में समलैंगिक विमर्श का प्रारंभ कर दिए थे। वृंदावन लाल वर्मा की एकांकी 'नीलकंठ' शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'बहावृत्ति' कुसुमअंसल 'मेरी दृष्टि तो मेरी है'(2018) अनसूया त्यागी' मैं भी औरत हूँ'(2005) महेंद्र भीष्म 'मैं पायल'(2016)मानोवी बंदोपाध्याय की बांग्ला से हिंदी में अनूदित आत्मकथा 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' नीरजा माधव का 'यमदीप'(2002) मोनिका देवी का 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन'

(2018) इन सभी कृतियों में किन्नर जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, तिरस्कार, घृणा व संघर्ष को उकेरा गया है।साहित्यकारों ने किन्नर समाज की दैनिक स्थिति संवेदनओं भावनाओं को चित्रित करने के साथ-साथ किन्नर समुदाय के उत्थान के लिए भी मार्ग सुझाया है।

'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' चित्रा मुद्गल द्वारा रचित पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है।इस उपन्यास का पात्र 'विनोद उर्फ बिन्नी' को किन्नर होने पर उसके माता-पिता लंबे समय तक समाज से छुपा कर रखते हैं। विनोद की मां अपने विनोद को किन्नरों से दूर रखने का बहुत प्रयास करती है लेकिन ज्यों ही किन्नरों को पता चलता है वे उसे अपने साथ ले जाते हैं।और विनोद के पिता घोषणा कर देते कि विनोद का एक्सीडेंट में मृत्यु हो गया है। विनोद किन्नर समुदाय में जाकर सम्मानजनक नौकरी करना चाहता है।वह किन्नरों के पारंपरिक पेसो पर निर्भर नहीं रहना चाहता है। क्योंकि विनोद शिक्षित है।वह एक नेता के यहां पी॰ ए॰ का काम करता है।वह अपने किन्नर समुदाय को जागरूक करना चाहता है। वह अपनी मां से अपनी मनोव्यथा को उजागर करते हुए कहता है कि "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार तिरस्कार की रहीहै उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं ऊपर से विकल्प हीनता की कुंठा ने उन्हें आंधी का तिनका बना दिया है" " जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है। मुझे वह अंधा कुआं लगता है जिसमें सिर्फ सांप बिच्छू रहते हैं। सांप बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे बस इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया है"। वह चुनाव के दौरान अपने संबोधन में किन्नरों की अंतर्चेतना को जगाता है।तभी पूनम जोशी नामक किन्नर का बलात्कार एक नेता का बेटा अपने कुछ दोस्तों के साथ मिलकर कर देता है। नेताओं द्वारा विनोद पर दबाव डाला जाता है कि वह किसी भी तरीके से समझौते के लिए राजी हो जाए लेकिन विनोद प्रण लेता है- कि वह दोषियों को सजा दिलाकर ही रहेगा जिसके कारण उसकी हत्या करता कर दी जाती है।

भगवंत अनमोल का उपन्यास 'जिंदगी 50-50' एक ऐसा उपन्यास है जो हमारे समाज के संवेदनशील और अनदेखे पहलुओं पर प्रकाश डालता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र अनमोल है। इस उपन्यास की कथा तीन अलग-अलग रूपों में चलती है एक वर्तमान की दो अतीत की।अनमोल अपने भाई को किन्नर होने पर घर से लेकर बाहर तक

प्रताड़ित और पल-पल जिल्लत भरी जिन्दगी जीते हुए देखा है। जब अनमोल का पुत्र सूर्या किन्नर के रूप में जन्म लेता है। तब अनमोल प्रण- करता है कि अपने बेटे को अधूरा जीवन नहीं बल्कि सम्मानजनक जीवन जीने का मौका देगा। इस उपन्यास में अनमोल अपने बेटे को मुख्य धारा में लाने के लिए समाज से संघर्ष करता है। हर्षा का जब जन्म होता है ।तब सबसे ज्यादा दुखी उसके पिताजी होते हैं ।यहां तक की हर्षा को उसके पिता जहर देकर मारने की कोशिश करते हैं। लेकिन अनमोल के प्रयास से उसकी मां उसे बचा लेती है। हर्षा की मां ने वह सब झेला था।जो एक किन्नर की मां को झेलना पड़ता है। हर्षा की मां अब समझ चुकी थी कि हर्षा की जिंदगी आसान नहीं होने वाली है।उसकी जिंदगी में कठिनाइयों के पत्थर बीछे है और यह पत्थर समाज के लोगों की संकीर्ण सोच के साथ-साथ खुद उसके पिता ने भी बिछाए हैं।हर्षा के पिता सुबह-सुबह हर्षा के मुंह को देख लेने पर मनहूस थोभडा बोलते थे। हर्षा के एक बार साड़ी पहन लेने पर उसके पिता ने उसे जानवरों की तरह पीटते हुए कह रहा था कि "तुझे ज्यादा शौक है लौंडिया बनने का छोड़ आएंगे हिजड़ो के पास तो यहां वहां छुछुआत भीख मांगत फिरेगा" शिक्षा के क्षेत्र में भी हर्षा को भेदभाव का सामना करना पड़ा था।यहां तक की जिस स्कूल में वह पढ़ने जाता है वहां की शिक्षिका बच्चों को डांटते हुए बोलती है कि अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूंगी" उसके बाद उसके जीवन में अमन आता है जिसके साथ वह सहज महसूस करता है। तथा अपने सारे सुख-दुख अमन को बताता है।एक बार स्कूल से आते वक्त रास्ते में उसका रेप हो जाता है। वह दर्द से कराहते हुए जब अपने पिता को सच्चाई बताता है तो वह उसे ही पीटते हैं।जिससे हर्षा पूरी तरह से टूट जाता है। और वह किन्नर समुदाय में सम्मिलित हो जाता है। हर्षा देहव्यापार कर पेट नहीं भरना चाहता है लेकिन अपने पिताजी की पुश्तैनी जमीन को बचाने के लिए देहव्यापार के दलदल में उतर जाता है ।जमीन को बचाने के लिए उसे 5 लाख तो मिल जाते है।परंतु उसे ऐडस भी हो जाता है।हर्षा अंततः आत्महत्या का निर्णय लेता है और अंतिम समय में वह समाज से प्रश्न पूछता है कि-" किन्नर होना इतना बड़ा अभिशाप क्यों?बस मेरा अधूरापन ही तो ना कैसे-कैसे पल आए इस शरीर ने सब भुगता सब सहा जिस शरीर का लोग मजाक उड़ाते थे उसे ही रात को मन बहलाने का जरिया बना लेते हैं। मेरे शारीरिक अस्तित्व में दोहरापन है लेकिन उसे तथाकथित व्यक्तित्व के दोहरेपन पर मैं थूकती हूं"I

'मैं हिजड़ा,,, मैं लक्ष्मी!'(2015)में प्रकाशित लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा है। यह आत्मकथा हमें लक्ष्मी के जीवन संघर्षों से रूबरू कराती है। लक्ष्मी का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। लेकिन बचपन से उन्हें भेदभाव,उपहास और हिंसा का सामना करना पड़ा। लक्ष्मी का बचपन में ही चचेरे भाई द्वारा शोषण किया जाता है। जिसका असर उसके मस्तिष्क सेहत पर पड़ता है।लक्ष्मी ने इन सब परिस्थितियों और रुढिवादी सोच को चुनौती देते हुए अपनी शिक्षा पूरी कर एक सफल नृत्यांगना बनी। लक्ष्मी किन्नरों के जीवन से संबंधित उन सभी मान्यताओं को तोड़ती है जो किन्नरों को दलदल में धकेलती है उनकी प्रगति में बाधा पड़ती है।लक्ष्मी प्रोग्रेसिव हिजड़ा बना चाहती है।लक्ष्मी के स्वयं के शब्दों में-"इन सभी को बचाने का मैने बहुत प्रयास किया। उनको समझाया, उनसे हमेशा बातचीत करती रही पर कितना समझाऊंगी? कितना चिल्लाउंगी? और किस मुंह से?यह सब क्या भोग रही थी, वह मैं देख रही थी। पहले पुरुषों के शरीर के अंदर की औरत के मन का दम घुटना,,, बाद में हिजड़ा होने पर परिवार का सहारा छूटना,,, करीबी कोई नहीं था,,, समाज द्वारा किया हुआ क्रूर व्यवहार, उसकी वजह से होने वाली तकलीफ,,, उत्पादन का साधन नहीं,,, कोई नौकरी नहीं देता,,, पर जीने के लिए पैसा तो चाहिए था,,, फिर उसके लिए किया गया सेक्स वर्क,,, मन में हमेशा डर,,, तनाव,,, हमेशा उपस्थित होने वाला सवाल,,, मैं कौन हूं,,,'

लक्ष्मी एक लड़के के रूप में अपने घर में जन्म लेता है। लेकिन जैसे ही वह बड़ा होता है उसे एहसास होता है कि वह स्त्री या पुरुष किसी रूप में पूर्ण नहीं है। वह 'किन्नर' है। इसलिए वह किन्नर समाज में चला जाता है। और अपने परिवार से सारे संबंधों को जारी रखता है। समाज के विरोध करने पर स्वयं लक्ष्मी के पिता ढाल बनकर खड़े हो जाते हैं।

लक्ष्मी के बारे में उनसे पूछा गया तब उन्होंने कहा- "अपने ही बेटे को मैं घर से बाहर क्यों निकालूं?मैं बाप हूं उसका, मुझ पर जिम्मेदारी है उसकी, ऐसा किसी के भी घर में हो सकता है। ऐसे लड़कों को घर से बाहर निकाल कर क्या मिलेगा? उनके सामने तो हम फिर भीख मांगने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं छोड़ते हैं। लक्ष्मी को घर से बाहर निकलने का सवाल ही नहीं पैदा होता है।

लक्ष्मी कई भ्रमों पूर्वाग्रहों को ध्वस्त करती है।

हमारे समाज में यह अफवाह रहता है। कि सभी हिजड़ो का लिंग छेद हुआ रहता है। पर ऐसा नहीं है लिंग छेद करना या ना करना सब कुछ उस हिजड़े पर निर्भर रहता है। कोई उस पर जबरदस्ती नहीं कर सकता है। एक और अफवाह है जो समाज ने ही फैलाई है कि हिजड़े की मृत्यु होने पर उसे रात में देर से ले जाते हैं, और ले जाते समय सभी लोग उसे जूते से मारते हैं, और ये भी की उसकी अंतिम यात्रा को कोई भी न देखें, ये सब झूठ है। हिजड़े अलग-अलग धर्म से आते हैं। वो जिस धर्म के होते हैं, उसी के अनुसार उनका अंतिम संस्कार किया जाता है। उनकी अंतिम यात्रा बाकी लोगों की तरह ही निकलती है, हिजड़े उस अंतिम यात्रा में औरतों के भेष में नहीं जाते हैं, और इसलिए यह हिजड़े हैं लोगों को पता नहीं चलता है।

लक्ष्मी ने अपने कई साथियों के साथ मिलकर 'दाई वेलफेयर सोसाइटी' का काम शुरू किया था। 'दाई' का प्रमुख कार्य हिजड़ो के स्वास्थ्य समस्याओं को जानना उनकी व्यथा को समाज के सामने रखना होता था। लक्ष्मी 'दाई वेलफेयर सोसाइटी' की पहली अध्यक्ष बनी।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा हमें सच्चा साहस, सम्मान और पहचान को स्वीकार करने और उसके लिए लड़ना सिखाती है। यह हमें बताती है कि हर इंसान को सम्मान और गरिमा के साथ जीने का अधिकार है, चाहे उसकी पहचान कुछ भी हो।

प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'तीसरी ताली' हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यास में समाज के हाशिए पर रहने वाले किन्नरों के अकेलेपन, अलगाव, तिरस्कार व निर्ममता की कथा बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है। इसमें किन्नरों के डेरे, गुरु, शिष्य -परंपरा आर्थिक मजबूरियां और सामाजिक बहिष्कार की यातनाएं शामिल है। इस उपन्यास में एलजीबीटीक्यु की कहानियां एक साथ चलती है।' तीसरी ताली' में तीन बेटियों के बाद घर में जन्मे बेटे को देखकर गौतम साहब बदहवास हो जाते हैं। गौतम अपने बेटे विनीत को कुछ दिनों तक समाज के नजरों से बचाता रहा। अंतत सामाजिक अवहेलना के कारण विनीत घर से भाग कर हिजड़ा समुदाय में शामिल हो जाता है।

आनंदी आंटी अपनी बेटी निकिता से बहुत प्यार करती हैं, लेकिन समाज में बदनामी के डर से निकिता को नीलम गुरु के हवाले कर देती हैं। लेकिन निकिता का नीलम के घर में मन नहीं लगता था। वहां असामान्य माहौल रहता था। नीलम निकिता को अपनी बेटी की तरह ही पालती थी,पर निकिता अंदर ही अंदर छटपटाती रहती थी। उसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखता था। वह सोचती थी कि मैं चाहे जितना पढ़ लिख जाऊं बड़ी होकर पेट पालने के लिए नाचना गाना ही पड़ेगा। यह सब सोचकर अपने को निरर्थक मानने लगी थी, ऐसी बातें सोचते सोचते आत्महत्या कर लेती है।

राजा एक डांसर है। और उसे पेट भरने के लिए किन्नरों के डेरे पर जानवरों की देखभाल के लिए रखा जाता है।वहीं पर मंजू के माता-पिता पैसों के लालच में मंजू को डिंपल के हाथों बेच देते हैं। डेरे पर ही मंजू राजा की तरफ आकर्षित होती है,और दोनों में संबंध बनते हैं। और मंजू गर्भवती हो जाती है।जब डिंपल को यह बात पता लगती है, तो राजा को नपुंसक बना देती है। और मंजू का गर्भपात करा देती है। मंडली में राजा रानी बन चुका था, और मंजू आधी अधूरी औरत वह तन और मन दोनों से बिखर गई थी।

ज्योति नाम का एक दलित युवक बाबू श्याम सुंदर सिंह का रखैल बनकर रहता था। ज्योति को कुछ मनचलों ने छेड़ दिया, जिसके कारण स्यामसुंदर सिंह ने उसे कोठी से बेदखल कर दिया था। श्याम सुंदर सिंह के लिए ज्योति बलात्कार औरत की तरह पथभ्रष्ट हो चुका था। श्यामसुन्दर सिंह के रहमोकरम के चलते ज्योति का पूरा परिवार भरपेट खाना खाता था। अंत में गरीबी ने उसे हिजड़ा बनने पर मजबूर कर दिया।और ज्योति सोनम किन्नर से कहता है कि "माना मैं मर्द हूं, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिए राजी नहीं है।मुझे इस समाज ने मादा की तरफ भोग की चीज में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूं, औरत रहूं, या फिर हिजड़ा बना जाउं, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा पेट की आग तो बड़े बड़ों को न जाने क्या-क्या बना देती है"।

यास्मीन जुलेखा और सुविमल तीनों समलिंगी है। अनिल उभयलिंगी है। जिसका संबंध सुविमल से होता है जिसके कारण सुविमल अपनी पत्नी रति को तलाक दे देता है। यह उपन्यास सिर्फ एक कहानी नहीं है। बल्कि उस दुनिया का दस्तावेज है जिसे समाज जानना और स्वीकारना नही चाहता है ।

ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को संवैधानिक और कानूनी दोनों प्रकार से अधिकार प्राप्त है जिनकी शुरुआत सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले नालसा (National legal service's Authorities) बनाम भारत संघ 2014 के फैसले से हुई थी।

इस फैसले ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को "तीसरे लिंग" के रूप में मान्यता दी और उनके मौलिक अधिकारों की पुष्टि की।इसमें शामिल है -ट्रांस मैन ,ट्रांस वूमेन, अंतर लिंग किन्नर, हिजड़ा, और सामाजिक सांस्कृतिक पहचान वाले व्यक्ति।

संवैधानिक स्थिति -भारतीय संविधान के तहत ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को यह सभी मौलिक अधिकार प्राप्त है, जो किसी भी अन्य नागरिक को मिलते हैं। नालसा के फैसले ने स्पष्ट किया कि संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेद ट्रांसजेंडर व्यक्तियों पर भी लागू होतें हैं।

अनुच्छेद14(समानता का अधिकार) -

यह अनुच्छेद कानून के समक्ष समानता और संरक्षण की गारंटी देता है। न्यायालय ने पाया कि व्यक्ति शब्द केवल पुरुषों और महिलाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को भी शामिल करता है। जिससे उन्हें समान कानूनी सुरक्षा मिलती है।

अनुच्छेद 15 भेदभाव का निषेध -अनुच्छेद15 धर्म ,जाति ,लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है ।न्यायालय ने माना है कि लिंग शब्द में केवल जैविक लिंग शामिल नही है, बल्कि लैंगिक पहचान भी शामिल है। जिससे ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के साथ भेदभाव अवैध हो जाता है।

अनुच्छेद 16(सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानता)-यह अनुच्छेद सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता सुनिश्चित करता है। और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को भी इसका लाभ मिलता है।

अनुच्छेद 19 1 (ए)-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार -न्यायालय ने कहा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में व्यक्ति व्दारा स्वयं पहचानी गई लैंगिक अभिव्यक्ति का अधिकार भी शामिल है ।जिसमें पोशाक, शब्द, कार्य व्यवहार के माध्यम से अभिव्यक्ति शामिल है ।

अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) -इस अनुच्छेद में व्यक्ति की गरिमा और निजता का अधिकार शामिल है। न्यायालय ने जोर दिया कि लैंगिक पहचान किसी व्यक्ति के अस्तित्व का मूल है।और उसकी पहचान भी है। इसलिए लैंगिक पहचान की जो कानूनी मान्यता मिली है, वह गरिमा और स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा है ।

कानूनी स्थिति -ट्रांसजेंडर व्यक्ति अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 2019- नालसा के फैसले के बाद भारत सरकार ने ट्रांसजेंडर समुदाय के अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 2019 पारित किया ।यह अधिनियम ट्रांसजेंडर समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा और कानूनी स्वरूप प्रदान करता है। इस अधिनियम की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है।

पहचान का अधिकार- यह अधिनियम ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को उनकी स्वयं पहचान की गई लैंगिकता के अनुसार कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त करने का अधिकार देता है ।ट्रांसजेंडर व्यक्ति जिला मजिस्ट्रेट से एक पहचान प्रमाण पत्र प्राप्त कर सकते हैं। जिसमें ट्रांसजेंडर के रूप में उनकी पहचान लिखित होगी ।यदि कोई व्यक्ति लिंग चेंज करने के लिए सर्जरी करवाता है, तो उसे संशोधित प्रमाण पत्र भी मिल सकता है।

भेदभाव का निषेध -यह अधिनियम शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सेवा ,सार्वजनिक स्थानों तक पहुंच और अन्य सभी तरह की सुविधाओं में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के खिलाफ भेदभाव का निषेध करता है।

रोजगार का अधिकार -कोई भी सरकारी या निजी संस्था रोजगार पाने के मामलों मे,भर्ती प्रकिया और पदोन्नति आदि क्षेत्रों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के साथ भेदभाव नहीं कर सकता है ।

निवास का अधिकार -ट्रांसजेंडर व्यक्ति को अपने परिवार के साथ रहने का पूरा अधिकार दिया है। और यदि परिवार देखभाल करने में असमर्थ है, तो उन्हे अदालत के आदेश पर पुनर्वास केंद्र में रखा जा सकता है ।

अपराध और दण्ड -अधिनियम ट्रांसजेंडर समुदायों के खिलाफ कुछ अपराध जैसे-बंधुआ मजदूरी, सार्वजनिक स्थानो के उपयोग से मना करना, घर से निकालना,शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण के लिए दंड का प्रावधान है।

राष्ट्रीय ट्रांसजेंडर व्यक्ति परिषद(NCTP)-यह अधिनियम ट्रांसजेंडर समुदाय के कल्याण के लिए है। नीतियों, कार्यक्रमों और कानून बनने पर किन्नर समुदाय के लिए क्या हित है क्या अहित केंद्र सरकार को सलाह देने के लिए एक राष्ट्रीय परिषद की स्थापना का प्रावधान करता I

संदर्भ ग्रंथ-

- मुद्गल ,चित्रा (2016),पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा,नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन पृष्ठ-11,
- अनमोल,भगवंत(2019),जिन्दगी 50-50, राजपाल एण्ड सन्स, पृष्ठ-118,161
- मुद्गल, चित्रा (2016),पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन पृष्ठ -87
- त्रिपाठी ,लक्ष्मी नारायण(2015),मैं हिजड़ा,,,मैं लक्ष्मी!नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन-पृष्ठ-108,144,150,162,163,
- सौरभ, प्रदीप(2018),तीसरी ताली,प्रथम संस्करण नई दिल्ली:वाणी प्रकाशन-पृष्ठ-57
- NALSA(राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण) बनाम भारत संघ 2014 union of India AIR और 2014 sc 1863
- The transgender persons protection right of bill 2019

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. :27-30
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय समाज में महिलाओं की बदलती भूमिका: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

Dr.Deepa Bharti,
Department of Home Science,
Purnea University Purnea, BIHAR 854301.

सार:
भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका में पिछली शताब्दी में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। घरेलू ज़िम्मेदारियों तक सीमित रहने वाली महिलाएँ अब शिक्षा, कार्यबल, राजनीति और सामाजिक आंदोलनों में तेज़ी से भाग ले रही हैं और पारंपरिक पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती दे रही हैं। यह समाजशास्त्रीय अध्ययन महिलाओं की बदलती स्थिति का अन्वेषण करता है और शिक्षा, रोज़गार, कानून, शहरीकरण और वैश्वीकरण जैसे कारकों की जाँच करता है जो लैंगिक भूमिका की पुनर्परिभाषा में योगदान करते हैं। विश्लेषण में प्राप्त प्रगति और लिंग-आधारित भेदभाव, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबंधों और संसाधनों तक असमान पहुँच सहित निरंतर चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है। समकालीन भारत में लैंगिक समानता और समावेशी सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए इन गतिशीलताओं को समझना महत्वपूर्ण है।
मुख्य शब्द: महिला सशक्तिकरण, लैंगिक भूमिकाएँ, पितृसत्ता, सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, रोज़गार, शहरीकरण, भारत

प्रस्तावना :-

महिलाएं सदैव से भारतीय समाज का अभिन्न अंग रही हैं तथा परिवारों और समुदायों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। परंपरागत रूप से, उनकी ज़िम्मेदारियाँ मुख्यतः घरेलू कर्तव्यों, बच्चों के पालन-पोषण और सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदंडों के पालन तक ही सीमित थीं। हालाँकि, समय के साथ, शिक्षा, आर्थिक अवसरों, कानूनी सुधारों और सामाजिक आंदोलनों के कारण भारत में महिलाओं की भूमिका धीरे-धीरे बदल रही है। यह बदलाव भारतीय समाज में व्यापक बदलावों को दर्शाता है, क्योंकि महिलाएँ सार्वजनिक जीवन, निर्णय लेने और पेशेवर क्षेत्रों में तेज़ी से भाग ले रही हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन बदलावों का अध्ययन करने से हमें महिला सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले कारकों और लैंगिक समानता प्राप्त करने में आने वाली चुनौतियों को समझने में मदद मिलती है।

महिलाओं के बिना पुरुषों के लिए कुछ भी संभव नहीं है। एक महिला समाज की मूल इकाई है। वह परिवार बनाती है, परिवार घर बनाता है, घर समाज बनाता है और अंततः समाज देश बनाता है। कोई भी देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक उसकी महिलाएँ विकास कार्यों के लिए पहल न करें। भारत में महिलाओं की

भूमिका एक बहुत ही ज्वलंत मुद्दा है जिस पर हर दिन जोरदार बहस होती है, क्योंकि अधिक से अधिक महिलाएँ उन असमानताओं और पूर्वाग्रहों के प्रति जागरूक हो रही हैं जिनसे वे पीड़ित हैं। दुनिया भर में, महिलाएँ गरीबी और हिंसा से लड़ने के लिए एक अप्रयुक्त "संसाधन" हैं, और भले ही कठिन परिस्थितियों में उनकी क्षमता बार-बार स्पष्ट रूप से प्रकट हुई हो, फिर भी पुरुष अक्सर स्थिरता के समय में इसे नज़रअंदाज़ कर देते हैं। भारतीय समाज में एक महिला के रूप में जन्म लेना महिलाओं के लिए अभिशाप कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक रूप से भारत में महिलाओं को सम्मान दिया जाता था और यह व्यापक रूप से माना जाता था कि लड़की का जन्म धन और संपदा की देवी लक्ष्मी के आगमन का प्रतीक होता है। महिलाओं को जननी अर्थात जन्मदात्री और अर्धांगिनी अर्थात शरीर का आधा भाग माना गया है। महिलाओं को देवी दुर्गा का स्वरूप भी माना जाता है। इससे पहले पुरुष प्रधान, पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था, पुरानी पारंपरिक मान्यताओं के प्रचलन आदि के कारण महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। महिलाएँ केवल संतानोत्पत्ति और पालन-पोषण जैसी पारंपरिक भूमिकाओं तक ही सीमित थीं। आधुनिक दुनिया में, जहाँ महिलाओं की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है, फिर भी उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उन्हें अपने पति की मदद के बिना पारिवारिक और व्यावसायिक, दोनों ज़िम्मेदारियाँ एक साथ निभानी पड़ती हैं। कुछ मामलों में, महिलाओं की स्थिति तब और भी शर्मनाक हो जाती है जब उन्हें मदद मिलने के बजाय उनके परिवार के सदस्य ही प्रताड़ित करते हैं। घर के साथ-साथ दफ़्तरों में भी परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों, पड़ोसियों, दोस्तों, बॉस आदि द्वारा यौन उत्पीड़न ज़्यादा आम है। उन्हें अपने करियर को बेहतर बनाने के साथ-साथ अपने पारिवारिक रिश्तों को बचाने के लिए भी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में बहुत कुछ सहना पड़ता है।

जब हम सामाजिक आधुनिकीकरण और आर्थिक आधुनिकीकरण के बारे में सोचते हैं, तो सबसे बड़ी बात जो उभर कर आती है, वह है महिलाओं की भूमिका। जो समाज महिलाओं का सम्मान नहीं करता, वह अपनी आधी श्रम शक्ति का कम उपयोग कर रहा है। हम उम्मीद करते हैं कि महिलाओं की अधिक समानता का विकास पर एक कारणात्मक प्रभाव पड़ेगा। हम भारत में कभी-कभी महिलाओं की भूमिका को लेकर लापरवाह हो जाते हैं। भारत नेतृत्वकारी भूमिकाओं में महिलाओं की उपस्थिति के लिए प्रसिद्ध है। आंद्रे बेतेइले ने कहा: आज भारत में महिलाओं की भूमिका जापान से भी बेहतर है, जो कि एक बहुत ही उन्नत देश है। भारत में अभिजात वर्ग की बेटियों के लिए कोई सीमा नहीं है, जो कि हम ज़्यादातर जगहों पर जो चुनौती देखते हैं, उससे बेहतर है।

भारत में महिलाओं की भूमिका :-

जब उसे ऐसी स्थिति में डाल दिया जाता है जहाँ उसे अपने परिवार की भलाई को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं, तो वह शोषक लोगों के लिए बेहद असुरक्षित हो जाती है। इस पहलू के अलावा, विकट परिस्थितियों में परिवार के लिए कमाने के लिए कहीं और रोजगार करने की संभावना के संदर्भ में, पर्याप्त कौशल सेट की कमी उसे अनौपचारिक क्षेत्र के चंगुल में डाल देती है जो भारत में गरीबी को और बढ़ाता है। अनौपचारिक क्षेत्र बड़े पैमाने पर अनियमित होने के कारण, उसके जीवन की गुणवत्ता और आय का स्तर उसके नियोक्ता की सनक और कल्पनाओं के अनुसार बदलता रहता है। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ महिलाओं को काम के वादे के बहाने तस्करों के चंगुल में फँसाया गया और बेच दिया गया। गरीबी की जंजीरों में फंसी महिलाओं के लिए यौन शोषण और क्रूर कार्य स्थितियों के उदाहरण भी उतने ही वास्तविकता हैं। यौन हिंसा और मानव तस्करी से लड़ने के लिए, सरकार को भारत में महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने और उन्हें औपचारिक क्षेत्र में शामिल होने में मदद करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए ताकि वे वास्तविक रोजगार अनुबंधों के साथ आने वाली कानूनी सुरक्षा का आनंद ले सकें। यद्यपि महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लाभों के लिए कई संवैधानिक संशोधन किए गए, फिर भी वे स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन लाने में कभी प्रभावी नहीं रहे।

भारत में महिलाओं की बदलती भूमिका :-

स्वतंत्रता के बाद भारतीय महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। सांस्कृतिक और संरचनात्मक परिवर्तनों ने महिलाओं के शोषण को काफी हद तक कम किया है और विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को समान अवसर प्रदान किए हैं। महिलाएँ घर के सुरक्षित दायरे से निकलकर अब अपनी प्रतिभा से पूरी तरह सुसज्जित होकर जीवन के रणक्षेत्र में उतर आई हैं। अब ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा है जहाँ भारतीय महिलाएँ न पहुँची हों। महिला कार्यकर्ता भी कन्या भ्रूण हत्या, लैंगिक पूर्वाग्रह, महिला स्वास्थ्य, महिला सुरक्षा और महिला साक्षरता जैसे मुद्दों पर एकजुट हुई हैं। महिलाओं की भूमिका में व्यापक बदलाव आया है और वे समाज में सकारात्मक प्रभाव डालने में सक्षम हुई हैं। गृहिणियों से लेकर मुख्य कार्यकारी अधिकारियों तक, यह परिवर्तन तीव्र गति से देखा जा सकता है। आधुनिकीकरण और नवीनतम तकनीक के आगमन ने उनके लिए आशा और अवसरों का विस्तार किया है। उन्होंने लगभग हर क्षेत्र में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से अपनी स्थिति मजबूत की है। महिलाओं को अब सेना या अन्य रक्षा बलों के लिए अयोग्य या कमज़ोर नहीं माना जाता है। हाल ही में अवनि चतुर्वेदी ने एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है और भारत की पहली महिला लड़ाकू पायलट बनकर एक मील का पत्थर स्थापित किया है।

समाज में महिलाओं की भूमिका में सुधार :-

आधुनिक महिला इतनी निपुण और आत्मनिर्भर है कि उसे आसानी से सुपरवुमन कहा जा सकता है, जो अकेले ही कई मोर्चों पर काम कर रही है। महिलाएं अब बेहद महत्वाकांक्षी हैं और न केवल घरेलू मोर्चे पर, बल्कि अपने-अपने पेशे में भी अपनी योग्यता साबित कर रही हैं। भारत में महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे आ रही हैं। वे बड़ी संख्या में विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में दाखिला ले रही हैं। वे इंजीनियरिंग, चिकित्सा, राजनीति, शिक्षण आदि सभी प्रकार के व्यवसायों में प्रवेश कर रही हैं। किसी राष्ट्र की प्रगति और समृद्धि का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अपनी महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार करता है। महिलाओं को उनका हक देने और उनके साथ दुर्व्यवहार न करने या उन्हें केवल अपनी संपत्ति समझने के बारे में धीरे-धीरे और लगातार जागरूकता आ रही है। प्रगति के बावजूद, यह तथ्य कि महिलाएं, सफल होने के साथ-साथ, पत्नी या मां के रूप में भी अपनी भूमिकाएं पूरी करने की उम्मीद करती हैं, घर को किसी भी चीज से ऊपर रखती हैं।

देखभालकर्ता के रूप में महिलाओं की भूमिका: दुनिया के हर देश में बच्चों और बुज़ुर्गों की देखभाल मुख्यतः महिलाएं ही करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि जब किसी समाज की अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था बदलती है, तो महिलाएं परिवार को नई वास्तविकताओं और चुनौतियों के साथ तालमेल बिठाने में अग्रणी भूमिका निभाती हैं। वे बाहरी सहायता की प्रमुख सूत्रधार होती हैं और पारिवारिक जीवन में बदलावों को सुगम बनाने (या बाधित करने) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

शिक्षकों के रूप में महिलाओं की भूमिका: किसी समाज के पूर्व-साक्षर से साक्षर बनने में महिलाओं का योगदान निर्विवाद है। बुनियादी शिक्षा किसी राष्ट्र के विकास और स्थिरता लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता की कुंजी है। शोध से पता चला है कि शिक्षा कृषि उत्पादकता में सुधार कर सकती है, लड़कियों और महिलाओं की स्थिति में सुधार ला सकती है, जनसंख्या वृद्धि दर को कम कर सकती है, पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा दे सकती है और जीवन स्तर को व्यापक रूप से ऊपर उठा सकती है। परिवार में माँ ही होती है जो अक्सर दोनों लिंगों के बच्चों को स्कूल जाने और वहाँ बने रहने के लिए प्रोत्साहित करती है।

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस 2019 की थीम "समान सोचें, समझदारी से निर्माण करें, बदलाव के लिए नवाचार करें" लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण को आगे बढ़ाने, 2030 के एजेंडे को गति देने और नए

संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए गति बनाने के अभिनव तरीकों की पहचान करने के लिए चुनी गई थी। बेशक, दुनिया भर में महिलाओं के अवसर अभी भी पुरुषों की तुलना में पीछे हैं। लेकिन, महिलाओं की ऐतिहासिक और वर्तमान भूमिका निर्विवाद है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज में महिलाओं की बदलती भूमिका लैंगिक समानता और सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में एक क्रमिक लेकिन महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाती है। शिक्षा, आर्थिक भागीदारी और कानूनी सुधारों ने महिलाओं को पारंपरिक पितृसत्तात्मक ढाँचों को चुनौती देने में सक्षम बनाया है, लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक मानदंड उनके अनुभवों को प्रभावित करते रहते हैं। एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस बात पर ज़ोर देता है कि निरंतर प्रगति के लिए न केवल नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता है, बल्कि सामाजिक मूल्यों, सामुदायिक प्रथाओं और संस्थागत समर्थन में भी परिवर्तनकारी बदलाव आवश्यक हैं। इन कारकों को पहचानना और उनका समाधान करना एक समावेशी समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है जहाँ महिलाएँ अपने अधिकारों और क्षमता का पूर्ण उपयोग कर सकें।

संदर्भ

- अमित कुमार गुप्ता (संपादक) महिलाएँ और समाज, विकास परिप्रेक्ष्य, क्विटेरियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली 1986
- मानव विकास रिपोर्ट 2015, यूएनडीपी (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) भारत में लैंगिक भेदभाव और सामाजिक मानदंड, गरीबी, संसाधन समानता और सामाजिक नीतियाँ
- क्रिस्टा एल. मैकगायर; रिचर्ड बी. प्राइमैक; एलिजाबेथ सी. लॉसोस (2012) "नाटकीय सुधार और महिला पारिस्थिति कीविदों के लिए निरंतर चुनौतियाँ"। https://academic.oup.com/bioscience/article/62/2/189/280398/Dramatic-Improvements-and-Persistent-Challenges/17-1- 2017
- शोभा; एच. कौर; एम. सिद्धू (2011) शीर्षक: "आधुनिक रसोई उपकरण: गृहिणियों के लिए एक वरदान" http://www.caibuilt.com/tag/modern-kitchen-tools-a-boon-for-homemakers/17-1-2017
- ब्लूम, डी.ई. कैनिंग। डब्ल्यू, फ्लिंक, जी. और फाइनली, जे.ई. (2009) प्रजनन क्षमता, महिला श्रम भागीदारी और
- वाल्बी, एस. (2005) जेंडर मेनस्ट्रीमिंग; सिद्धांत और व्यवहार में उत्पादक तनाव, सामाजिक
- विकास, खंड 29, संख्या 7, पृष्ठ 6. संतोष रंगनाथ एन., काम राजू टी. (2009) भारत में लैंगिक विकास: आयाम और रणनीतियाँ"

Mob. – 8873525662

E-Mail – drdeepa4bharti@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 31-34
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Brief Ecocritical Study of Contemporary Indian English Poetry

Sumit Dameh
Assistant Professor
Department of English
Govt. College for Girls, Kairu, Bhiwani, Haryana.

Abstract
This paper studies the idea of *ecocriticism* in contemporary Indian English poetry. Ecocriticism is the study of the relationship between literature and the environment. It asks how writers and poets talk about nature, ecology, and human interaction with the earth. Indian English poets in the late twentieth and twenty-first centuries have written deeply about trees, rivers, cities, forests, climate change, extinction, and human responsibility. This paper shows how poets like **Gieve Patel, Jayanta Mahapatra, Mamang Dai, Ranjit Hoskote, Tishani Doshi, Meena Kandasamy** and others deal with ecological themes. By reading their poems carefully, with lines quoted and explained, the paper highlights how poetry can make us more sensitive to environmental concerns and inspire ecological awareness.
Keywords: Ecocriticism, Contemporary Indian English Poetry, Environmental consciousness, Nature and literature, Ecofeminism, Climate change and poetry, Urban ecology, Human–nature relationship, Ecological crisis, Indian eco-poetry.

Introduction

In today's world, ecological problems such as climate change, deforestation, extinction of species, and pollution are not just scientific issues but also cultural and emotional realities. Literature gives voice to these concerns. **Ecocriticism**, which means the study of literature and the environment, helps us read texts not only as stories or poems but also as reflections on how humans treat nature.

In India, poets writing in English bring together local traditions, myth, and modern ecological anxieties. Their poetry speaks about rivers drying, forests being cut, animals disappearing, and cities becoming unlivable. At the same time, they remind us of the sacredness of rivers, the cultural role of trees, and the bonds between communities and their environments. This makes contemporary Indian English poetry an important field for ecocritical study.

What is Ecocriticism?

Ecocriticism looks at literature through an ecological lens. It asks questions like:

- How is nature described in the text?
- Does the writer treat nature as only a backdrop or as a living character?

- What values about the environment are expressed?
- How are issues like pollution, deforestation, and climate change represented?

As Cheryll Glotfelty explains, *"Ecocriticism is the study of the relationship between literature and the physical environment"* (xviii). In India, this approach connects with long traditions of respect for rivers, trees, and animals. But it also looks critically at how industrialization and development harm ecology.

Ecocriticism in the Indian Context

India has a special position in ecocritical studies because of its cultural respect for nature and its present-day ecological crises. Ancient Indian texts like the *Rigveda* and *Upanishads* praise the sacredness of rivers and trees. However, modern India faces pollution, deforestation, and displacement of indigenous people due to big dams and industries.

Indian English poets write in this tension—between reverence for nature and awareness of ecological destruction. They use poetry not only to celebrate beauty but also to protest violence against the environment.

Ecological Themes in Contemporary Indian English Poetry

Trees and Violence against Nature

One of the most famous Indian poems about ecology is **Gieve Patel's "On Killing a Tree."** The poem shows, in simple but disturbing detail, how a tree is destroyed:

"It takes much time to kill a tree,
Not a simple jab of the knife
Will do it. It has grown
Slowly consuming the earth,
Rising out of it, feeding
Upon its crust, absorbing
Years of sunlight, air, water" (Patel 1–7).

Patel shows that trees are not just wood; they are living beings that take years to grow. He describes the cruel process of pulling it "out of the anchoring earth" and letting the roots "scorch and choke in the sun" (Patel 16–20). Ecocritically, the poem is a protest against deforestation and also a lesson on how violence against nature is slow, brutal, and unforgivable.

Rivers, Ritual, and Memory

Jayanta Mahapatra, an Oriya poet writing in English, often uses rivers in his poems. In *"A Rain of Rites,"* he connects rain with renewal and human longing:

"Someone is crying. From the dark
hollow of the rain a woman's voice
is lifted; and in the wind, it is
as though a thousand women
wept together" (Mahapatra 5–9).

Here, rain is not just weather; it becomes a voice of women, of grief and memory. Mahapatra often blends nature with human emotion, showing how rivers, rains, and landscapes are tied to culture and community.

Indigenous Voices and Ecological Knowledge

Mamang Dai, from Arunachal Pradesh, writes poetry rooted in the landscape of the Northeast. In her poem *"River Poems"* she writes:

"The river has a soul.
In the summer it cuts through the land
like a torrent of grief.
Sometimes, in the night, it holds the moon
perfectly still" (Dai 1–5).

For Dai, rivers are not just water but living beings with souls. This reflects indigenous ecological wisdom, where land, river, and sky are interconnected. Ecocritically, her poems resist seeing nature as a resource. Instead, nature is kin, with its own spirit and value.

Urban Ecologies and Solastalgia

Ranjit Hoskote often writes about urban landscapes, memory, and environmental loss. In one poem, he reflects on the changing sea:

"The sea withdraws without warning,
taking with it the moon's pale maps,
leaving the shore stunned
with salt and silence" (Hoskote 12–15).

Here, the sea is not just physical; it becomes a symbol of climate disruption and memory. Ecocritically, his poetry captures what Glenn Albrecht calls *solastalgia*—the pain of seeing one's home environment collapse.

Climate Change, Extinction, and Global Anxiety

Tishani Doshi, a contemporary poet, often writes about extinction. In her poem *"De-extinction: A Poem"* she asks:

"What will we do with the mammoth
once we have made her?
Will we build her a home of snow?
Or teach her to walk in cities of heat?" (Doshi 3–6).

This poem directly raises the issue of climate change and scientific attempts to control nature. Ecocritically, it questions whether humans should play god and whether technology can truly fix what we destroyed.

Ecology and Justice: Caste, Gender, and Environment

Poets like **Meena Kandasamy** link ecology with social justice. In her verse narrative *The Gypsy Goddess*, she writes:

"The fields that should be green with paddy
are red with the blood of workers" (Kandasamy 44–45).

Ecocritically, this line shows that environmental questions in India cannot be separated from caste and class. The destruction of land is tied with exploitation of marginalized communities. Ecofeminism, which links the domination of women with the domination of nature, is visible in her poetic politics.

Ecocriticism as Protest and Healing

Indian ecopoetry is not just about beauty; it is also protest. Patel's tree poem protests deforestation. Kandasamy protests injustice. Mamang Dai heals cultural memory by restoring rivers as living beings. Mahapatra records rituals that are vanishing with modern life. Doshi mourns extinction and questions human arrogance.

Thus, ecocriticism in Indian poetry has two roles: **to resist destruction** and **to heal imagination.**

Conclusion

Ecocriticism helps us read contemporary Indian English poetry in new ways. The poems of Gieve Patel, Jayanta Mahapatra, Mamang Dai, Ranjit Hoskote, Tishani Doshi, and Meena Kandasamy show different ecological concerns: trees, rivers, rituals, urban alienation, climate change, extinction, and justice. By quoting their lines, we see how poetry makes ecology emotional, cultural, and ethical. It transforms statistics into stories, and destruction into protest. In a country like India, where both ancient traditions and modern industries shape the land, ecocritical poetry is both a witness and a warning.

Poetry cannot stop climate change, but it can make us see the world differently. As Patel shows in his tree poem, as Dai shows in her river poems, and as Doshi shows in her climate anxieties,

poetry helps us imagine care, responsibility, and kinship with the earth. That is the gift of ecocriticism in contemporary Indian English poetry.

Works Cited

1. Dai, Mamang. *River Poems*. Writers Workshop, 2004.
2. Doshi, Tishani. *Girls Are Coming Out of the Woods*. Copper Canyon Press, 2018.
3. Glotfelty, Cheryll, and Harold Fromm, editors. *The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology*. University of Georgia Press, 1996.
4. Hoskote, Ranjit. *Vanishing Acts: New and Selected Poems 1985–2005*. Penguin, 2006.
5. Kandasamy, Meena. *The Gypsy Goddess*. HarperCollins, 2014.
6. Mahapatra, Jayanta. *A Rain of Rites*. University of Georgia Press, 1976.
7. Patel, Gieve. *Collected Poems*. Oxford University Press, 2000.

Contact: 9896921355
true12793@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 35-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में निहित राष्ट्रीय चेतना एवं स्त्री विमर्श

अमरीन याक़ूब
शोधार्थिनी
इतिहास विभाग,
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्व विद्यालय गोरखपुर (बुद्ध पी०जी० कॉलेज कुशीनगर) 274402.

भारतीय स्वतंत्रता की आभा के साथ ही सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्त्री अस्मिता एवं स्त्री स्वतंत्रता की ज्योति जलाई। स्त्री के मानवाधिकारों अधिकारों और समानता का मुद्दा उठाया । उस समय महिला समाज अनेक सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त था। जैसे **बाल विवाह ,विधवा विवाह निषेध, बहु विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह जैसी कुप्रथाओं** का शिकार था।

सुभद्रा कुमारी चौहान के व्यक्तित्व में क्रांतिकारी ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी। देश को आज़ादी विदेशी हुकूमत से चाहिए थी। विदेशी हुकूमत के प्रति सुभद्रा कुमारी चौहान का दृष्टिकोण स्वच्छंदतावादी था। देश की आजादी के साथ ही वे चाहती थी कि देश की महिलाओं को भी अपने अस्तित्व की आज़ादी प्राप्त होनी चाहिए। महिलाओं को हर स्थान पर दोहरी गुलामी का शिकार होना पड़ता है। वह जन्म से ही पराधीन बनाकर रखी जाती रही है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं स्वीकार किया जाता। जन्म के समय माता पिता का आधिपत्य होता है बड़ी होने पर उसे भाई का संरक्षण प्राप्त होता है उसके बाद पति का और वृद्धावस्था के समय उसे अपनी संतान के आश्रय में रहना पड़ता है। यह मानसिकता भी समाज से निकलनी चाहिए। स्त्री की स्वतंत्र पहचान की महत्वत्ता को समाज और देश को स्वीकार करना चाहिए। वह स्वतंत्रता की जन्म सिद्ध अधिकारिणी हैं।

जहां एक और सुभद्रा कुमारी चौहान ने **गुलाब सिंह , तांगेवाला, सुभागी** जैसी कहानी के माध्यम से राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र पर निछावर होने का आह्वान किया तो वहीं **दृष्टिकोण, किस्मत,दो साथी, कल्याणी, मझली रानी** जैसी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज में प्रचलित कुप्रथाओं पर चोट की ।

सुभद्रा कुमारी चौहान की **'ताँगेवाला'** कहानी व्यक्तिगत सत्याग्रह का सबसे बड़ा उदाहरण है। इस कहानी में ताँगेवाला अपने स्तर पर अंग्रेजों का विरोध करता है। उसे इस बात का अत्यन्त दुःख है कि भारतीयों में एकता न होने के कारण ही अंग्रेज भारत में अपना शासन स्थापित करने में सफल रहे हैं। उसे सन् सत्तावन से लेकर जलियाँवाले बाग तक की सभी घटनाओं की पूर्ण जानकारी है। वह कहता है, "हुजूर, जब से सत्तावन के गदर का इतिहास पढ़ा, और फिरंगी कैसे आये और कैसे फैल गये सारे हिन्दुस्तान में यह जाना, तब से हुजूर, बदले की भावना से रात-दिन जलता रहता हूँ। सरकारी नौकरी इसीलिए नहीं की। मेरा बाप डी०सी० की अर्दली में था। मुझे वह जगह मिल रही थी। मैंने ठोकर मार दी। माँ-बाप नाराज हो गये। मैंने घर ही छोड़ दिया और तब से यहाँ हूँ। यह ताँगा चलाता हूँ। पर ताँगे पर भी किसी फिरंगी को बैठालकर ताँगा न हाँकूँगा ।" [1]

भारत छोड़ो आंदोलन से सम्बन्धित सुभद्रा कुमारी चौहान की एक अन्य कहानी है **'गुलाबसिंह'।** वे इस कहानी की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए कहती हैं, "यह कहानी कहाँ की है? किसकी है? हम क्या बतावें! यह फ्रांस की राज्य क्रांति की हो सकती है। यह रूस की राज्य-क्रांति की हो सकती है। यह हिन्दुस्तान की सन् 42 की क्रांति की भी हो सकती है, क्योंकि यह घटना चिरंतन है, अनन्त है, यह जैसे 'पेरिस में मास्को में, वैसे जबलपुर में हो सकती है। जबलपुर में? तो क्या उस वीर बालक का नाम था गुलाबसिंह? हो सकता है ! " [2]

'गुलाबसिंह' कहानी के द्वारा सुभद्रा कुमारी चौहान देश के नौजवानों को राष्ट्रीय गौरव और सम्मान की रक्षा हेतु प्रोणोत्सर्ग की प्रेरणा देती हैं इसलिए उनकी कहानी में छोटे-छोटे बालक भी राष्ट्रीय झंडे का जुलूस निकालकर देश पर अपने प्राण न्यौछावर करके भी बादशाह के आदेश की अवहेलना करते हैं, "बहुत दूर जाने पर बादशाह के सिपाहियों, ने झंडे वाले को रोका। वह न रुका नहीं रुका और बादशाह के सिपाहियों ने गोली चला दी। वह गिरा। झंडा उसके हाथ में था । बहन ने झंडा ले लिया। पर भाई चला गया। बहन रोई पर झंडा हाथ में लिये रही। बादशाह के सिपाही मानो गढ़ जीतकर चले गये थे। अब बहुत से लोग आये। अरथी उठी। सामने भाई की बहन वही झंडा लिये चल रही थी। बादशाह का हुकुम था जुलूस नहीं निकलेगा, कौमी झंडा नहीं निकलेगा, पर जुलूस निकला, झंडा भी निकला।" [3]

भारत की जनता को अंग्रेजों ने सन् 1757 के प्लासी युद्ध से पराधीन बनाना आरंभ किया था किन्तु सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों ने भारतीयों को शताब्दियों से अज्ञानता के अंधकार में रखा हुआ था। अज्ञानता का यह अंधकार इतना अधिक भयावह था कि उसमें फँसने के पश्चात् लोग उससे किसी भी तरह से न तो बाहर निकल सकते थे और न ही वे निकलना चाहते थे।जितनी रूढ़ियाँ और बंधन समाज में व्याप्त थे, स्त्रियाँ ही उनमें सबसे अधिक बंधी हुई थीं, क्योंकि भारतीय समाज हमेशा से पुरुष प्रधान समाज रहा है और ऐसे समाज में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते। उन्हें केवल पुरुषों की आज्ञाओं, आदेशों और इच्छाओं के अनुरूप ही अपना जीवन बिताना होता है। ऐसे समाज में स्त्री की अपनी कोई स्वतन्त्र पहचान नहीं होती, वह हमेशा किसी से जुड़ने के पश्चात् ही अपनी पहचान बना पाती है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की 'दृष्टिकोण' कहानी बाल-विधवा की दुर्दशा से ही सम्बन्धित है। इसमें बिट्टन एक बाल विधवा है जिसके मायके में भी कोई नहीं है। जब बिट्टन को गर्भ ठहरने की बात उसके ससुरालवालों को पता चलती है तो बिना यह जाने की इसमें बराबर का भागीदार कौन है, उसे घर से निकाल दिया जाता है और जब निर्मला उसे कुछ दिन अपने घर में रखने की बात कहती है तो उसकी सास उसे खरी-खोटी सुनाती है। वह बिट्टन को अपने घर में रखने से साफ मना कर देती है और कहती है, "ऐसी औरतों का तो इसे बड़ा दर्द होता है, घर में बुलाने जा रही है! जाय कहीं भी मुँह काला करे। पर याद रखना, खबरदार जो उसे घर में बुलाया तो ! मैं अभी से कहे देती हूँ। अगर उस छूत ने घर में पैर भी रक्खा तो अच्छा न होगा। " [4]

उनकी **'किस्मत'** कहानी भी बाल-विधवा की दुर्दशा से सम्बन्धित है। यह बाल-विधवा अब किशोरी हो चुकी है और अपनी सौतेली सास के अत्याचार सहते हुए अपने वैधव्य जीवन को ढोये जा रही है। उसकी सास उसे मारती - पीटती है लेकिन वह इतनी कठोर और अत्याचारी है कि उसके आगे उसके ससुर तक कुछ नहीं बोल पाते हैं, " वे अपनी स्त्री के स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। किशोरी के साथ वह कितना दुर्व्यवहार करती है, यह भी उनसे छिपा न था। जरा-जरा सी बात पर किशोरी को मार देना और गाली दे देना तो बहुत मामूली बात थी। .. किशोरी उनके पहिले विवाह की पत्नी के एकमात्र बेटे की बहू थी । विवाह के कुछ ही दिन बाद निर्दयी विधाता ने बेचारी किशोरी का सौभाग्य-सिन्दूर पोंछ दिया। [5]

उनकी 'मँझली रानी' कहानी दहेज प्रथा के कारण हुए अनमेल विवाह से सम्बन्धित है। इसमें एक अंग्रेजी माध्यम से पाँचवी में पढ़ रही 14 वर्षीय मध्यवर्ग की लड़की का विवाह एक मामूली हिन्दी पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के

लड़के से हो जाता है, यह विवाह शिक्षा और आर्थिक स्तर दोनों ही दृष्टियों से अनमेल विवाह था। इस अनमेल विवाह का सबसे बड़ा कारण दहेज-प्रथा को बताया गया है। यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है, इसमें 'मँझली रानी' अपनी व्यथा-कथा सुनाती है, "मेरे भाइयों ने जब सुना कि तारा का विवाह, एक ताल्लुकेदार के विलासी लड़के से, जो मामूली हिन्दी पढ़ा-लिखा है, तय हुआ है, तो उन्होंने इसका विरोध किया। किन्तु उनके विरोध को कौन सुनता था। पिता जी तो अपना हठ पकड़े थे, उनकी समझ में इससे अच्छा घर और वर मेरे लिए कहीं मिल ही न सकता था? सबसे अधिक आकर्षक बात तो उनके लिए यह थी कि वर बहुत बड़े खानदान, बीस बिस्वे कनौजियों के घर का लड़का था। फिर राजा से रिश्तेदारी करके कस्बे में उनकी इज्जत बढ़ न जायगी क्या ? सबसे बढ़ कर बात तो यह थी कि दहेज के नाम से कुछ न देकर भी लड़की इतने बड़े घर में ब्याही जाती थी। " [6]

दहेज के अभाव में हुए इस अनमेल विवाह के जो दुष्परिणाम होने थे वे हुए और कल तक रानी कहलाने वाली आज दर-दर की भिखारिन बन गई, "मैंने अपनी अवस्था पर विचार किया। मैं आज रानी से पथ की भिखारिणी हो चुकी थी, मेरे सामने अब भिक्षावृत्ति को छोड़कर दूसरा उपाय ही क्या था।

उनकी दूसरी कहानी **'कल्याणी'** है जिसमें वे विधवा विवाह का समर्थन नहीं कर सकीं। इस कहानी में भी विधवा विवाह की परिस्थितियाँ होते हुए भी वे कल्याणी का प्रेम एक ऐसे व्यक्ति के प्रति दर्शाती हैं जो पहले से ही विवाहित है और इसलिए यहाँ भी विधवा-विवाह नहीं हो सका। पहले तो कल्याणी कहती है, "पुनर्विवाह ? विवाह से सुख मिलने वाला होता तो मेरे पति उसी दिन रेल से कट कर न मर जाते। कहकर उसने ठंडी साँस ली।

सुभद्रा कुमारी चौहान की 'आहुति' कहानी दहेज-प्रथा के कारण हुए अनमेल विवाह का सबसे बड़ा उदाहरण है। इसमें कुन्तला का विवाह दुहाजू राधेश्याम से केवल दहेज के कारण ही होता है। राधेश्याम का मित्र जगमोहन जब कुन्तला के बारे में उसे बताता है, तब वह यह स्पष्ट कर देता है कि गरीब होने के कारण ही वह अभी तक कुँवारी है, अन्यथा उसमें कोई कमी नहीं है। वह राधेश्याम को बताता है, "वह पंडित नंदकिशोर तिवारी की कन्या है। पढ़ी-लिखी, गृह - कार्य में कुशल और सुन्दर होने पर भी धनाभाव के कारण अभी तक कुमारी। बेचारे तिवारी जी पचास रुपये माहवार पर एक आफिस में नौकर हैं। बड़ा परिवार है। पचास रुपये में तो खाने - पहिनने को भी मुश्किल से पूरा पड़ता होगा। फिर लड़की के विवाह के लिये दो-तीन हजार रुपये कहाँ से लावें। कान्यकुब्जों में तो बिना हरौनी के कोई बात ही नहीं करता। कष्ट ही में हैं बेचारे। लड़की सयानी है। पढ़ा-लिखा कर किसी मूर्ख के गले भी तो नहीं बाँधते बनता" [7]

उनकी **'मंगला'** कहानी स्त्री-अधिकारों और पुरुषों की दोहरी मानसिकता को लेकर लिखी गई है। 'मंगला' कहानी की मंगला पुरुष के चरित्र के उस पक्ष को सामने लाती है जो वस्तुत: विवाह के पश्चात् ही दिखाई देता है, " विवाह के बाद पुरुष, पत्नी को अपनी सम्पत्ति समझने लगता है। पति चाहे जितना पढ़ा-लिखा विद्वान हो, पब्लिक प्लेटफार्म पर खड़ा होकर स्त्री के समान अधिकार और स्वतंत्रता देने के विषय में चाहे जितनी लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़े पर घर के अन्दर पैर रखते ही पुरुष, पुरुष हो जाता है। स्त्री यदि उसकी इच्छाओं को अपनी इच्छा न बना ले, उसके इशारे पर आँख कान बन्द करके न चले, तो खैर नहीं। " [8]

'दृष्टिकोण', 'आहुति', 'कदम्ब के फूल' और 'मंगला' आदि कहानियों में स्त्री-स्वातंत्र्य और स्त्री-अधिकारों की माँग उठाई गई है और अनावश्यक बंधनों तथा अन्याय और अत्याचार का विरोध किया गया है। 'दुनिया' कहानी के द्वारा यह संदेश दिया गया है कि किसी भी प्रकार का आंदोलन चाहे वह राजनीतिक हो अथवा सामाजिक-धार्मिक, जब स्त्रियाँ इनमें भाग लेने के लिए घर से बाहर कदम रखेंगी तब उन पर उंगलियाँ अवश्य उठाई जाएँगी लेकिन उन्हें अपने पथ पर अग्रसर रहना है और समाज के कटाक्षों, विरोधों का डटकर सामना करना है तभी वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान की अधिकांश कहानियाँ स्त्री- केन्द्रित हैं। उन्होंने इन कहानियों में एक ओर रूढ़ियों और बंधनों में जकड़े भारतीय समाज में नारी की दुर्दशा, उसकी पीड़ा और विवशता को चित्रित किया है तो दूसरी ओर ऐसी नारियों की भी सृष्टि की है जो रूढ़ियों और बंधनों की इस जकड़न को स्वीकार नहीं करतीं और न ही उस भेदभाव को स्वीकार करती हैं जो शताब्दियों से स्त्री और पुरुष को भिन्न मानदंडों पर तौलता आया है। उनकी नारियाँ पुरुष वर्चस्व का विरोध करते हुए अपने अधिकारों की माँग उठाती हैं और अपने जीवन को अपने ही बनाए नियमों के अनुसार जीना चाहती हैं। उनकी कहानियाँ तत्कालीन नारी चेतना को व्यक्त करती हैं, "उनकी कहानियों को किसी भी तराजू पर तौल लें, उनमें स्त्री सरोकारों की बात दिखेगी तो वे सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों की कसौटी पर भी खरी उतरेंगी। उनकी कहानियां स्वतंत्रता आंदोलन के दौर की नारी का मानसिक पटल प्रस्तुत करती हैं। आजादी के पूर्व की भारतीय नारी की दशा और दिशा को समझने में वे हमारी बड़ी मदद करती हैं। उनकी नारी केवल राजनीतिक आजादी नहीं चाहती बल्कि सभी प्रकार की गुलामी से मुक्ति चाहती है। वह 'स्वतंत्रता' नहीं, 'स्वराज्य' चाहती है। परतंत्रता नहीं, स्वानुशासन चाहती है। रूढ़ियों बंधनों से मुक्त होकर वह स्वनियंत्रण में रहना चाहती है।"[9]

21वी सदी के दौर में संसार का आकर बहुत व्यापक और बहुत संकुचित हुआ है। व्यापक और संकुचन दोनों शब्दों में विरोधाभास है। किंतु तथ्य यह है पुरुष सत्ता अपने सामंती वर्चस्व को समाप्त करने में अब भी संकोच करती है। समय बदल चुका है। भौतिक का नियम भी यही है समय कभी एक जैसा नहीं होता। समय के बहाव में न कभी किसी दुःख की रुकावट होती है और न सुख की। स्त्री कोई वस्तु नहीं है वह सृजन शील प्राणी है। उसकी स्वतंत्र पहचान है। किसी स्वतंत्र पहचान को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता।

भूमंडलीकरण के दौर में तकनीकि तंत्र का जाल फैल चुका है। किसी देश या व्यक्ति को गुलाम बनाकर शासन थोपना संभव नहीं रह गया है। किसी भी प्राणी के अधिकारों का हनन करना दैवीय सिद्धांतों के भी विरुद्ध है। भला वर्चस्व का अधिकार लोकतांत्रिक समय में कैसे वैध हो सकता है ?

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभद्रा कुमारी चौहान तांगेवाले, सीधे सादे चित्र, - पृष्ठ 25
2. सुभद्रा कुमारी चौहान- गुलाब सिंह, सीधे सादे चित्र, - पृष्ठ 61
3. सुभद्रा कुमारी चौहान-गुलाब सिंह, सीधे सादे चित्र, - पृष्ठ 60
4. सुभद्रा कुमारी चौहान-दृष्टिकोण, बिखरे मोती पृष्ठ 50
5. सुभद्रा कुमारी चौहान- किस्मत बिखरे मोती
6. सुभद्रा कुमारी चौहान-मंझली रानी, बिखरे मोती
7. सुभद्रा कुमारी चौहान-आहुति
8. सुभद्रा कुमारी चौहान- मंगला , सीधे सादे चित्र पृष्ठ 105
9. राजेन्द्र उपाध्याय भारतीय स्त्रीत्व की प्रतिनिधित्व

मेल आईडी :- amreenyaqub123@gmail.com

मो० 8081710237

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 39-44
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुशीला टाकभौरे की कहानी में स्त्री चेतना

अंजना भारती
शोध छात्रा
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ0प्र0)

शोध सार :–
वर्तमान समय में भारत के राजनीतिक एवं साहित्यिक फलक पर कुछ नये प्रश्न, मुद्दे व समस्याएँ बहस के केन्द्र में दिखाई देती है। उनमें से एक प्रमुख समस्या– दलित स्त्री जीवन से सम्बन्धित है। भारत में अन्य महिलाओं की तुलना में दलित महिलाओं की समस्याएं ही नहीं है, अपितु दारुण भी है। क्योंकि दलित भारतीय समाज का सर्वाधिक उत्पीड़ित वर्ग है। दलित स्त्री शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर सामाजिक सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर अवस्थित है। जहाँ गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, असमानता एवं जातिगत भेदभाव के अलावा अनेक प्रकार के शोषणों को सहना उनकी नियति बना दी गयी है। दलित एवं स्त्री शोषण के विरूद्ध तथा उसके अधिकार, सम्मान एवं समानता के लिए विगत वर्षों में कई आन्दोलन हुए। परिणाम स्वरूप भारतीय समाज का सबसे कमजोर एवं दबा–कुचला अंग भी अपने वजूद के लिए संघर्ष करने को सचेत एवं उद्धत हुआ है। साहित्य के क्षेत्र में दलित–विमर्श एवं स्त्री–विमर्श इन्हीं आन्दोलन की उपज है।

बीज शब्द :– दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, शोषण, शिक्षा, समानता, अधिकार।

शोध विस्तार :–

संविधान प्रदत्त अधिकारों से प्रभावित स्त्रियाँ अपनी समानता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के लिए नये स्वरूप को गढ़ने की कोशिश की और आज भी निरंतर तीव्र गति से करती जा रही है। हिन्दी साहित्य में यही स्त्री विमर्श के नाम से स्वीकारा गया है। स्त्री विमर्श का कार्य स्त्री को जागरूक बनाना है, ताकि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हों, अपने आत्मसम्मान को माने और अपने अस्तित्व को पहचाने, यही चेतना ही स्त्री का स्त्री विमर्श है।

स्त्री विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करते हुए **प्रभा खेतान** जी अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास **'छिन्नमस्ता'** में लिखती हैं– ''पुरुष भूमि है, आकाश है, अग्नि है, जल है, लेकिन स्त्री बीज बनकर धरती के नीचे दबना जानती है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा–प्रशाखाओं में फैली हुई पूरा जंगल हो जाती है।''[1]

मानवीय जीवन में स्त्री की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उनको अपने अधिकारों के प्रति सजग होना बेहद आवश्यक है। स्त्री मनुष्य होने के नाते अपने बारे में सोचे, उलझन भरे अँधेरे संसार से बाहर आये, तभी जाकर अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करने में सफल हो पायेगी।

स्त्री चेतना का अर्थ है स्त्री अधिकारों के प्रति सजगता। स्त्री अस्मिता का मुद्दा सहते–सहते स्त्री का जीवन जर्जर हो चुका है। नारी विमर्श का ध्येय स्त्रियों के मन में चेतना जगाता है, जिससे उनकी आत्मशक्ति जागृत हो और वह डटकर मुकाबला कर सके।

---

[1]. शरण कुमार लिम्बाले– ''दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016, पृ0 42

बीसवीं सदी के आरम्भ में महिलाओं के स्वायत्त संगठन बनने शुरू हो गए तथा कुछ ही वर्षों बाद मसलन तीस और चालीस के दशक तक नारी सक्रियता की एक विशेष श्रेणी का निर्माण हो गया। जिसमें सरोजनी नायडू, मैडम कामा, एनी बेसेंट जैसी महिलाओं का सक्रिय योगदान रहा। इस सम्बन्ध में **डॉ0 के0एम0 मालती** ने अपनी पुस्तक 'स्त्री विमर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य' में लिखती है कि– ''20वीं सदी के आरम्भ में मैडम कामा और सरोजिनी नायडू ने मातृशक्ति का बयान देते हुए चेतावनी दी कि याद रखो जो हाथ पालना झुलाते हैं वही दुनिया पर राज करते हैं।''[2] इस कथन से स्त्री आन्दोलन को एक नवीन आधार मिल गया। वहीं स्त्री–आन्दोलन के इतिहास की जानकार **राधाकुमार** लिखती हैं– ''जहाँ पूर्ववर्तियों का ध्यान उसकी भूमिका के बजाय उसके स्त्रीत्व पर अधिक था जबकि बाद में नारीवादियों ने उसकी पुनरुत्पादक क्षमता के बजाय उत्पादक क्षमता को रेखांकित किया।''[3] परन्तु स्वाधीनता पश्चात् नारीवादी आन्दोलन नये मुद्दों यथा– शोषण, उत्पीड़न, उपेक्षा, असमानता, लिंगभेद एवं परिवार के सीमित दायरे आदि पर केन्द्रित था, इस बहुआयामी संघर्ष में **वृंदा करात** लिखती हैं– ''महिलाओं के बहुआयामी संघर्ष ने राष्ट्रीय विकास के सन्दर्भ में, राजनीति के संबंध में और उनकी खुद की जिंदगियों और परिवारों के संबंध में आजादी के बाद भारतीय नारी आन्दोलन को एक आकार दिया।''[4]

पुरुष प्रधान भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्राचीन काल से समाज की समस्त गतिविधियों में निर्णय लेने के महत्वपूर्ण अधिकार पुरुषों के पास थे। आज भी स्त्री की स्थिति ज्यादा बेहतर नहीं है। स्त्री के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। पर पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में थेड़ा बहुत परिवर्तन देखने को मिला है। खासकर शहर की स्त्रियों में ज्यादा सुधार देखने को मिला है। वह स्वावलम्बी हुई है व अपने पैरों पर खड़े होकर जीवन निर्वाह कर रही है और बहुत सी स्त्रियाँ अध्ययन, मनन, चिन्तन के द्वारा ज्ञान के नये प्रतिमान खड़ा कर रही हैं। पर वहीं ग्रामीण अंचल की स्त्रियों पर बात करें तो उनकी स्थिति बहुत कुछ ठीक नहीं है। वह हाउस वाइफ बनकर सीमित रह जा रही हैं। पर उन्हीं में से गृहस्वामिनी का कार्य संभालते हुए स्त्रियों में नवीन चेतना को भरने का कार्य भी कर रही हैं, जिससे स्त्रियाँ ज्ञान के नये मूल्य स्थापित कर रही हैं। इसी कड़ी में डॉ0 सुशीला टाकभौरे का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

डॉ0 सुशील टाकभौरे दलित साहित्य की एक चर्चित लेखिका हैं। उनका जन्म 1954 ई0 में मध्यप्रदेश के बानापुर गाँव में हुआ था। तब दलित लड़कियों को अधिक नहीं पढ़ाया जाता था। 15–16 साल की उम्र में ही शादी करवा दी जाती थी। उन सब रीतियों को तोड़कर उन्होंने पढ़ा और जीवन में आगे निकल आयीं तथा अपने जीवन के कटु अनुभवों से प्रेरणा लेकर बहुत सारी कहानियाँ, नाटक और आत्मकथा लिखी।

उनका एक कहानी संग्रह है **'जरा समझो'**। 'जरा समझो' कहानी संग्रह की कहानियाँ दलित और स्त्री विमर्श पर आधारित महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। इस कहानी संग्रह में **10 कहानियाँ** संग्रहीत हैं। हर एक कहानी कुछ कहने और समझने के लिए मजबूर करती हैं क्योंकि हर एक कहानी में लेखिका की गहन चिन्तन– खासकर दलित समाज व स्त्रियों के प्रति अभिव्यक्त हुई है। हर एक कहानी से निहित समस्याओं को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उभारते हुए तथा समस्या के यथार्थ रूप से परिचय कराते हुए आगे बढ़ती हैं।

सुशीला जी की कहानियों में स्त्री, चेतना को कैसे जागृत कर संघर्ष को आत्मसात कर लेती हैं, इसका जीवंत उदाहरण सिलिया नामक कहानी में देख सकते हैं। 'सिलिया' कहानी सर्वप्रथम 1996 ई0 में 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। 'सिलिया' कहानी कई महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के दलित पाठ्यक्रम में सामिल रही है।

कहानी की पृष्ठभूमि 1970 ई0 के आस–पास की है। आजादी के 20–22 साल बाद किस तरह से अछूतोद्धार का नारा बुलन्द था। कहानी के प्रारम्भ में ही दृष्टिगत होता है। सिलिया उस समय ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रही थी। उसी साल हिन्दी अखबार 'नयी दुनिया' में एक विज्ञापन छपा– 'शूद्रवर्ण

---

[2]. डॉ0 के0एम0 मालती– ''स्त्री विमर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2012, पृ0 68

[3]. राधा कुमार– ''स्त्री संघर्ष का इतिहास'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2011, पृ0 50

[4]. वृंदा करात– ''भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति'' : शिल्पी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2008, पृ0 40

की वधू चाहिए। चूंकि सिलिया बुद्धिमान व मैट्रिक पास थी। अतः गाँव वालों ने सलाह दी कि सिलिया के विवाह के लिए फोटो, परिचय, नाम–पता लिखकर भेज दो। तुम्हारी बेटी के भाग्य खुल जायेंगे, राज करेगी। यहाँ सिलिया की माँ के वक्तव्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है– ''नहीं भैया यह सब बड़े लोगों के चोंचले हैं। आज समाज को और सबको दिखाने के लिए हमारी बेटी से शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो?''[5]

यह सिलिया की माँ का प्रश्नवाचक चिन्ह बहुत सोचने–समझने को मजबूर करता है। क्योंकि उनकी सोच बिल्कुल जायज थी। उस समय भी सिर्फ दिखावे के लिए शादी की जाती थी। आज कई वर्षों के बाद भी वही दशा है। 'सिलिया' के मन में आत्मविश्वास की भावना तब जागृत होती जब उसकी माँ ने कहा– ''हम उसको खूब पढ़ायेंगे, लिखायेंगे। उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज्यादा मान–सम्मान व खुद पा लेगी....अपनी किस्मत वह खुद बना लेगी।''[6]

वास्तव में शिक्षा ही एक ऐसी चीज है, जिससे समाज को बदला जा सकता है। माँ की इस वाक्य से 'सिलिया' के मन में ज्ञानात्मक चेतना का प्रथम बीज पड़ गया और वह आत्मविश्वास से भर गयी।

इस आत्मविश्वास के साथ सिलिया ने अत्यन्त तन्मयता के साथ अध्ययन जारी रखा व खेल–कूद की स्पर्धाओं में भाग लिया और प्रथम आयी। 'सिलिया' के मन को अत्यन्त चिन्तनशील बनाने में उसके परिवेश की कुछ घटनाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देती है।

प्रथम घटना तब की है जब उसकी मामी की लड़की 'मालती' बाई की कुआँ का पानी पी लेती है। सामाजिक विषमता की खाई इतनी गहरी व तीखी है कि बाई के वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है– ''अरी बाई,. दौड़ो री, जा मोड़ी को समझाओ। देखो तो मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है, हमारी रस्सी बाल्टी खराब कर दई जाने.....'' और मामी को डाँटते हुए उसने कितनी बातें सुनाई थी– ''क्यों बाई, जई सिखाओ हो तुम अपने बच्चों को? एक दिन हमारे मूड पर मूतने की कह देना....तुम्हारे नजदीक रहते हैं, तो क्या हमारा धरम–करम नहीं है?.....का मरजी है तुम्हारी? साफ–साफ कह दो।''[7] दूसरी घटना तब घटती है जब वह खेल प्रतिस्पर्धा में अव्वल आने के बाद अपनी सहेली हेमलता के साथ उसकी बड़ी बहन के घर जाती है। हेमलता ठाकुर जाति की थी। ''बहन की सास ने हँसकर बातें की। हेमलता को पानी का गिलास दिया। दूसरा गिलास हाथ में लेकर सिलिया के बारे में पूछने लगी– ''कौन है.....किसकी बेटी है.....कौन ठाकुर है.....'' सिलिया कुछ कह न सकी। हेमलता ने कहा– ''मौसीजी, यह मेरी सहेली है, हमारे साथ ही आयी है।'' हेमलता ने बताया– ''इसके मामा–मामी यहाँ रहते हैं मगर इसे उनका पता मालूम नहीं है।''

मौसीजी ने हेमलता से सिलिया की जाति पूछी। हेमलता ने धीरे से बता दिया। जाति का नाम सुनकर मौसी चौंक गयीं फिर स्वयं को संयत करके सिलिया से पूछा– ''गाडरी मोहल्ले के पास रहते हैं. ....'' सिलिया ने हाँ कहकर सिर झुका लिया। मौसी पानी का गिलास लेकर अन्दर चली गयी।''[8]

सिलिया रास्ते भर कुढ़ती आ रही थी। आखिर उसे प्यास लगी थी तो उसने मौसी से पानी माँग कर क्यों नहीं पिया?

यह सामाजिक विषमता की यथार्थ घटनाएँ 'सिलिया' के मन को झकझोर देती है, क्या मौसी जी से पानी मांगने पर वह इंकार कर देती? सिलिया को यह प्रश्न साल रहा था।

ये जीवन्त घटनाएँ सिलिया के मन में अनेक प्रश्न खड़े करते हैं। सिलिया का स्वभाव चिन्तनशील बनता जा रहा था। वह सोचती है– 'आखिर मालती ने ऐसा कौन सा जुल्म किया था? प्यास लगी, पानी निकालकर पी लिया।'.....फिर वह सोचती हेमलता की मौसी से वह पानी क्यों नहीं ले सकी थी? और अब यह विज्ञापन उच्च वर्ण का नवयुवक, सामाजिक कार्यकर्ता, जनता का नेता जातिभेद मिटाने के लिए शूद्रवर्ण की अछूत कन्या से विवाह.....समाज के सामने एक आदर्श रखने की बात....यह सेठी जी महाशय का ढोंग आडम्बर है, या सचमुच ये समाज की परम्परा को बदलने वाले, सामाजिक बदलाव की क्रान्ति लाने वाले महापुरुष हैं?

---

[5]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 27
[6]. वही, पृ0 28
[7]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 28
[8]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 30

ये सारे प्रश्न 'सिलिया' के अन्तर्मन में एक टीस व वेदना को उद्घाटित कर रहे थे और उसके हृदय को भावात्मक कल्पनाश्रित कर रहे थे और वह मन ही मन दृढ़ संकल्पित हुई जा रही थी। उसके शब्दों को देखा जा सकता है– ''मैं बहुत आगे तक पढूँगी, पढ़ती रहूँगी। उन सभी परम्पराओं के मूल कारणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने हमें हिन्दू समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं।''[9] वह दृढ़ता से सोच रही थी– हाँ–हाँ, यह हम जरूर कर सकते हैं। उसकी आँखों में अब एक चमक थी। हीनता और दीनता के भाव तो न जाने कब के जा चुके थे? वह मन ही मन सोच रही थी– झाड़ू नहीं कलम। हाँ, कलम ही उसके समाज का भाग्य बदलेगी।

वास्तव में सदियों से वर्णव्यवस्था के मकड़जाल में फंसा कर दलितों को ज्ञान से वंचित रखा गया। अतः दलितों को समाज के मुख्यधारा में आना है तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक हक का सही हकदार बनना है, तो कलम उठानी ही पड़ेगी कलम उठये बिना सम्मान नहीं मिलेगा।

वहीं दूसरी कहानी 'आतंक के साये में' 'कथादेश' के 2006 अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी प्रतीकात्मकता का स्वरूप ओढ़े हुए है। इस कहानी की नायिका का नाम 'शोला' है। शोला का अर्थ है आग का गोला। जो अन्दर ही अन्दर जलता है। पर इस कथा की नायिका अपने नाम के विपरीत गुण वाली है। शोला नाम होते हुए भी बुझी–बुझी सी रहती है। कहानी का शीर्षक अपने आप में रहस्यपूर्ण है 'आतंक के साये में' किस प्रकार का आतंक है? कौन लोग इसके साये में हैं वह कैसा आतंक है? जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता पर अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा भयंकर विस्फोट करता है जिसका असर सदियों से बरकरार है। जिसके असर से समाज लूला, लंगड़ा व अपाहिज पैदा होता है। इसी रहस्य को उद्घाटित करती हुई कथा नायिका सामाजिक गणित को व्यक्त करती है। वह कहती है– ''अँधेरे का प्रकाश के साथ योग= अँधेरा।''[10]

वास्तव में यह समाज अभी भी अंधेरे में जी रहा है। लोगों के मन में एक दूसरे के प्रति ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना विद्यमान हैं। संविधान में तमाम अधिकार मिलने के बावजूद सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ नहीं है। यहाँ कहानी की नायिका अँधेरे व प्रकाश के प्रतीक को लेकर सामाजिक विषमता के यथार्थ रूप को प्रकट करती है। यह ऊँच–नीच, भेद–भाव, छुआछूत, वर्चस्ववादी लोगों के द्वारा फैलाया गया षडयंत्र है। यह पूरी तरह राजनैतिक शक्ति हासिल करने का एक जरिया है। जिसको समाज के मासूम लोग समझ नहीं पाते हैं और उनके मकड़जाल में फंसकर अपनी पहचान और अस्मिता को खो देते हैं। पर कहानी की नायिका इनके षडयंत्र को भली प्रकार से समझ चुकी है और इसके प्रतिकार के लिए कमर कसने को तैयार है। वह इस सामाजिक आतंक को खत्म करने के लिए कबीर, रैदास, पेरियार, फुले, बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के जीवन–संघर्ष और उनकी विचारधारा को समझने लगी है। इन्हीं महापुरुषों के विचारों से सामाजिक आतंक को खत्म किया जा सकता है। सरकार आतंकवाद को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न कर रही है जैसे– आकाशवाणी, समाचार–पत्र, दूरदर्शन और मीडिया द्वारा बताया जाता है कि सरकार आतंकवादियों से निपटने के यथासम्भव प्रयत्न कर रही है। आतंकवाद के विरूद्ध सरकार द्वारा उठाये गये कदमों की सराहना भी मीडिया द्वारा होती है, ताकि उसे जल्द से जल्द खत्म किया जा सके।

पर कथा की नायिका की समस्या अलग है उसकी समस्या वे आँखें हैं जो उसे घूरती रहती है। उनमें वह विशेष आँखों वाला व्यक्ति, जिसने समाज को वर्णवादी, जातिवादी परम्पराओं में जकड़े रहने का, पुरानी रूढ़िवादी परम्पराओं को चिरंजीवी बनाये रखने का बीड़ा उठाया है। उसने ही जैसे इस बात का प्रण किया है कि वह अपने सनातन मार्ग के विरोधियों को समाप्त कर देगा। समता, सम्मान और स्वतंत्रता के अधिकारों की बात करने वाले समतावादी मूल निवासियों को अकेले ही खत्म कर देगा। वह छल, बल, प्रपंच और साम–दाम–दंड–भेद के द्वारा पुनः विषमतावादी, जातिवादी, मनुवादी, वर्णवादी परम्पराओं को स्थापित करके चिर स्थायी रखना चाहता है। उसकी आँखें मुझे भयभीत करती है।

'शोला' के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं। आखिर यह सामाजिक विषमता क्यों है। इसके आतंक को क्यों नहीं दूर किया जाता है। यह विषमतावादी आतंक देश को बर्बाद कर देगा। वह उन लोगों से भी प्रश्न करती है जो विषमतावादी आतंक को शह देते हैं कहती है– ''विषमतावादी, जातिवादी लोगों के

---

[9]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 31
[10]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 12

इस आतंकवाद को जड़ों से उखाड़ने के लिए सवर्ण समाज के सुविधा–सम्पन्न लोग आगे क्यों नहीं आते? चुप रहकर या चुपके–चुपके शह देकर, वे इस आतंक से बेकसूर, निरीह, दलित, शोषित मूलनिवासी लोगों को भयभीत क्यों बनाये रखना चाहते हैं?''[11]

'शोला' के प्रश्न जायज है, आखिर क्यों हजार वर्षों के बीतने के बाद भी उस पुरानी व्यवस्था को जारी रखा गया है तथा उसको धूप और पानी देकर जीवंत बनाये हुए हैं। इसका बस एक ही उत्तर है राजनीतिक सत्ता और वर्चस्ववादी लोग, जो इस देश पर राज करते आये हैं और राज करते रहेंगे, जब तक वर्णवादी संस्कृति को खत्म न कर दिया जाय। वर्णवादी संस्कृति जब खत्म होगी तब जाकर समता, समानता, बन्धुत्व व भाईचारे की संस्कृति पुनर्जीवित होगी। इसके लिए शिक्षित होकर संघर्ष के कार्य को जारी रखना होगा।

वहीं उनकी एक और प्रसिद्ध कहानी 'कड़वा सच' है। सुशीला जी की कहानी 'कड़वा सच' स्त्री चेतना को उद्घाटित करती हुई एक महत्वपूर्ण कहानी है। 'कड़वा सच' और 'साक्षात्कार' कहानी को डॉ0 रजत रानी मीनू द्वारा सम्पादित 'हाशिए से बाहर' कहानी संग्रह में संकलित किया गया है।

'कड़वा सच' की नायिका 'शशि' एक साधारण परिवार की शिक्षित महिला है जो साहित्य में रुचि लेती है और लेखन का कार्य भी करती है। एक दिन उनकी मुलाकात सुधीर जी से होती है। सुधीर जी मिलनसार और सहयोगी स्वभाव के व्यक्ति हैं और अम्बेडकरवादी आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता भी हैं साथ ही साहित्य–लेखन, प्रकाशन के साथ–साथ आलोचना के क्षेत्र में वे कई बरसों से जुड़े हुए हैं।

एक दिन सुधीर जी शशि के घर आते हैं तथा उनकी लिखी हुई कहानी को पढ़ते हैं साथ ही उन कहानियों की आलोचना भी करते हैं और कहते हैं– ''आपने ये कहानियाँ लिखी हैं? ये सब एक हैं कि चार हैं? मुझे तो सबमें एक ही कहानी नजर आ रही है। सबमें एक ही बात, एक ही पात्र, एक जैसी समस्याएँ, एक जैसी परेशानियाँ। आप ही देखिए, वही आर्थिक तंगी, बच्चे, पति, नौकरी और बस..... ।''[12]

वास्तव में पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को ऐसे सामाजिक जाल में बाँध दिया गया कि वह चाह कर भी अपने परिवेश से बाहर नहीं निकल पाती है। वह आर्थिक तंगी, बच्चे, पति, नौकरी में उलझ कर रह जाती है। यही कारण है कि कथा की नायिका 'शशि' इन्हीं मुद्दों को आधार बनाकर अपनी कहानियाँ लिखती हैं। वह चाह कर भी इन मुद्दों से अलग हट कर अपनी लेखनी नहीं चला पाती है। सुधीर जी के कहने पर वह कई बार प्रयास भी कर चुकी है, लेकिन असफल रही। वास्तव में एक दलित स्त्री को दोहरे अभिशाप का सामना करना पड़ता है। एक पितृसत्तात्मक समाज का और दूसरा दलित होने का। दो चट्टान जिसके शरीर को दबाए हुए है वह कैसे उठे। कथा की नायिका कल्पना मात्र से ही भयभीत हो जाती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''पोर्च में आपकी सुन्दर सजीली महँगी कार खड़ी है। कार में ड्राइवर आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। आप अपनी कार में बैठकर ऑफिस जाती हैं....। मैं हँस पड़ी। कीमती कार में बैठकर ऑफिस जाऊँगी? वाह...! ड्राइवर भी रखूँगी.....? लेकिन ड्राइवर को तनख्वाह कहाँ से दूँगी? जबकि लोन की कटौती के बाद, मुझे तनख्वाह के सिर्फ तीन हजार रुपये महीना ही मिलते हैं। इतने रुपयों में वह कीमती बंगला, वह कीमती दूध का गिलास, वह कीमती कालीन, फेमिना और वुमेंसइरा पढ़ने का न समय है, न सुविधा, कहाँ से लायेंगे यह सब? जैसे सब कुछ मात्र एक रंगीन सपना हो..... ।

फिर वही बातें, अरे, सपना ही सही, मगर कुछ अलग है, अच्छा है..''

मैंने सच्चाई का दामन थामते हुए कहा– ''न बाबा मैं अपने इस छोटे से घर में रहकर ऐसा रंगीन सपना नहीं देख सकती।''[13]

वास्तव में एक दलित स्त्री चाह कर भी अपनी इच्छानुसार अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर पाती है यह विडम्बना ही नहीं समाज में अभिशाप है। कथा की नायिका 'शशि' राजनीतिक क्षेत्र में लेखनी चलाना चाहती थी अतः राजनीतिक परिवेश के जीवन को जीना चाहा पर वहाँ भी पुरुष मगरमच्छ और भेड़िये की तरह लगे। उन्हें वे देखकर डर गयी। पुरुष रूपी दैत्य वहाँ भी उसका पीछा

---

[11]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 16
[12]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 45
[13]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 47

किया, जिससे वह एकदम सहम गयी है और वह कह उठती है– ''राजनीति दलदल है। यह एक भयंकर जंगल है, यहाँ भयंकर जीव–जन्तु रहते हैं। तब आप ही बतायें, मैं राजनीति पर क्या लिखूँ।''[14]

सही अर्थों में एक दलित स्त्री के लिए जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण होता है। वह जहाँ जाती है जिस क्षेत्र में जाती है उसको निराशा ही हाथ आती है। नारी समाज को शुरू से जिस साँचे में ढाला जाता है, वह लचीला नहीं होता, बहुत ठोस और कठोर होता है। बिरल ही कोई नारी होती है, जो इस साँचे को तोड़कर इससे बाहर आ पाती है। शशि के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं और वह चिन्तन करती है और कहती है– ''घर और परिवार के सीमित घेरे में घिरी दलित लेखिका नारी कैसे कर पायेगी बाहर की दुनिया का सजीव चित्रण? कैसे जान सकेगी आधुनिक व्यवहार की बातें? कैसे चल पायेगी समय के साथ कदम–से–कदम मिलाकर? जो अपने देश के विषय में पूरी तरह नहीं जानती, वह विदेशों के विषय में, विदेश यात्राओं के विषय में क्या लिखेगी? राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञापन विषय भूमि पर अनूठी अनन्य कथा का सृजन कैसे कर सकेगी? कैसे करेगी कल्पना और कहाँ से लायेगी यथार्थ की अनुभूति! कैसे लाये वह अपनी लेखनी में विविधता.....? कैसे लाये अपने लेखन में विशालता, कैसे पाये अपने जीवन की संकीर्णता से छुटकारा? कैसे पायें इस कड़वे सच से छुटकारा।''[15]

'शशि' के ये सारे प्रश्न उचित हैं। जैसे कहा गया है कि व्यक्ति की जैसी सोच होती है वह वैसा ही बनता चला जाता है। अतः सही मायने में दलित स्त्रियों की सोच एक सीमित दायरे में बंध जाती है। क्योंकि व्यापक स्तर पर सोचने के लिए विषय वस्तु की जरूरत होती है और 'विषयवस्तु' शिक्षा के माध्यम से ही आत्मसात किया जा सकता है। किसी देश के परिवेश व उसकी सामाजिक व्यवस्था पर लेखनी चलाने से पहले उस देश की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी अत्यन्त आवश्यक हो जाती है और इसके लिए शिक्षा ही एक सशक्त माध्यम है और दलित स्त्रियाँ इस शिक्षा से वंचित है तो ऐसे प्रश्न 'शशि' का करना बिल्कुल उचित है। पर इन प्रश्नों को हल अपने स्तर से भी करना चाहिए। जैसे सुधीर जी शशि को निर्देश देते हुए कहते हैं– ''इसे बदल डालिए। बदलना जरूरी है शशि जी। आखिर नारी कब तक ऐसी बीमार मानसिकता को पालती रहेगी? इसे हटाओ और अपने पात्रों को 'क्या खोया, क्या पाया'– का सही हिसाब सिखाओ। यह सब समय रहते नहीं हो पाया, तो आपके यही पात्र एक दिन आपसे इसका हिसाब माँगेंगे, कि क्यों आपने उन्हें कभी अपनी आँखों से देखने नहीं दिया? क्यों उन्हें अपनी समझ से कुछ करने नहीं दिया?''[16]

इन तमाम बातों से 'शशि' के मन में एक नयी ऊर्जा का संचार होता है। नयी चेतना जागृत होती है और अपनी कमल को नई धार देने में जुट जाती है तथा चैतन्य होकर इस पितृसत्तात्मक संस्कृति व सामाजिक विषमता रूप चट्टान को तोड़ने में जुट जाती है और यहीं से शशि के मन में एक नयी चेतना का आविर्भाव होता है।

मो0नं0 7376887475

ईमेल–anjanabharatibhu@gmail.com

[14]. वही, पृ0 49

[15]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 50

[16]. डॉ0 सुशीला टाकभौरे– ''जरा समझो'' : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं0 2018, पृ0 60

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 45-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नयी कहानी आंदोलन में पाठकों के योगदान का अध्ययन

कौसर साबिदा सुलताना

शोधार्थी,

हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

शोध सार: प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य कहानी को समझने और संप्रेषित करने में पाठक और कहानीकार की भूमिकाओं को स्पष्ट करना है। साथ ही लेखक-पाठक कैसे एक दूसरे पर निर्भरशील होते हैं इस विषय को समझने और उसके प्रभावों को अध्ययन करने पर केंद्रित है। तथा आंदोलन के रूप में उपजी किसी साहित्यिक धारा के केंद्र में कौन कौन से कारक और तत्व मौजूद होते हैं इन बातों को भी समझने का प्रयास किया जाएगा। विशेष रूप से, 'नई कहानी' आंदोलन की रचनाओं की सामाजिक पृष्ठभूमि और भूमिका के निर्माण में पाठक की दृष्टि ने किस प्रकार और किन पहलुओं पर अपनी भूमिका निभाई, इसका विश्लेषण किया जाएगा।

किसी भी आंदोलन को आंदोलन की रूप में पहचान जनता से मिलती हैं। आंदोलन शब्द से ही विशाल जन समागम का कल्पना किया जाता है। साहित्यिक आंदोलनों में इस भूमिका के अन्तर्गत लेखक और पाठक दोनों वर्ग का बराबर हिस्सेदारी होती हैं। किसी एक वर्ग की अनुपस्थिति में दूसरा वर्ग अस्तित्वहीन हैं।

प्रेस की विकास के साथ-साथ पाठकों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। 19 वीं शताब्दी के मध्य से ही पाठकीय प्रतिक्रिया का नए रूप में आरंभ समझा जा सकता है। आज का कृतिकार पाठक की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि पाठक के बिना साहित्य रचना की कल्पना करना एक मुश्किल कार्य है। पाठक की दृष्टि भी बहुआयामी होती है। कई पाठक अपेक्षाकृत अधिक प्रबुद्ध और संवेदनशील होते हैं तो कई पाठक सामान्य, यही कारण है की एक समय में हमें विभिन्न प्रकार का साहित्य प्राप्त होता है। इस शोध पत्र द्वारा मुख्य रूप से पाठक की प्रतिक्रियाओं का कहना मूल्यांकन करने की प्रयास किया जाएगा।

बीज शब्द : नयी कहानी, आंदोलन, लेखक, पाठक, पाठकीय प्रतिक्रिया, सामाजिक यथार्थ, जनता, संवेदनशील

मुल आलेख: हिन्दी कहानी के इतिहास में, नयी कहानी आंदोलन का दौर सबसे ज़्यादा चर्चा में रहा है। इस दौर के लेखकों और आलोचकों ने इसे पुरानी कहानियों से बिलकुल अलग साबित करने की कोशिश की। इस कोशिश की वजह से कई विवाद खड़े हुए। ये विवाद दो बातों पर थे- नयी कहानी को उसकी विषय-वस्तु और लिखने के तरीका को

लेकर। जिसके कारण इस धारा को ख़ास बताया गया, जबकि कुछ लोगों का मानना था कि ऐसी ख़ासियतें तो पहले की कहानियों में भी थीं।

पुरानी कहानियों से अलग होने के बावजूद नयी कहानी कई मायनों में उनसे मिलती-जुलती भी हैं। इसमें मुख्य अंतर यह है कि नयी कहानी के लेखक किसी भी तरह के थोपे हुए आदर्शों को पसंद नहीं करते। वे प्रेमचंद युग की तरह कहानियों के ज़रिए कोई संदेश देने की कोशिश नहीं करते। गहरी भावनाएं और प्रतिक्रियाएं भी इन कहानियों में कम देखने को मिलता हैं। साथ ही, यशपाल की तरह नयी कहानी में परिवेश का बहुत ज़्यादा बारीक विश्लेषण भी नहीं किया जाता। फिर भी, अगर हम आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक बुराइयों पर लिखी गई नज़रिए से इन कहानियों को देखें, तो लगता है कि प्रेमचंद की परंपरा अभी भी ज़िंदा है।

नयी कहानी की सबसे बड़ी विशेषता जो कहानीकारों ने बार-बार उल्लेख किया है 'भोगे हुए यथार्थ' की अभिव्यक्ति । इस अभिव्यक्ति की प्रयास ने व्यापक सामाजिक सन्दर्भों से इन कहानियों को अलग तो अवश्य करती है, लेकिन इस युग की कथाकार चरित्रों को मानसिक गहराइयों में उतारने में संपूर्ण रूप से सफल दिखाई देते हैं।

"मूलतः पुरानी कहानी भी कहानी है और नयी कहानी भी कहानी है। दूसरे हर नये दौर की कहानी पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में नयी होती है, फिर भी नयी कहानी की जो अपनी पहचान बनी, वह पहचान कथ्य और शिल्प के नये प्रयोगात्मक धरातलों के कारण।"[1]

कमलेश्वर' के अनुसार, "कहानी अब स्वयं में एक सम्पूर्ण 'उपस्थिति' है - वह न जीवन का विश्लेषण है, न समस्याओं का सम्प्रेषण और न गुह्य रहस्यों का अन्वेषण। वह अपने में सर्वांश या आंशिक वस्तु सत्य या भाव- सत्य का साक्षात्कार है। नयी कहानी 'झूठ' के बीच से नहीं, सच्चाई और प्रामाणिकता के बीच से गुजरने की अनुभूतिपरक प्रक्रिया है।"[2]

नयी कहानी के सन्दर्भ में 'नामवर सिंह' का मानना है की "होता यह है कि रूप और शिल्प की नवीनता सामान्यतः लोगों का ध्यान सबसे पहले आकृष्ट करती है और कहानी में कविता की तरह रूप-शिल्प की नवीनता बहुत कम आयी है। कारण स्पष्ट है। साहित्य रूप की दृष्टि से कहानी स्वयं बहुत आधुनिक है। वह नवीनता के साथ उत्पन्न ही हुई है। इसलिए सौ पचास वर्षों के इस छोटे से इतिहास में कहानी के रूप में किसी मौलिक परिवर्तन की न तो संभावना है और न आवश्यकता ही । ...इसलिए लोगों ने यदि 'नयी कहानी' नाम की संज्ञा नहीं चलायी, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[3]

"स्वातंत्रयोत्तर भारत में परिस्थितियां बदलीं, जिसके कारण जनता के विचारों को वाणी देने के लिए साहित्यकारों एवं विचारकों को नये तरह के अभिव्यक्ति प्रणाली की आवश्यकता महसूस हुई। फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के तीन विचारकों राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर ने मिलकर एक कहा कहानी धारा का सूत्रपात किया, जिसे 'नई कहानी' नाम से अभिहित किया गया।"[4]

किसी भी रचना के संपूर्णता की प्राप्ति के लिए उसका पढ़ा जाना, विश्लेषण और मूल्यांकन होना अत्यंत आवश्यक है। यह तभी हो पाता हैं जब वह रचना पाठकों के सामने प्रस्तुत होती है। इसलिए किसी भी साहित्यिक कृति में पाठक या पाठकों की प्रतिक्रिया बहुत महत्वपूर्ण होती है। किसी भी रचना के स्थापित होने में उसके समक्ष प्रस्तुत पाठक और कहानीकार के बीच का संबंध बहुत ही गहरा और जटिल रिश्ता होता है, जिसमें दोनों एक-दूसरे पर निर्भरशील होते हैं। कहानीकार की रचना का मुख्य उद्देश्य पाठक तक अपनी बात पहुँचाना होता है। कहानीकार अक्सर अपने आसपास के समाज, लोगों और घटनाओं से प्रेरणा लेते हैं, और इन सब में कहीं न कहीं पाठक की सोच और आवश्यकताओं,भावनाओं का प्रभाव होता है।

इसीलिए किसी भी साहित्यिक रचना के लिए पाठक या पाठकीय प्रतिक्रिया महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः किसी एक कृति में भिन्न-भिन्न अर्थ की संभावनाएं छिपी रहती हैं। ऐसा माना जाता है कि रचना कौशल इसी में है कि लेखक जिस मनोवृति या दृष्टिकोण से किसी बात को देख रहा है, अगर पाठक भी उससे सहमत हो जाए इसी में लेखक की सफलता है। 'परसी ल्यूवक' ने 'पाठक को कृतिकार का स्थान दिया है।' पढ़ने के अनुभव में ही साहित्यिक कार्य जीवंत हो उठता है। पाठक की सराहना, आलोचना या प्रतिक्रिया कहानी कला को निखारती है। इसी कारण पाठक का कार्य भी कृतिकार के समान महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

पाश्चात्य आलोचकों का मानना है कि- पाठक भी कृतिकार के बराबर ही महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि जब पाठक किसी रचना को पढ़ता है, तो वह अपने मन में एक नई दुनिया बनाता है। यह दुनिया उसकी अपनी होती है। पढ़ने के इसी क्रिया से साहित्यिक कृति जीवित हो उठती है। इसीलिए, पाठक का काम भी लेखक जितना ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

'पाठक प्रतिक्रिया आलोचना' की शुरुआत सन् 1938 ई. में 'लुईस रोसेनब्लेट' के पाठ 'लिटरेचर ऐज एक्स्प्लॉरेशन' के प्रकाशन के साथ मानी जाती है। 'नई आलोचना' सिद्धांत की प्रतिक्रिया में इन विचारों ने अमेरिका और जर्मनी में जोर पकड़ा था। इस चिंतन प्रक्रिया के अंतर्गत यह माना गया कि पाठक साहित्य के किसी भी कार्य का एक अनिवार्य हिस्सा है।

पाठक किसी भी साहित्यिक रचना का एक बहुत ज़रूरी हिस्सा होता है। पाठक प्रतिक्रिया सिद्धांत यह मानता है कि पाठक सिर्फ पढ़ने वाला ही नहीं, बल्कि साहित्य का एक सक्रिय भागीदार है। जब वह कोई कहानी पढ़ता है, तो वह बहुत ध्यान से हर छोटी बात पर गौर करता है, जैसे कि- कहानी में कही गई बातें, पात्रों का वर्णन, भाषा में बदलाव, लिखने का तरीका और शैली वह पूरी ईमानदारी और जिम्मेदारी से अपनी राय देता है। अगर ज़रूरत पड़े, तो वह लेखक और संपादक को सुझाव भी देता है। अपने संतुलित, तर्कपूर्ण और सारगर्भित विश्लेषण द्वारा वह यह अपनी अस्तित्व और योगदान का महत्व याद दिलाता हैंI

कहानी के संदर्भ में पाठक की संवेदनशीलता एक अनिर्वार्य रचनात्मक संदर्भ है। उसकी संवेदनशीलता इतनी सजग और सक्रिय होती है कि वह रचना की वास्तविकता और अवास्तविकता का आकलन अपनी संवेदनात्मक क्षमता से बना लेता है। 'मुक्तिबोध' के सौंदर्यशास्त्र सम्बधी दृष्टि से देखें तो यह कहा जा सकता है कि पाठक संवेदनात्मक ज्ञान से संवेदित होता है और अपनी प्रतिक्रियाएं ज्ञानात्मक संवेदना के स्तर पर प्रेषित करता है तथा उसी के माध्यम से पाठ के मर्म तक पहुंच जाता है। एक ही घटना या स्थिति से सभी पाठक समान रूप से प्रभावित नहीं होते हैं। उनके दृष्टिकोण अलग होने के कारण प्रतिक्रियायों में भी भिन्नता दिखाई देती है। पाठक की प्रतिक्रियायों में एकरूपता न होने के बावजूद भी वह लेखक और संपादक के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। पाठक की प्रतिक्रियायों से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस समय और समाज में पाठकों की रूचि क्या था और वह कैसी रचनाएं पढ़ना चाहते थे। साहित्य और पाठक के बीच का रिश्ता बहुत आत्मीय और सजग होता है। एक कृति पाठक की वास्तविक दुनिया और पन्नों पर वर्णित दुनिया के बीच के सेतु के रूप में संबंध विकसित करके पाठक और लेखक को जोड़ती है।

ज्ञातव्य है कि स्वतंत्रता के बाद का भारतीय समाज अनेक स्तरों पर बट गया था। यह भिन्नता और उथल-पुथल सामाज को राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर गहरे रूप में प्रभावित किया है। आजादी के पूर्व जिस तरह के समाज की कल्पना की गई थी उससे कई मायनों में विपरीत एवं त्रासद परिस्थितियाँ निर्मित रहीं थीं। इन त्रासदीपूर्ण स्थिति से एक ऐसे मनःस्थिति का निर्माण होता दिखाई पड़ता है जिसमें व्यक्ति का अकेलापन, तनाव, मानसिक संत्रास आदि समाज

के एक बड़े वर्ग को प्रभावित करता है। ऐसी स्थिति में साहित्य की कसौटी को नए ढंग से अभिव्यक्त करने की जिम्मेदारी साहित्यिक जगत के लिए जरूरी और जोखिम भरा काम रहा है।

"साहित्यिक विधाओं में 'कहानी', कदाचित्, अपने समय के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होती है।"[5]

"स्वतंत्रता के बाद मध्य वर्ग की एक स्वतंत्र सत्ता स्थापित हुई है। उस मध्य वर्ग को उसकी खूबियों व खामियों के साथ पहली बार साहित्य के स्तर पर नयी कहानियों में प्रस्तुत किया गया है।"[6]

"देश की स्वाधीनता एक विभाजन रेखा है जो समाज और साहित्य को देखने का सारा दृष्टिकोण बदल देती है। शुरू में यह परिवर्तन बहुत स्पष्ट नहीं था। लोगों को ऐसा भी लगा कि चौदह अगस्त सन् '47 की रात में सोने और 15 अगस्त की सुबह उठने में कहीं कुछ ऐसा नहीं था जिसे किसी आधारभूत परिवर्तन का संकेत माना जा सके। लेकिन धीरे-धीरे ये परिवर्तन नदी के उद्गम स्थल के छोटे से स्रोत की तरह इस स्वाधीन देश की पूरी धरती पर पसरते दिखाई देते हैं।"[7]

"डॉ. नामवर सिंह ने नयी कहानी की आलोचना का आधार इसी नये मध्यवर्ग की विभाजित चेतना को बनाया और इसी कारणवश उनकी कथा-आलोचना में विडम्बना, विसंगति आदि को स्थान मिलता है।"[8]

"स्वातन्त्र्योत्तर दशक में तमाम राष्ट्रीय सजग बोध के समानान्तर नवलेखन का आन्दोलन जिस सतर्कता तथा साहित्यशास्त्र के बने बनाएं एकेडेमिक तन्त्र के प्रति अवज्ञा और विरोध को जन्म देता है उसी ने कहानी के महत्त्व को भी पहचाना था।"[9]

देखा जाए तो इस आवश्यक जिम्मेदारी को नयी कहानी के रचनाकारों ने अपने कंधों पर उठा के साहित्य और जीवन यथार्थ के विभिन्न जटिल प्रश्नों से पाठक जगत को रूबरू कराया।

'नयी कहानी' शब्द का प्रयोग सबसे पहले 'दुष्यंत कुमार' ने अपने एक लेख में किया था जो 'कल्पना' पत्रिका में छपी थी। आगे चल कर वर्ष 1956 ई० में 'भैरव प्रसाद गुप्त' के द्वारा संपादित 'कहानी' पत्रिका के 'नई कहानी विशेषांक' से नयी कहानी आंदोलन की शुरुआत मानी जाने लगी। नयी कहानी आंदोलन धीरे-धीरे व्यापक रूप धारण करने लगा और 'नई कहानी' और 'सारिका' जैसी अनेकों पत्र- पत्रिकाओं में धारा प्रवाह में नयी चेतना से प्रेरित कहानियों छपने लगीं। 'श्रीपत राय' और 'भैरव प्रसाद गुप्त' ने 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से नए लेखकों को आगे बढ़ने का मौका दिया और नयी कहानी के दौर की तमाम प्रवृतियों को एक साझे मंच पर लाने का प्रयास किया ।

यह आंदोलन, जिसने कहानी कहने के पारंपरिक तरीकों को चुनौती दी और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को दर्शाया, इसने पाठकों को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किया। जब 'नयी कहानी' आंदोलन शुरू हुआ, तो बहुत से पाठकों को इसकी शैली और विषयवस्तु अजीब लगी। वे पारंपरिक कहानियों के आदी थे जिनमें एक स्पष्ट कथानक, नैतिक शिक्षा और निश्चित निष्कर्ष होते थे। 'नयी कहानी' में अक्सर अस्पष्ट अंत, मनोवैज्ञानिक उलझनें और शहरी जीवन की निराशा दिखायीं जाती थी, जो कुछ पाठकों को असहज कर देती थी। धीरे-धीरे, शिक्षित और शहरी पाठक वर्ग ने 'नयी कहानी' को स्वीकार करना शुरू कर दिया। उन्हें इसमें अपने जीवन की सच्चाइयां और भावनात्मक संघर्ष दिखाई देने लगे। 'नयी कहानी' ने उनके अनुभवों को मान्यता दी, चाहे वह अकेलापन हो, संबंध की जटिलता हो या अस्तित्व की तलाश हो। इस आंदोलन ने न केवल कहानी की शैली को बदला, बल्कि इसने हिंदी साहित्य के पाठक वर्ग की संवेदनशीलता को भी विकसित किया।

जहां एक ओर नए दृष्टि सम्पन्न लेखकों का उदय हो रहा था वहीं पाठकों का एक ऐसा वर्ग भी साहित्य जगत में सक्रिय हो रहा था जिसने कहानिकारों की युग चेतना और यथार्थ को अपने जीवन अनुभवों और वैचारिकी से जोड़ कर

देखना-समझना आरंभ किया, जिसकी जानकारी उस समय के प्रमुख पत्रिकाओं में छप रही पाठकीय-प्रतिक्रियाओं में देख जा सकते है।

गौरतलब है कि यही वह समय है जब हिन्दी में लघु पत्रिका आंदोलन की शुरुआत होती है और इस वजह से नये लेखकों की एक विशाल परंपरा के साथ-साथ पाठकों की साहित्यिक अभिव्यक्ति को भी भरपूर स्थान मिलता है। भैरव प्रसाद गुप्त और श्रीपत राय के सांझे सम्पादन में प्रकाशित हो रही 'कहानी' पत्रिका में पाठकों के पत्र रूप में आने वाली पाठकीय प्रतिक्रिया 'कहानी क्लब' स्तंभ में सिलसिलेवार रूप से छपने लगी। इसी प्रकार 'नई कहानियाँ' पत्रिका में 'आपकी चिट्ठी' और 'पत्र' तथा 'सारिका' पत्रिका में 'हमारी डाक में से' एवं 'लेखक पाठक आमने सामने' इसी तरह के स्तंभ रहे हैं, जहां पाठकीय प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित की जाती थीं। इन प्रतिक्रियाओं में अलग- अलग पाठक अपनी चेतना के अनुरूप रचनाओं के संदर्भ में अपने विचारों को उद्घाटित करने का प्रयास करते हैं। जिसमें मूल रूप से कहानी के नएपन, पूर्व की कहानी परंपरा से रिश्ता और कहानी की मनोरंजन धर्मिता पर भी प्रकाश डालते हुए देखा जा सकता हैं।

'कहानी' पत्रिका के साल 1956 के विशेषांक को पढ़ने के पश्चात एक पाठक प्रकाशचंद्र गुप्त, (इलाहाबाद) अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखते हैं "इस वर्ष के विशेषांक ने विशेष रूप से हिन्दी के नए प्रतिभावान कथाकारों पर हिन्दी साहित्य जगत का ध्यान केंद्रित किया है। इन्ही नयी पीढ़ी के कलाकारों को हिन्दी कहानी की परंपरा को आगे बढ़ाना है। पिछले विशेषांक में जो पुराने प्रतिष्ठित कहानीकार छूट गए थे, उन्हे सम्मिलित करके, कहानी पत्रिका यह सिद्ध करता है कि पिछली पीढ़ी के कथाकार मौन नहीं हैं।"

इस प्रतिक्रिया से पाठक आशावादी और समन्वयवादी दिखाई पड़ता है। वह नयी प्रवृति की कहानी के विस्तृत रूप से उभरने की आकांक्षा रखने के साथ-साथ पूर्व पीढ़ी के लेखकों से भी नयी दृष्टि के लिए आशावान है व अपने समाज को लेकर चिंतित दिखाई पड़ता है। नयी कहानी से वह इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसी तरह की कहानी की आशा रखता है। इस आशा और आकांक्षा से यह पता चलता है कि यह नयी कहानी का शुरुवाती दौर है। पाठक नयी कहानी के भविष्य को लेकर उत्साहित है। 'कहानी' पत्रिका के इसी विशेषांक से नयी कहानियाँ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है, जिनमें नयापन उसकी विद्रोह चेतना के साथ उभरता है। इस दशक में अनेक नए तर्ज, मिजाज, और नयी किस्म की कहानियाँ लिखी गई।

यथार्थ से प्रत्यक्ष साक्षात्कार, आदर्श का त्याग और पुराने विचारधारा को तोड़कर नयी लीक बनाने का आग्रह इस युग की कहानियों को नया बनाता है। जहां 'जिंदगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी' (अमरकांत) में अमानवीय होते जीवन संदर्भों को दिखाया गया है। वहीं 'मछलियाँ' (उषा प्रियंवदा) में प्रेम का नया रूप, 'मेरा दुश्मन' (कृष्ण बलदेव वैद्य), 'खोई हुई दिशाएं' (कमलेश्वर), 'टूटना' (राजेन्द्र यादव) में सामाजिकता और अकेलापन, चीफ की दावत (भीष्म शाहनी), वापसी (उषा प्रियंवदा) में पुरानी पीढ़ी का नए पीढ़ी से टकराव देखने को मिलता है। किसी कहानी में कहानीकार ने कुछ छिपाने की कोशिश नहीं की है बल्कि यथातथ्य वर्णन किया है और जड़ होती परंपरा पर वह बार-बार आघात करता हुआ दिखाई देता है। कहानी आत्म सम्बोधन के लिए नहीं बल्कि समाज के लिए या पाठकों के लिए लिखा जाता है। कहानीकार अपनी रचनाओं में पात्रों का सृजन करता है। ये पात्र समाज के बीच से ही उठाए जाते हैं। कहानी इन्ही पात्रों के जरिए पाठक तक पँहुचती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकासक्रम पर यदि गौर करें तो नयी कहानी कोई युग या वाद नहीं बल्कि आंदोलन के रूप में उभरता है। गद्य में इस तरह का आंदोलन एक नवीन परिघटना के रूप में परिलक्षित हुआ है। यह बड़ा कारण है जिसकी वजह से 'आंदोलन' के विकासक्रम को समझते हुए पाठक लेखक के सांझे योगदान को समझने का प्रयास किए

जाने की जरूरत है। सर्वविदित है कि साहित्य के इतिहास का जो अध्ययन हमारे सामने दिखाई पड़ता है वो ज़्यादातर काव्य के पक्ष से ही है। कहानी-उपन्यास जैसी विधाओं की मजबूत चेतन संपन्नता के बावजूद उसे काव्य की समानांतर धारा में रख कर देखा जाता रहा है।

निष्कर्ष: अत: यह कहा जा सकता है कि पाठक एक ऐसा कारक है जिसकी भूमिका का विश्लेषण जरूरी है जिन्हें आंदोलन के विकास प्रक्रिया में सर्वथा गौण दिखायी जाती रही है। लेकिन नयी कहानी आंदोलन की दौर से पाठक के कहानियों के प्रति बढ़ती रुचि और सक्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। पाठक पक्ष पर जोर देने का मुख्य कारण इसलिए भी है कि साहित्य और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए और अपनी विस्तृत होती चेतना को अभिव्यक्त कर रहे थे। उनकी प्रतिक्रियाएं महज कहानियों पर शुभकामना रूपी टिप्पणी ही नहीं कर रहे थे, बल्कि बदलते समाज के यथार्थ को अनुभूत कर अपनी सृजनात्मक चिंतन को भी प्रेषित करने का प्रयास कर रहे थे। विवेच्य पत्रिकाओं के अब तक के अध्ययन के दौरान देखा गया है कि ऐसी दर्जनों लंबी पाठक प्रतिक्रियाएँ है जो कहानी और आलोचनात्मक आलेखों पर अपनी बात रखते हुए कहानी के बदलते शिल्प, कथ्य, रुपक, बिम्ब और प्रतीकों के साथ-साथ नए यथार्थ जीवन दृष्टि में अपने को सहमति या असहमति बताते हुए उसका मूल्यांकन कर रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ:

1. नयी कहानी संवेदना एवं स्वरूप, प्रो० रामकली सराफ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2017, भूमिका
2. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृष्ट स. 94
3. नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृष्ट स. 14
4. नयी कहानी आंदोलन और कमलेश्वर की कहानियाँ, डॉ. अम्बे कुमारी,2016 ,मनीष प्रकाशन, भूमिका)
5. हिन्दी कहानी का इतिहास- 1951-1975, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, 2023, पृष्ट स. 15
6. कहानीकार शेखर जोशी और नयी कहानी, डॉ० उपेन्द्रकुमार सिंह चंदेल, चिन्तन प्रकाशन, 2013, पृष्ट स. 51
7. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, 2018, पृष्ट स. 58
8. हिन्दी कहानी परम्परा और समकाल, अजय वर्मा, सेतु प्रकाशन, 2024, भूमिका
9. नयी कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति, देवी शंकर अवस्थी, प्रकाशन, 2019, पृष्ट स. 14
10. कहानी' पत्रिका, सम्पादक: श्रीपत राय, भैरव प्रसाद गुप्त, 1953

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 51-55
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Digital India and Panchayati Raj: Transforming Rural Administration in Jharkhand

Jyoti Bala
Research scholar
University department of political science Ranchi University, Ranchi.

Abstract
The integration of the Digital India initiative with the Panchayati Raj system marks a significant shift in rural governance, particularly in socio-economically diverse states like Jharkhand. This article examines the role of digital technologies in enhancing the efficiency, transparency, and inclusiveness of Panchayati Raj Institutions (PRIs). Through a review of key government initiatives—such as eGramSwaraj, SVAMITVA, and digital grievance platforms—and supported by academic literature and field-based case studies, the paper analyzes the impact of digital transformation on administrative practices at the grassroots level. The findings highlight both opportunities and persistent challenges, including infrastructural gaps, digital illiteracy, and social exclusion among marginalized groups. The study underscores the need for integrated strategies that combine technological innovation with capacity building, community participation, and localized policy design. In doing so, it contributes to the discourse on digital governance and democratic decentralization in rural India, offering insights relevant for scholars, practitioners, and policymakers.

Keywords:- Digital, democratic, Panchayati, decentralisation

Introduction

The concept of self-governance is one of the cherished values of Indian society. Self-governance has existed in India even in the time of Rig-Veda. Panchayati Raj institutions have undergone many changes especially in its role from the days of the British empire to the 73rd constitutional amendment act in 1992. India's march toward digital transformation has been catalyzed by the flagship Digital India program, launched in 2015. This ambitious initiative aims to make government services available to every citizen electronically by improving online infrastructure and increasing Internet connectivity. Digital India intervention can facilitate the effectiveness of local government. A key frontier for this digital revolution is rural India, where Panchayati Raj Institutions (PRIs) act as vehicles for grassroots governance. The convergence of Digital India with Panchayati Raj offers immense potential to improve administrative efficiency, citizen participation, and rural development—especially in a tribal-rich and underdeveloped state like Jharkhand (Goel & Rajneesh, 2009).

The Panchayati Raj System in Jharkhand

The 73rd Constitutional Amendment Act, 1992 provided constitutional status to Panchayati Raj, mandating the formation of three-tier local self-government bodies—Gram Panchayat, Panchayat Samiti, and Zilla Parishad.The Panchayati Raj system in Jharkhand is a crucial component in implementing and advancing government schemes at the grassroots level. Acting as the foundation of local governance, these decentralized entities ensure the efficient execution of various initiatives while meeting the unique needs of rural regions in the state. One of their key roles is in local administration and decision-making Popular participation and strengthening of local governments are essential to achieve development in the local area. In Jharkhand, PRIs are crucial to the delivery of services in health, education, agriculture, and social welfare. However, systemic challenges like lack of autonomy, capacity gaps, and inefficient resource management have constrained the effectiveness of PRIs (Mathew, 1994).

Panchayati Raj in Jharkhand has seen a complex evolution due to its socio-political fabric. Tribal communities form a significant portion of the population, yet they often remain excluded from full participation due to linguistic, economic, and structural barriers (Chaudhary, 2004; Mishra, 1989). Furthermore, weak coordination between state departments and local bodies affects the implementation of welfare schemes at the grassroots level.

Digital Governance and Panchayati Raj: A Mutual Approach

Participatory planning requires a wide variety of information by the officials as well as the people and civil society. ICT has the potential to provide comprehensive information and increase the speed and quality of this training of numerous stakeholders as well as elected representatives is one of the challenging areas in the effective functioning of local government. Digitalisation can help in using the difficulties faced in the area of training through district Panchayat land internet video conferencing etc it is also provides cyber platform to share variety of Panchayat related experience is from across the country.Digital tools and e-governance platforms have emerged as powerful solutions to enhance the transparency, accountability, and responsiveness of Panchayati Raj Institutions. One such initiative is the eGramSwaraj portal, developed by the Ministry of , and asset creation at the Gram Panchayat level (Isaac & Franke, 2000).eGramSwaraj application has been monumental in bringing together a tech-based, integrated system of information gathering, micro level planning, work-based accounting for last tier of local self-government called Panchayats.

Similarly, the SVAMITVA scheme, launched by the Ministry of Panchayati Raj in collaboration with the Survey of India, employs drone technology to map rural land parcels and distribute property cards. This digital cadastral mapping improves transparency, reduces land disputes, and enables better tax collection at the panchayat level (Palanithurai, 2002).Scheme is a reformative step towards establishment of clear ownership of property in rural inhabited ("Abadi") areas, by mapping of land parcels using drone technology and providing 'Record of Rights' to village household owners with issuance of legal ownership cards (Property cards/Title deeds) to the property owners.

The introduction of mobile applications and platforms like Meri Panchayat, Janmanch, and Darpan have enabled citizens in Jharkhand to lodge complaints, track grievance redressal, and attend Gram Sabha meetings virtually. These tools exemplify how digital governance can bring the state closer to its citizens and strengthen decentralized democracy (Oommen, 2001).

Empowering Rural Citizens through Digital Inclusion

At the heart of Panchayati Raj is the idea of participatory governance. Digital India complements this vision by making information accessible and empowering citizens to engage in local governance processes. Tools like RTI portals, public dashboard systems, and SMS alert services ensure transparency in fund utilization and project execution. This directly aligns with Dey's (1962) vision of a Panchayati Raj system that facilitates civic engagement and democratic decision-making at the grassroots.

Digital literacy campaigns conducted by NGOs and self-help groups, supported by the National Digital Literacy Mission (NDLM), have further enabled rural populations to utilize digital platforms effectively.

Challenges in Digital Transformation of PRIs in Jharkhand

Despite these technological advances, multiple challenges continue to hinder digital integration in rural administration:

1. Infrastructure Gaps: Many villages in Jharkhand lack stable electricity, Internet access, and mobile connectivity, essential prerequisites for digital governance (Bhargava, 1979).
2. Digital Illiteracy: A large portion of the rural population, especially women and the elderly, are digitally illiterate, limiting their engagement with online platforms. The fast and smooth implementation of e-government gets hampered by the official resistance to it. For this the citizens especially the rural must be provided with training in basics of computer internet and web.
3. Socio-Economic Exclusion: Marginalized communities, particularly Adivasis and Dalits, face systemic disadvantages in accessing digital services (Chaudhary, 2004; Sharma, 1994).
4. Administrative Bottlenecks: Limited capacity at the Gram Panchayat level to manage digital platforms and technical systems poses operational difficulties.
5. Data Privacy and Cybersecurity: With increasing digital penetration, concerns regarding data security and misuse have also emerged, requiring strong regulatory frameworks. Lack of provisions for data privacy and cybersecurity is a threat for digital channeling.
6. Resources: Human and financial resources are required for effective implementation of e-governance projects. Human capital in terms of skill professionals with experience in procuring, evaluating and implementing ICT solutions is very much needed in government. Equally financial resources and budget has to be very crucial to ensure initiation and completion of projects.
7. Political Will and Leadership: political will and leadership is very important for implementation of digitalisation of panchayati Raj projects in Jharkhand. Political instability is also posing challenges towards delivering effective public services to the people. Change in the political leadership also result in change in administrative leadership that may create problems specially through implementation.
8. Corruption:Corruption is a major issue in many panchayats in Jharkhand, often involving the misuse or theft of funds and resources. Officials managing land records and building permits are commonly involved in corrupt practices, such as accepting bribes in exchange for services. This leads to delays, increased costs for citizens, and encourages illegal land acquisition and improper use of resources.

Policy Initiatives and Government Support

The Jharkhand State Government, in coordination with the Ministry of Panchayati Raj, has initiated several programs to overcome these hurdles:1. Jharkhand Panchayat Resource Centres (JPRCs):

The Jharkhand Panchayat Resource Centres have been established as digital learning hubs aimed at empowering elected representatives at the grassroots level. These centres are equipped with modern digital tools and resources to conduct training sessions, workshops, and capacity-building programs. Through JPRCs, local leaders can gain essential knowledge in governance, planning, financial management, and the use of digital platforms, enhancing their ability to deliver effective and transparent administration within their communities.

2. Digital Seva Kendras (DSKs):

Digital Seva Kendras play a vital role in bridging the digital divide in rural areas by providing easy access to a range of government services. Located within villages, these centres allow citizens to perform important tasks such as Aadhar card registration, checking and updating land records, applying for pensions, and accessing various welfare schemes. By eliminating the need for villagers to travel to distant government offices, DSKs enhance service delivery, reduce corruption, and promote digital literacy at the grassroots level.

3. Digital Panchayat Scheme:

The Digital Panchayat Scheme is a significant initiative focused on strengthening local governance through technology. It offers tailored training programs for panchayat officials, helping them understand and efficiently use digital governance tools. These tools include e-Gram Swaraj, online financial monitoring systems, and digital portals for service delivery and communication. By equipping officials with the skills to use these platforms, the scheme aims to improve transparency, accountability, and responsiveness in panchayat administration, ultimately benefiting rural communities.

Case Studies in Jharkhand : Digital PRIs in Action

- East Singhbhum District successfully implemented eGramSwaraj to map developmental projects, resulting in improved fund tracking and reduced leakage.
- Gumla District used drone technology under the SVAMITVA scheme to resolve boundary disputes in several tribal villages.
- In Ranchi, women-led Gram Sabhas used the Meri Panchayat app to raise issues of water scarcity, resulting in swift administrative response.

These success stories underscore the transformative potential of digitization when combined with effective local leadership and community participation (Goel & Rajneesh, 2009; Palanithurai, 2002).

Conclusion

The convergence of Digital India and Panchayati Raj represents a transformative opportunity for Jharkhand. While technological tools can modernize rural administration and enhance accountability, the human element—trained local leaders, inclusive participation, and citizen empowerment—remains central to success.

To fully realize the potential of this synergy, investment must be made not only in digital infrastructure but also in capacity building, policy alignment, and community engagement. Only then can Jharkhand's PRIs become true harbingers of democratic governance and rural development in the digital age (Mathew, 1994; Isaac & Franke, 2000).

References

1. Bhargava, B. S. (1979). Panchayati Raj institutions: An analysis of issues, problems and recommendations of Ashok Mehta Committee. New Delhi: Ashish Publishing House.
2. Chaudhary, S. N. (2004). Dalit and tribal leadership in Panchayats. New Delhi: Concept Publishing Company.
3. Dey, S. K. (1962). Panchayat-i-Raj: A synthesis. Bombay: Asia Publishing House.

4. Goel, S. L., & Rajneesh, S. (2009). Panchayati Raj in India: Theory and practice (3rd ed.). New Delhi: Deep & Deep Publications.
5. Isaac, T. M. T., & Franke, R. W. (2000). India's decentralization experience: Bureaucracy, development and people's participation. Delhi: LeftWord Books.
6. Mathew, G. (1994). Panchayati Raj: A study in democratic decentralisation. New Delhi: Institute of Social Sciences.
7. Mishra, S. N. (1989). New horizons in rural development administration. New Delhi: Inter-India Publications.
8. Oommen, M. A. (Ed.). (2001). Decentralised governance and planning in India. New Delhi: Concept Publishing Company.
9. Palanithurai, G. (2002). Democratic decentralisation and Panchayati Raj in India. New Delhi: Concept Publishing Company.
10. Sharma, S. (1994). Grass-root politics and Panchayati Raj. New Delhi: Deep & Deep Publications.

Email id:- jyotibala.agarwal@gmail.com
Contact no:- 7992480755

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 56-61
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय लोकतांत्रिक ढाँचे में चुनावी फ्रीबी प्रचलन का समाज पर पड़ता सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव : एक विश्लेषण

देवेन्द्र राय
शोधार्थी,
स्नातकोत्तर-ग्रामीण विकास, नालंदा खुला विश्वविद्यालय, पटना

सारांश (Abstract)

भारतीय लोकतंत्र अपनी विविधता और जनसंख्या के कारण विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक प्रयोग है। इसमें चुनाव केवल सत्ता परिवर्तन का साधन नहीं बल्कि समाज के भविष्य, आकांक्षाओं और सामूहिक उम्मीदों को दिशा देने वाला उपकरण भी है। किंतु हाल के वर्षों में चुनावों में "फ्रीबी संस्कृति" (Freebie Culture) का प्रचलन अत्यधिक बढ़ा है। चुनावी वादों के तहत मुफ्त वस्तुएँ, अनुदान, ऋण माफी, नकद सहायता या अन्य लाभ सीधे मतदाताओं को प्रदान किए जाते हैं।

यह संस्कृति जहाँ गरीबों और वंचित वर्गों को तत्काल राहत देती है और सामाजिक समावेशन का अवसर प्रदान करती है, वहीं यह राजकोषीय बोझ, निर्भरता की प्रवृत्ति तथा लोकतांत्रिक विमर्श के ह्रास का कारण भी बनती है। यह शोध-पत्र इस प्रवृत्ति का गहन विश्लेषण करता है, विशेष रूप से बिहार राज्य के संदर्भ में, जहाँ साइकिल योजना, पोशाक योजना और हाल की मुख्यमंत्री महिला रोजगार सृजन योजना जैसी पहलें समाज पर गहरा असर डाल चुकी हैं। अध्ययन में यह पाया गया कि चुनावी फ्रीबी से शिक्षा, स्वास्थ्य और महिलाओं के सशक्तिकरण जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। साथ ही, इससे राज्य की वित्तीय स्थिति पर बोझ, मतदाताओं की निर्भरता और विकास की दीर्घकालिक योजनाओं में बाधा जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

शोध-पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि लोकतंत्र में फ्रीबी संस्कृति का स्थान कहाँ है, इसके लाभ और हानियाँ क्या हैं, तथा किस प्रकार इसे जिम्मेदार और टिकाऊ नीति ढाँचे में परिवर्तित किया जा सकता है।

कुंजीशब्द (Keywords)

लोकतंत्र, चुनाव, फ्रीबी, बिहार, जीविका, महिला सशक्तिकरण, विकास, कल्याणकारी राज्य

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहाँ हर पाँच वर्ष पर चुनाव के माध्यम से जनता अपनी सरकार चुनती है। लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप यह है कि चुनाव वैचारिक बहस, नीतिगत प्रस्ताव और विकास योजनाओं पर आधारित हों। परंतु वास्तविकता यह है कि बीते तीन दशकों में चुनावी राजनीति मुफ्त योजनाओं और लोकलुभावन वादों तक सीमित होती जा रही है (Singh 57)।

तमिलनाडु के 1967 के चुनाव में मुफ्त चावल वितरण का वादा भारतीय राजनीति में चुनावी फ्रीबी संस्कृति का प्रारंभिक उदाहरण माना जाता है (Subramanian 85)। इसके बाद लगभग सभी राज्य इस प्रवृत्ति की ओर बढ़े। गरीब और ग्रामीण जनता के बीच शिक्षा, रोजगार और आजीविका की कमी ने राजनीतिक दलों को *"कल्याणकारी योजनाओं"* के रूप में फ्रीबी को एक अहम चुनावी हथियार बनाने पर मजबूर किया।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य इस प्रवृत्ति का समग्र विश्लेषण करना है—इसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को समझना, बिहार के उदाहरणों से इसकी जटिलताओं को उजागर करना, और लोकतंत्र के भविष्य के लिए इससे उत्पन्न संभावित खतरों और अवसरों की पड़ताल करना।

2. सैद्धांतिक ढाँचा (Theoretical Framework)

(क) लोकलुभावनवाद (Populism)

लोकलुभावन राजनीति का मूल आधार जनता को तात्कालिक लाभ देकर उनका समर्थन प्राप्त करना है। फ्रीबी संस्कृति इसी प्रवृत्ति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है।

(ख) कल्याणकारी राज्य (Welfare State)

भारतीय संविधान राज्य को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में देखता है। इस दृष्टि से गरीब और वंचित वर्गों के उत्थान हेतु मुफ्त योजनाएँ औचित्यपूर्ण लगती हैं।

(ग) तर्कसंगत मतदाता सिद्धांत (Rational Voter Theory)

मतदाता अक्सर अपने अल्पकालिक लाभ को प्राथमिकता देते हैं। अतः फ्रीबी संस्कृति इस सिद्धांत का प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ मतदाता अपने वोट के बदले तात्कालिक लाभ स्वीकार करते हैं।

1. चुनावी फ्रीबी की परिभाषा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

परिभाषा: चुनावी फ्रीबी ऐसे लोकलुभावन वादे या घोषणाएँ हैं जिनमें जनता को मुफ्त या अत्यधिक रियायती दर पर वस्तुएँ, सेवाएँ अथवा नकद लाभ देने का आश्वासन दिया जाता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

- 1967: तमिलनाडु में डीएमके सरकार ने मुफ्त चावल योजना का वादा किया (Subramanian 134)।
- 1980–90 का दशक: कई राज्यों में मुफ्त बिजली और पानी की घोषणा।
- 2000 के बाद: उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश और दिल्ली में लैपटॉप, साइकिल, मोबाइल फोन तथा नकद हस्तांतरण जैसी योजनाएँ।
- 2014 और 2019 के आम चुनावों में राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्यक्ष लाभ अंतरण योजनाएँ प्रमुख चुनावी विमर्श बनीं (Government of India, NITI Aayog Reports)।

2. भारतीय लोकतंत्र और चुनावी राजनीति

भारतीय लोकतंत्र का उद्देश्य जनता की सक्रिय भागीदारी और समानता सुनिश्चित करना है। परंतु चुनावी राजनीति में अब विचारधारात्मक बहस और विकास-एजेंडा कम, और मुफ्त योजनाएँ अधिक प्रमुख हो गई हैं (Drèze and Sen 42)।

- चुनावी बहसें अब *"कौन अधिक मुफ्त देगा"* की होड़ तक सिमट गई हैं।
- इससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया की गंभीरता और गुणवत्ता प्रभावित होती है।

3. **फ्रीबी के सकारात्मक प्रभाव**

3.1 गरीब वर्ग को राहत

भारत की लगभग 22% आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करती है (Government of India, NITI Aayog Reports)। मुफ्त राशन, छात्रवृत्ति और पेंशन जैसी योजनाएँ गरीबों को तत्काल राहत देती हैं।

3.2 सामाजिक न्याय और समावेशन

साइकिल योजना (बिहार) ने बालिकाओं के स्कूल नामांकन दर में वृद्धि की (Drèze and Sen 176)। इसी तरह उत्तर प्रदेश की लैपटॉप योजना ने डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया।

3.3 राजनीतिक भागीदारी

फ्रीबी योजनाएँ गरीब और हाशिए पर पड़े वर्ग को राजनीति में महत्वपूर्ण बना देती हैं। इससे उनकी आवाज़ लोकतंत्र में सुनाई देने लगती है (Singh 59)।

3.4 कल्याणकारी राज्य की अवधारणा

भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्व राज्य को समाजवादी और कल्याणकारी बनाने की प्रेरणा देते हैं। मुफ्त योजनाएँ इस आदर्श को आंशिक रूप से साकार करती हैं (Subramanian 141)।

4. **फ्रीबी के नकारात्मक प्रभाव**

4.1 राजकोषीय बोझ

फ्रीबी योजनाओं पर अत्यधिक व्यय से राज्यों का बजट असंतुलित हो जाता है। पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में मुफ्त बिजली योजनाओं के कारण राजस्व घाटा तेजी से बढ़ा (Yadav 25)।

4.2 निर्भरता की प्रवृत्ति

लगातार मुफ्त वस्तुएँ मिलने से समाज में श्रम और आत्मनिर्भरता की भावना कमजोर होती है। लोग सरकारी सहायता पर निर्भर हो जाते हैं (Drèze and Sen 188)।

4.3 दीर्घकालिक विकास की उपेक्षा

मुफ्त वितरण की राजनीति में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे स्थायी विकास लक्ष्यों की उपेक्षा होती है (Singh 61)।

4.4 लोकतांत्रिक विमर्श का ह्रास

चुनाव अब विकास या सुशासन पर नहीं बल्कि मुफ्त वादों पर आधारित होते हैं। इससे लोकतंत्र की बौद्धिक गुणवत्ता गिरती है (Yadav 26)।

4.5 भ्रष्टाचार और अपारदर्शिता

फ्रीबी योजनाओं के लाभार्थियों के चयन में अक्सर अपारदर्शिता होती है। इससे भ्रष्टाचार बढ़ता है और वास्तविक ज़रूरतमंद लोग वंचित रह जाते हैं (Subramanian 152)।

5. **समाज और अर्थव्यवस्था पर दीर्घकालिक प्रभाव**

- **आर्थिक प्रभाव:** मुफ्त योजनाओं से राज्यों का ऋण-भार और राजकोषीय घाटा बढ़ता है (Government of India, NITI Aayog Reports)।
- **सामाजिक प्रभाव:** गरीब वर्ग को तात्कालिक राहत अवश्य मिलती है, परंतु आत्मनिर्भरता की भावना क्षीण होती है।

- **राजनीतिक प्रभाव:** लोकतांत्रिक विमर्श का स्तर घटता है और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा "कौन अधिक मुफ्त देगा" पर टिक जाती है (Yadav 27)।

6. **केस स्टडी**

6.1 तमिलनाडु

डीएमके और एआईएडीएमके सरकारों ने मुफ्त टीवी, मिक्सर, लैपटॉप और चावल वितरण को चुनावी वादों का हिस्सा बनाया। इससे जनता को अल्पकालिक राहत अवश्य मिली, परंतु राज्य की वित्तीय स्थिति बिगड़ी (Subramanian 134)।

6.2 दिल्ली

आम आदमी पार्टी ने मुफ्त पानी और बिजली योजनाएँ लागू कीं। इससे गरीबों को राहत मिली और चुनावों में पार्टी को लाभ पहुँचा। परंतु इन योजनाओं की स्थिरता और वित्तीय बोझ पर सवाल उठे (Singh 60)।

6.3 बिहार और उत्तर प्रदेश

साइकिल और लैपटॉप योजनाओं ने शिक्षा में नामांकन दर बढ़ाई (Drèze and Sen 177)। परंतु दीर्घकालिक रोजगार अवसरों का अभाव बना रहा।

6.4 मुख्यमंत्री महिला रोजगार योजना (बिहार जीविका के माध्यम से)

- **सकारात्मक प्रभाव:**
    - महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता
    - छोटे उद्योगों और कृषि-आधारित रोजगार में वृद्धि
    - ग्रामीण गरीबी में कमी
    - सामाजिक परिवर्तन और बाल विवाह/नशाखोरी जैसे मुद्दों पर जागरूकता
- **नकारात्मक प्रभाव:**
    - ऋण वापसी में कठिनाई और डिफ़ॉल्ट का खतरा
    - बाज़ार से जुड़ाव की कमी
    - सरकारी अनुदान पर अत्यधिक निर्भरता
    - वित्तीय अनुशासन पर दबाव

7. **मतदाता मनोविज्ञान और लोकतांत्रिक विमर्श**

चुनावी फ्रीबी संस्कृति ने मतदाताओं की सोच को प्रभावित किया है। अब वोट डालते समय नागरिक अक्सर मुफ्त योजनाओं को प्राथमिकता देते हैं। इससे लोकतंत्र का विमर्श सुशासन और विकास की बजाय तात्कालिक लाभ तक सीमित रह गया है (Yadav 28)।

8. **सुधार और सुझाव**

भारतीय लोकतांत्रिक ढाँचे में चुनावी फ्रीबी (मुफ्त योजनाएँ) का चलन गहराई से जुड़ चुका है। इसे पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं है, क्योंकि यह राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा बन गया है। लेकिन इसे **नियंत्रित और संतुलित** किया जा सकता है ताकि लोकतंत्र और अर्थव्यवस्था दोनों सुरक्षित रहें।

1. **फ्रीबी बनाम कल्याणकारी योजना में अंतर स्पष्ट हो**

- सरकार और चुनाव आयोग को यह परिभाषित करना चाहिए कि कौन-सी योजनाएँ **विकासपरक निवेश (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्कॉलरशिप, महिला सशक्तिकरण)** हैं और कौन-सी केवल **चुनावी फ्रीबी (जैसे मुफ्त टीवी, लैपटॉप, सोना, बिजली माफी)**।
- यह विभाजन "नीति आयोग" और "वित्त आयोग" की सिफारिशों के आधार पर तय किया जा सकता है।

2. **घोषणापत्र में वित्तीय स्रोत बताना अनिवार्य हो**

- प्रत्येक राजनीतिक दल को अपने चुनावी घोषणा पत्र (Manifesto) में यह स्पष्ट करना चाहिए कि वादों को लागू करने के लिए पैसा कहाँ से आएगा।
- चुनाव आयोग को यह अधिकार दिया जाए कि वह अव्यवहारिक (unrealistic) वादों को चिन्हित करके जनता को चेतावनी दे। विशेष रूप से बिहार जैसे राज्यों में उपयोगी होगा, क्योंकि यहाँ की वित्तीय स्थिति सीमित है।

3. **जन-जागरूकता अभियान** ताकि मतदाता समझें कि दीर्घकालिक विकास अधिक लाभकारी है।

- केवल कानून और आयोग की भूमिका पर्याप्त नहीं होगी।
- नागरिक समाज, विश्वविद्यालय और मीडिया को यह जागरूकता फैलानी चाहिए कि अल्पकालिक मुफ्त योजनाएँ जनता को स्थायी समाधान नहीं देतीं।
- बिहार जैसे राज्यों में *युवा मतदाताओं* को यह समझाना ज़रूरी है कि शिक्षा, उद्योग और रोज़गार पर आधारित नीतियाँ ही उनके भविष्य के लिए वास्तविक निवेश हैं।

4. **नीति आयोग और वित्त आयोग निगरानी करें** कि राज्यों का व्यय अनुशासित हो।

- प्रत्येक राज्य सरकार को वार्षिक बजट में यह दिखाना चाहिए कि फ्रीबी योजनाओं पर कितना खर्च हुआ और उसका परिणाम क्या रहा।
- "आउटकम बजट" (Outcome Budgeting) लागू करना चाहिए, जिससे यह पता चले कि योजनाओं से शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और सामाजिक समानता पर क्या प्रभाव पड़ा।

5. **न्यायपालिका और संसद की संयुक्त पहल**

- सुप्रीम कोर्ट ने पहले ही कहा है कि फ्रीबी संस्कृति पर रोक लगाने के लिए **कानून** बनाया जाए।
- संसद को एक "**फ्रीबी रेगुलेशन एक्ट**" लाना चाहिए जिसमें यह प्रावधान हो कि:
    - कोई भी दल अपने घोषणापत्र में *फ्रीबी वादों* का स्रोत बताए।
    - राज्य का *राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit)* एक सीमा से अधिक होने पर नई फ्रीबी योजनाएँ लागू न हों।

9. **दीर्घकालिक दृष्टिकोण**

- लोकतंत्र में चुनावी वादे होना स्वाभाविक है, लेकिन उन्हें *जन-कल्याणकारी नीतियों* के साथ जोड़ा जाए।
- फ्रीबी का लक्ष्य "**गरीबी उन्मूलन और सामाजिक न्याय**" होना चाहिए, न कि केवल "**वोट प्राप्ति**।"

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र की सफलता उसकी विविधता और जनभागीदारी में निहित है। यह सत्य है कि गरीब और वंचित तबके को साइकिल, छात्रवृत्ति, पोशाक, मुफ्त बिजली या अन्य योजनाओं से तत्काल राहत और अवसर मिलते हैं। विशेषकर बिहार जैसे राज्य में लड़कियों की साइकिल योजना ने शिक्षा में क्रांतिकारी असर डाला और सामाजिक बदलाव की नींव रखी।

दूसरी ओर, अत्यधिक फ्रीबी राजनीति ने आर्थिक अनुशासन, विकास की दीर्घकालिक योजनाओं और मतदाता की तर्कसंगत सोच पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला है। जब चुनाव जीतने का साधन केवल मुफ्त वादे बन जाते हैं, तो शासन की गुणवत्ता, रोजगार सृजन और सामाजिक ढाँचे का सुधार पीछे छूट जाता है।

अतः फ्रीबी को पूरी तरह नकारने के बजाय **उसे संतुलित और जवाबदेह बनाया जाए।** चुनाव आयोग, न्यायपालिका और संसद को मिलकर ऐसा ढाँचा तैयार करना होगा जिससे *जनकल्याणकारी योजनाएँ* और *लोकलुभावन फ्रीबी* अलग-अलग पहचानी जा सकें। सामाजिक स्तर पर जागरूकता फैलानी होगी कि मतदाता केवल तत्काल लाभ से प्रभावित न होकर दीर्घकालिक नीतियों को प्राथमिकता दें।

संदर्भ सूची

- Drèze, Jean, and Amartya Sen. *An Uncertain Glory: India and its Contradictions*. Princeton UP, 2013.
- Election Commission of India. *Model Code of Conduct for the Guidance of Political Parties and Candidates*. ECI, 2022.
- Government of India. *NITI Aayog Reports on State Finances*. 2021.
- Singh, Pratap Bhanu. “Democracy, Welfare and Populism in India.” *Journal of Democracy*, vol. 31, no. 3, 2020, pp. 54–68.
- Subramanian, Narendra. *Ethnicity and Populist Mobilization: Political Parties, Citizens, and Democracy in South India*. Oxford UP, 1999.
- Yadav, Yogendra. “Electoral Politics in the Time of Freebies.” *Economic and Political Weekly*, vol. 57, no. 32, 2022, pp. 23–27.

दूरभाष: 9911557600

ईमेल: devenderroy@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 62-65
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पंचवटी का काव्य-शिल्प

डॉ० स्नेहलता कुमारी
सहायक प्राचार्य,
हिन्दी विभाग, बलिराम भगत महाविद्यालय, समस्तीपुर

शोध-सारांश-
'पंचवटी' आधुनिक युग के कवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित खण्ड-काव्य है,जो राम-सीता,लक्ष्मण के वनवास की अवधि में घटित हुई घटनाओं पर आधारित है। पौराणिक आधार ग्रहण करते हुए यह रचना युगीन सरोकारों से युक्त है। इस रचना के अंतर्गत मानवीय जीवन के व्यवहारिक पक्षों का उल्लेख करते हुए कवि ने जीवन में व्याप्त विसंगतियों,प्रतिशोधों,कुंठाओं से सामना करने की दिशा में अपने चिंतन-कर्म को पाठकों के समक्ष रखा है।प्राकृतिक दृश्यों को आलंबन बनाकर आश्रय के हृदय में मनोभावों को जगाया गया है।अनुभूति एवं संवेदना को पौराणिक देशकाल से सम्बद्ध कर आधुनिक जीवन की भाग-दौड़ को कवि ने अपनी वैचारिक शक्ति से शब्दाकार किया है।यह रचना कर्तव्य और समर्पण के सामंजस्य से समस्याओं के समाधान की तलाश करती है।सीता के माध्यम से नारी के जीवन की करुणा की सूक्ष्म रेखाओं को कवि ने चित्रित किया किया है।

बीज-शब्द-करुणा,प्रकृति,राम,सीता,लक्ष्मण,शूर्पणखा

प्रस्तावना-

रचना रचनाकार की कल्पना की उपज होती है।कल्पना के संदर्भ में अरस्तू की मान्यता है की "कलाकार का सत्य इतिहास का सत्य नहीं,अपितु संभावनाओं का सत्य होता है।विज्ञान एवं साहित्य में सत्य का चित्रण भिन्न-भिन्न रूप से होता है।उनके विचार से कल्पना ही वह शक्ति है,जिसके माध्यम से कवि प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को अपूर्व रूप देकर अभिव्यक्त करता है।भावों और संवेदनाओं को मूर्त्त रूप कल्पना ही प्रदान करती है।"[1]"आचार्य शुक्ल मानसिक रूप विधान को ही कल्पना मानते हैं।अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत् के रूपों एवं दृश्यों का हम बोध करते हैं।इन्हीं रूपों की भावना जब हम मन के भीतर करते हैं तब यह कल्पना बिंबों के रूप में मूर्त्त होती हैं,भावों और मनोविकारों का रूप विधान भी बाह्य जगत् की रूप- तरंगों से हुआ है।"[2] कल्पना की क्रिया-शीलता ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाशीलता अनुभव,संवेग,स्मृति,चिंतन,चपलता जैसे मानव बुद्धि-बल के घटकों पर निर्भर करती है।"कल्पना महान् प्रतिभा का अंश है।"[3]गुप्त जी की रचना 'पंचवटी' की पृष्ठभूमि मूलतःअरण्य काण्ड है।"विभिन्न तथ्यों के संश्लेष से सुंदर मानसिक चित्र "[4] के द्वारा रचनाकर्म को अपनी लेखनी से गुप्त जी ने विविध वर्णों से सजाया है।'पंचवटी' के काव्य-शिल्प को निम्नांकित विश्लेषणों के आधार पर समझा जा सकता है-

1. काव्य की सृजनात्मकता का आधार व प्रेरणा-स्रोत

2. भाषा-शैली

3. चरित्र-विधान

विश्लेषण-

1.काव्य की सृजनात्मकता का आधार व प्रेरणा-स्रोत -

खण्ड काव्य 'पंचवटी' के सृजन-कर्म की आधार भूमि रामचरितमानस के 'अयोध्या कांड' तथा 'अरण्य कांड' हैं।'आयोध्याकाण्ड ' में राम के वन गमन से जुड़ी घटनाओं तथा वन-प्रस्थान का उल्लेख है।'अरण्य कांड' में राम,सीता,लक्ष्मण के वन-प्रवास का उल्लेख है।वन-प्रवास की अवधि में इन तीनों के द्वारा चित्रकूट,दंडक वन और पंचवटी जैसे स्थलों पर समय व्यतीत किए गए। मिथकीय चरित्रों की पृष्ठभूमि पर सृजित इस रचना में हमें युगीन सरोकार और परिवेशगत परिस्थितियों ने आस्था,कर्तव्यपरायणता,व्यवहारिकता जैसे संभ्रांत-सोच से कवि ने साक्षात्कार कराया है।अंतर्द्वन्द्वों के धागे में उलझे मन और उससे मुक्ति पाने की व्याकुलता,सुख-सुविधाओं का त्याग और दुश्चिंताओं का आवरण,भ्रम जाल से निकलकर सत्य का सामना कवि की सृजनात्मकता के प्रेरणा-स्रोत हैं।

"किस व्रत में है व्रती वीर यह / निद्रा का यों त्याग किए ,राजभोग्य के योग्य विपिन में ,बैठा आज विराग लिए ।बना हुआ है प्रहरी जिसका /उस कुटीर में क्या धन है, जिसकी रक्षा में रत इसका तन है,मन है,जीवन है।"[5] यहाँ,लक्ष्मण को लक्ष्य करके कवि ने ये पंक्तियाँ लिखीं हैं,जिसमें ये कहा गया है कि राज -सुख का त्याग कर लक्ष्मण अपने भाई और भाभी के साथ वन में जीवन व्यतीत कर रहे हैं और वन में बनाई गई कुटिया की रक्षा में मग्न है। लक्ष्मण का राम और सीता का अनुचर बन जाना इस भाव का द्योतक है कि परस्पर प्रेम से प्रवंचनाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

2 . भाषा-शैली -

'पंचवटी' की भाषात्मक संरचना और वाक्य-विन्यास के अनुशीलन के पश्चात् यह कहा जा सकता है की रचना के भीतर प्रकृति-चित्रण में "न तो छायावाद जैसी रोमानीयत है न प्रगतिवाद जैसी नग्नता और प्रयोगवाद जैसा चमत्कार।"[6] प्रकृति की गोद में मानवों को आधुनिक जीवन की व्यस्तताओं और चकाचौंध से निकलकर शीतल सुख का अनुभव होता है।इस अनुभूति का एक उदाहरण-

"शुभ सिद्धांत वाक्य पढ़ते हैं,शुक-सारी भी आश्रम के,मुनिकन्याएँ यश गाती हैं,क्या ही पुण्य-पराक्रम के।---------
सिंह और मृग एक घाट पर पानी पीते हैं।"[7]

यहाँ,ध्यातव्य है की प्रकृति-चित्रण के वाक्य-विन्यास में 'सिंह और मृग का एक घाट पर पानी पीना' परस्पर विरोधी गुण के आधार पर विरोधाभास को अभिव्यंजित करता है।

"चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता काव्य के अभिप्रेत की उद्देश्य की प्रस्तुति के साथ-साथ भाषा की सम्प्रेषण शक्ति में भी वृद्धि करते करते हैं।"[8] उदाहरणार्थ-

"देख क्यों न लो तुम,मैं जितनी सुंदर हूँ उतनी ही घोर,दीख रही हूँ जितनी कोमल / हूँ उतनी ही कठिन-कठोर।सचमुच विस्मय पूर्वक सबने देखा निज समक्ष तत्काल-वह अति रम्य रूप पल भर में सहसा बना विकट-विकराल।"[9]

यहाँ,शूर्पणखा का प्रारंभिक रूप जो कि कोमल-करुण कांता के वेश में था,राम और लक्ष्मण के द्वारा प्रणय-निवेदन ठुकरा दिए जाने के पश्चात् अत्यंत ही विकराल और विकृत रूप धारण कर चुका था। इन्हीं परिस्थितियों का चित्रण कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है।

' पंचवटी ' के सृजन में कवि ने शब्द चयन एवं प्रयोगधर्मिता में यौगिक शब्दों यथा - वरमाला ,जयमाला ,समयाधीन ,अर्द्धयामिनी ,प्राणानुज ,मुंडमाला ,एवं योगरूढ़ शब्दों यथा - कामरूप ,मिथिलेशनन्दिनी ,रामानुज ,पंचवटी ,प्रज्ञाचक्षु ,राघवेंद्र द्वारा काव्य -सौष्ठव तथा रचना के भावाभिव्यक्ति में सफलता पाई है । "कवि ने समस्त भाषा प्रयोग भावों ,परिस्थितियों एवं मन:स्थिति के अनुसार किए हैं "।[10]

कतिपय मुहावरों तथा आनुप्रासिक शब्दों की बहुलता काव्य में यथास्थान देखी जा सकती है। "पौ फटना"तथा "अँगुली पकड़ प्रकोष्ठ पकड़ लेना" मुहावरे को उदाहरणार्थ देख सकते हैं।

आनुप्रासिक युग्मक शब्दों के उदाहरण -

वीर-वंश,नियति-नटी,मर्त्यलोक-मालिन्य,खेल-खिलाकर,कल-कल,कवि-कुल ,पुण्य-पराक्रम,मकरंद-मधुरिमा,भाषण-भंगी,प्रेम-पात्र,वैर-विरोध,कठिन-कठोर इत्यादि।

3. चरित्र-विधान -

'पंचवटी' में सृजनात्मक भूमिका की दृष्टि से राम,सीता और लक्ष्मण प्रमुख पात्र हैं। साथ ही 'पंचवटी' के कथा-अभिविन्यास के अभिप्रेत को पाठकों तक संवेदनाओं का संवाहक बनाने वाली स्त्री-पात्र शूर्पणखा का महत्वपूर्ण स्थान है।एक तरफ जहाँ राम,सीता,लक्ष्मण के द्वारा काव्य-सृजन में रचनाकार के मानस-पटल पर मानव स्वभाव की विवेकवान् , मानवतावादी , करूण, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं निष्काम की रेखाएँ खींची गई हैं, तो वहीं दूसरी तरफ शूर्पणखा ने स्वार्थ, संदेह, संकट जैसी विपरीत परिस्थितियों को चुनौती के रूप में कवि के समक्ष उपस्थित किया।परिणामस्वरूप चुनौती की स्वीकार्यता में रचना में क्रोध, जुगुप्सा, भय, विस्मय जैसे स्थायी भावों ने स्थान पाया। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

{अ}राम के विवेकी चरित्र के आधार पर-

"कहा राम ने कहा कि यह सत्य है / सुख-दु:ख सब हैं समयाधीन, सुख में कभी न गर्वित होवे दीन।"[11]

{आ}सीता की करुण दृष्टि के आधार पर-

"हाँ,पालित पशु-पक्षी मेरे तंग करे यदि तुम्हें कभी,उन्हें क्षमा करना होगा तो, कह रखती हूँ इसे अभी !"[12]

{इ}लक्ष्मण के कर्त्तव्यनिष्ठ और निष्काम चरित्र का वर्णन राम के मुख से करवाया गया है-

"किन्तु विवाहित होकर भी यह मेरा अनुज अकेला है, मेरे लिए सभी स्वजनों की कर आया अवहेला है।"[13]

"एक अपूर्व चरित लेकर जो उसको पूर्ण बनाते हैं, वे ही आत्म निष्ठ जन जग में परम प्रतिष्ठा पाते हैं।"[14]

शूर्पणखा की चारित्रिक पंक्तियाँ-

"पर किस मन से वरूँ किसी को ? वह तो तुमसे हरा गया !"

चोरी अपराध और भी, लो यह मुझ पर धरा गया !"

"झूठा ? "प्रश्न किया प्रमदा ने और कहा-"मेरा मन है !

निकल गया है मेरे कर से, होकर विवश,विकल,निरुपाय !"[15]

'बहुविवाह-विभ्राट' (बहुत-से विवाह के संकट या उत्पात)[16] जैसे शब्द की उपस्थिति से रचनाकर्म में स्त्री-पुरुष के बीच के संबंधों में व्याप्त असंतोष की ओर संकेत किया गया है, जहाँ सहृदय भावों की उपलब्धता नगण्य है और प्रेम के आडम्बर की बहुलता है।

'पंचवटी' के कथा-विन्यास में कवि ने प्रकृति और वन्य जीवों का मानवीकरण कर लक्षणार्थ के सहारे जिन अन्य पात्रों को सृजित किया है उनमें द्विज, कुसुम, समीर, भौंरा, केकी (मोर) सरीखे प्राकृतिक घटकों ने मिलकर काव्याभिव्यक्ति के द्वारा पाठकों के लिए एक मनोरम चित्र प्रस्तुत किए हैं-

"नाटक के इस नए दृश्य के, दर्शक थे द्विज लोग वहाँ,

करते थे शाखासनस्थ वे, समधुप रस का भोग वहाँ।"[17]

यहाँ, 'द्विज' शब्द का प्रयोग 'पक्षी' के लिए हुआ है।

उपसंहार-

निष्कर्षत: यह कहना समीचीन है की गुप्त जी की रचना 'पंचवटी' की सृजन-प्रेरणा के स्रोत पौराणिक पुराख्यान है, जिनमें सुचिन्तित वैचारिक आधार, प्रौढ़ कवि-कल्पना और परिष्कृत रचना-शैली के प्रतिमान हैं। जीवन

में व्याप्त अहंकार, स्वार्थ, कपट, घृणा जैसे व्यसनों के कारण मनुष्य अवसादग्रस्त हो जाता है। इन्हीं परितापों और कष्टों से मुक्ति की तलाश करता हुआ कवि पंचवटी की छाँव में आ पहुंचा है, जहां क्षणभंगुर जीवन की उष्णता से स्वतंत्र हो ईषत् शीतलता प्राप्त हो सके।

संदर्भ-सूची -

1. डॉo रामेश्वर प्रसाद सिंह , प्रथम संस्करण: 1978, पाश्चात्य समीक्षा: एक परिदृश्य, अनुपम प्रकाशन, पटना पृष्ठ संo - 48
2. डॉo शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण 2021 ईo, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, भारतीय विद्या संस्थान वाराणसी, पृष्ठ संo – 170
3. डॉo रामेश्वर प्रसाद सिंह , प्रथम संस्करण: 1978, पाश्चात्य समीक्षा: एक परिदृश्य, अनुपम प्रकाशन, पटना पृष्ठ संo - 48
4. डॉo रामेश्वर प्रसाद सिंह , प्रथम संस्करण: 1978, पाश्चात्य समीक्षा: एक परिदृश्य, अनुपम प्रकाशन, पटना पृष्ठ संo – 49
5. मैथिलीशरण गुप्त, पाठ्य संस्करण: 1981, पंचवटी, साकेत प्रकाशन, झांसी पृष्ठ संo -4
6. डॉo उमाकांत गुप्त, द्वितीय संस्करण: 2000, नई कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन-दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-पृष्ठ संo 202
7. मैथिलीशरण गुप्त, पाठ्य संस्करण: 1981, पंचवटी, साकेत प्रकाशन, झांसी पृष्ठ संo-13
8. डॉo उमाकांत गुप्त, द्वितीय संस्करण: 2000, नई कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन-दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-पृष्ठ संo 203
9. मैथिलीशरण गुप्त, पाठ्य संस्करण: 1981, पंचवटी, साकेत प्रकाशन, झांसी पृष्ठ संo - 57
10. डॉo उमाकांत गुप्त, द्वितीय संस्करण: 2000, नई कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन-दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-पृष्ठ संo 201
11. मैथिलीशरण गुप्त, पाठ्य संस्करण: 1981, पंचवटी, साकेत प्रकाशन, झांसी पृष्ठ संo -63
12. मैथिलीशरण गुप्त, पाठ्य संस्करण: 1981, पंचवटी, साकेत प्रकाशन, झांसी पृष्ठ संo -40
13. वही,पृष्ठ संo - 52
14. वही, पृष्ठ संo – 53
15. वही, पृष्ठ संo - 31
16. वही, पृष्ठ संo - 31
17. वही, पृष्ठ संo – 37

ई-मेल - snehalataspj@gmail.com

संपर्क-9122634294

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 66-69
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में पारिस्थितिक समस्याएँ

ANITHA RANI.R (अनिताराणी आर)
RESEARCH SCHOLAR,
DEPARTMENT OF HINDI,
UNIVERSITY COLLEGE, THIRUVANANTHAPURAM,KERALA

प्रकृति से आशय मनुष्येतर संसार से है, जिसमें जंगल, पर्वत, सरिता, कछार, चन्द्र, ज्योत्सना, प्रभात एवं सांध्य नभ की रंग-बिरंगी छटाएँ और जंगल में जंगली पशुओं की कला- विहीन उछल-कूद आदि सभी सम्मिलित हैं। डॉ. किरण कुमारी गुप्ता का कहना है कि, "प्रकृति के अन्तर्गत उन्हीं उपकरणों को मानना चाहिए जिनका विकास मानव के योगदान से परे हैं। प्रकृति का प्राकृतिक अर्थ स्वाभाविक है। अतः प्रकृति के अन्तर्गत वहीं वस्तुएँ आती हैं, जिन्हें मानव के हाथों ने सजाया या सँवारा नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें अपनी ओर आकर्षित करती है।"**1** इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, मानवेतर जड़-चेतन समुदाय को प्रकृति कहते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का कारण प्रकृति है।

प्रकृति मनुष्य की आदिम सहचरी है। प्राचीन काल के प्रथम पुरुष ने जब अपने नयन खोले होंगे तो उसको प्रकृति का ही सहयोग प्राप्त हुआ होगा। साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि , प्रकृति मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमिका आधार स्तम्भ है।

प्रकृति और भगवान एक ही है। भगवान का दूसरा नाम प्रकृति है। इसी प्रकृति की सहायता से वह सांस लेता है, अपना पेट भरता है, जब वह प्रकृति को अपने अनुसार चलाने की कोशिश करता है, उसका दोहन करता है तो प्रकृति उसे अपना रूप दिखाकर उसे क्षति पहुँचाती है। जैसे- मानव अपने सुख के लिए अधिक-से- अधिक जंगलों को काटकर अपना मकान बनाता है। पहाड़ों को काट-काट कर रास्ता बनाता है। नदिओं का मुख अपनी सुविधा अनुसार मोड़ लेता है। अंत में इसका दुष्परिणाम ही निकलता है। जंगलों को कटने से सुख या बाढ़ आ जाती है। नदियों को छोड़ने से उनके साथ दोहन करने से वह अपना रूद्र रूप दिखाकर पूरे के पूरे गंवार-नगर को डुबो देती हैं। बहुत अधिक प्रदूषण सेवायुमण्डल में विषैली गैस उत्पन्न हो जाती है, जिससे मानव को कैंसर, चर्मरोग आदि बिमारियों हो जाती है।

प्रकृति में जब तक समतोलन रहता है तो वह शांत रहती है, लेकिन प्रकृति में असंतुलन चाहे किसी भी कारण से हो समाज के सामने समस्या को ही उत्पन्न करता है। प्रकृति जहाँ मनुष्य के लिए कल्याणमयी है, पीषण दायिनी है, वहीं अपने विनाशक रूप में उसके विनाशका कारण भी बनती है। सरीता बह रही है किन्तु उस पर बाँध बनाकर जब उससे छोड़छाड़ की जाती है, तो वही बाढ़ का कारण वन जाती है। जंगलों को काटे जाने से प्राकृतिक

संतुलन बिगड़ता है। जिससे एक-ओर पर्यावरण दूषित होता है तो दूसरी ओर वर्षा की कमी होती है। न केवल प्रकृति के वृक्षों अपितु वनचर जीव-जंतुओं का नाश भी प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ने में सहायक होता है, और ज्यों-ज्यों यह संतुलन बिगंड़गा त्यों-त्यों बहुत सामाजिक समस्याएँ पैदा होंगी।

पर्यावरण संबंधी समस्या वर्तमान देश क मुख्य समस्याओं में से एक है। विज्ञान आर्शीवाद भी है, और शाप भी है। सही इसी प्रकार देश के अन्नती के लिए चलाई जा रही उन्नती योजनाएँ, स्थापित किए जाने-वाले परिवहन के साधन, कल-कारखाने, ताप, उर्जा संयंत्र, परमाणु विस्फोट आदि विकास को नई गति देने ही हैं, लेकिन साथ ही देश के सामने बहुत अधिक समस्याएँ भी पैदा करते हैं।

कल-कारखानों की चिमनियों से निकलने वाला धुआँ पर्यावरण को जहाँ दूषित कर रहा है। वही ताप परमाणु उर्जा संयंत्र से निकलनेवाली रख, परमाणु विस्फोट से उत्पन्न होने वाली रेडियो धर्मी किरणों के दुष्प्रभाव आदि को देखा जा सकता है। इसके अलाव सड़क निर्माण, मकान निर्माण आदि के लिए पेड़ों की अन्याय कटाई भी पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। पर्यावरण से संबंधित स्मस्याएँ लोगों के तंदुरुस्त पर विरूद्ध प्रभाव डालती है। इस तरह की समस्याओं का उल्लेख साहित्यकार वीरेंद्र जैन जी, जैसे सतर्क लेखक ने अपने उपन्यासों में बहुत अधिक सहजता के साथ किया है

बाँध निर्माण की समस्या

आज़ादी के बाद देश के मल्लाहों ने बाढ़ की समस्या से पूर्ण होने के लिए एवं बिजली उत्पादन के लिए नदियों पर बाँध बनाने की योजनाएँ बनाई। उनकी सोच बहुत अधिक दीर्घकालिक व उपयोगी थी। नर्मदा बाँध योजना, दामोदर बाँध योजना, भाँखड़ा बाँध परियोजना, राजघाट बाँध योजना, रिहन्द बाँध, कोसी बाँध आदि ऐसी परियोजनाएँ थीं। जिनके निर्माण सेनगर और गंवार क्षेत्रों के लिए पर्याप्त मात्रा में बिजली प्राप्त की जा सके तथा बाढ़ के नुक्सान से देश को बचाया जा सके। लेकिन इन परियोजनाओं से होने वाले दुष्परिणामों के बारे में कदाचितु नहीं सोचा गया।

बाँध परियोजनाओं को समूचा करने के लिए समीप की ज़मीन को आधिगृहीत किया गया, जिससे बसे बसाए गंवार के गंवार उजड़ गए। उनके समक्ष पुनर्वास की दुर्घटना समस्या उत्पन्न हो गई। इतना ही नहीं हरे-भरे वृक्षों को काटा गया जिनसे परियावरण संबंधी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई। लेकिन बाँधों का निर्माण जल प्लावन को मना करने के लिए किया गया था। लेकिन पीछे से बहुत जल आ जाने के कारण बाढ़ का भी खतरा मंडराने लगा। पशुपालकों के लिए भारी संकट पैदा हो गया, लेकिन चारा-गाहों को उजाड़ दिया गया। बाँध परियोजनाओं से पैदा समस्याओं का चित्रण साहित्यकार वीरेंद्र जैन जी ने अपने उपन्यास 'डूब' और 'पार' में फैलावा से यथार्थ के पन्ना पर किया है। बाँध बनने के कारण जगह-जगह गड्ढ़े खोद गए जिससे ढ़ोर चराने वाला बरेदी जानवरों को चराने से मना कर देता है। लेकिन "बाँध वालों ने वजराई के उस तरफ़, पथराबब्बा के पार से लेकर जाने कहाँ तक तो गैल की गैल खोद ली है। मिट्टी निकालकर ले गए हैं, वे हर दस कदम पर दस-दस, बीस-बिस हाथ गहरे गड्ढ़े कर दिए हैं। अब किस गड्ढ़े में जनाउर टुके है और किसमें ढों-बछेरू गिर गया है, हम कैसे जाने। ऐसी सूरज में हम यह दावा कैसे करें कि दिन डूबें उतने ही ढ़ोर नापस ला पाएँगे, जितने भिनसारें ले गए थे। अगर हम बजराई के इस तरफ़ ढोर चराते हैं तो वे कभी इसके खेत में घुस जाते हैं कभी उसके"**2**

कल-कारखानों की समस्या

देश में प्रगति हुल कल-कारखानों से उन्नति तो अवश्य है, लेकिन उनसे बहुत अधिक समस्याएँ भी पैदा हुई हैं। कल-कारखानों से निकलने वाले घुएँ से वायु-प्रदूषण, कारखानों में होने वाले शोर से ध्वानि प्रदूषण तथा बहने वाले पानी से जल प्रदूषण व पृथ्वी प्रदूषण की समस्या तो पैदा हुई ही है, साथ-ही-साथ शोषण, पूनर्वास व बेरोज़गारी की समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। कारखानों के मालिक मज़दूर नर-नारियों का आर्थिक शोषण करते हैं। उन्हें ललचाना देकर अपने जाल में अटकना रखते हैं। किसी समय अर्थाभाव या अन्य कारणों से कारखानों को मालिक बंद कर देते हैं। ऐसी स्थिति में मज़दूरों को काम न मिलने के कारण वे बेरोज़गार हो जाते हैं। यदि कहीं दूसरी स्थल काम करते हैं तो उनका वहाँ पूरा शोषण किया जाता है।

वीरेंद्र जैन जी जैसे सतर्क उपन्यास साहित्यकार ने कल- कारखानों से पैदा होने वाली समस्याओं का चित्रण अवश्य किया है, चाहे वह मात्रा में सीमित ही क्यों न हो। 'डूब' उपन्यास में बीड़ी बनाने के फैक्टरी (कारबार) के लिए कच्चा माल तेंदू पत्ता लड़ैई और आस-पास के सोवारों से मंगाया जाता है। गंवारों के जनता के पास ठाकुर और बनियों के खेतों में काम करने के बिना कोई अन्य रोज़गार नहीं है। इसलिए जब से तेंदूपत्ता समाप्त करना का काम मिला है, तब से छोटे कृषक, तरकारी बोना और बेचने वाला, मछुआ (धीवर) सलैया यहाँ तक कि कुछ ग्वाला भी इस काम में जुट गए।-"डॉग-डॉग का चक्कर लगाकर तेंदू के पेड़ों से पत्ते तोड़े जाने लगे। घर आकर, खा-पकाकर पत्तों, की छँटाई होती। पाँच दर्जन, बारह गढ़ा, तीन बीसी, जिसका जैसा, जितना गणित – ज्ञान, वह उसी तरह गिनती करता - मगर प्रयोजन एक परिणाम एक कि हर गड्डी में होने चाहिए साठ साफ़-सुथरे पत्ते।"**3**

वन्य जीवन से जुड़ी समस्याएँ

बाँध परियोजनाओं को भरपूर करने के लिए, कहीं शिंगरफ बनाई गई, कहीं गिरि को काटा गया तो कहीं जंगलों को उजाड़ा गया। जंगलों से जड़ी-बूटियों प्राप्त कर जाविकोपार्जन करनेवाले आदिवासी जनता के पास जीविका का विपत्ति पैदा हो गया, तथा जंगलों को उजाड़े जाने के कारण जंगली जानवर नष्ट हो गए, व इधर-उधर भाग गए। आवासी करने वाला विकास, उद्योग संबंधी विकास, जनसंख्या वृद्धि के कारण साफ़ होते कानन बहुत समस्याएँ को पैदा दे रहे हैं। राजघाट बाँध परियोजना के बनने से लडैई जैसे गंवारों की हरियाली खत्म हो गई। दिन – प्रतिदिन घटते कानन और कम होती हरियाली वन में बसे खेरों और समीप के गंवारों के लिए चिंता का कारण बन रहे-"लडैई के आस-पास की चारागाह आसमान में बिला गई क्या?"**4** पोड़ - पौधो और वनों को साफ़ करने के उपरान्त हरियाली खत्म हो जाती है, जिससे चारागाह की समस्या उत्पन्न होती है। जिसके कारण पर्यावरण असंतुलन बढ़ता चला गया।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहे तो पारिस्थितिक चिंता मानव सहित समस्त जीव-जन्तुओं के अस्तित्व एवं भविष्य से संबंधित विचार है। आज पारिस्थितिक संकट वैज्ञानिक – प्रौद्योगिक विकास, शहरी करण, उपभोग संस्कृति, औद्योगिकरण, वैश्वीकरण, जनसंख्या, आदि का संयुक्त परिणाम है। मनुष्य के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौतिक जीवन में आये परिवर्तन भी पारिस्थितिक के प्रति उनकी मानसिकता में बदलाव डाले हैं। इस प्रकार में आज मानव को इस वास्तवीकता से अवगत होना बेहद ज़रूरी है। पारिस्थितिक संरक्षण और विकास का सामंजस्या ही मनुष्य समाज के लिए हितकर होगा। हमारे दैनिक जीवन और उन्नति की योजनाओं में पारिस्थितिक के आस्तित्व और संतुलन को शामिल करना है और परियावरण हितौषी तकनीकों को अपनाना चाहिए। इस तरह परिस्थितिक चिंतन आज औद्योगिक, वैज्ञानिक आदि विकास की नीतियों के पुनः विचार के लिए प्रेरित करता है। पारिस्थितिक चिंता की पृष्टभूमि से उद्भूत

पारिस्थितिक एवं पारिस्थितिक एवं पारिस्थितिकवाद दर्शन ने प्रकृति के साथ सृजनात्मक संबंध और पारस्परिक संबंध को बढ़ावा देकर मनुष्य राशी को जागृत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ . किरण कुमारी गुप्त, "हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण" पृ . सं. 8
2. वीरेंद्र जैन, "डूब" पृ .सं. 184
3. वीरेंद्र जैन "डूब" पृ. सं 132-133
4. वीरेंद्र जैन "डूब" पृ. सं 172

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 70-73
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Role of Women in the Economic System of Ancient India

Damini Kumari,
Research Scholar, History,
Prof. Jaya Kumari Aryan,
Supervisor, History,
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith University, Varanasi 221002

Abstract
The economic system of ancient India was deeply interwoven with the participation of women. Far from being passive figures confined to domestic roles, women were active contributors in agriculture, trade, artisanal crafts, religious donations, and property management. Evidence from Vedic texts, epigraphy, and archaeological records shows that women played significant roles in both household and public economies. This paper explores their roles in different periods—Vedic, Mauryan, Gupta, and Early Medieval—while also considering comparative global perspectives. By integrating insights from historians, epigraphic evidence, and United Nations research on gender and economy, the paper reconstructs the economic significance of women in ancient India. A theoretical framework based on gender economics and the Sustainable Development Goals (SDGs) highlights the contemporary relevance of these historical contributions. The study concludes that women were central to the economic framework, though their roles were gradually restricted by patriarchal structures. Recognizing these contributions is essential for a holistic understanding of both ancient and modern economies.

Introduction

The study of ancient Indian economy has often been narrated through the lens of kingship, dynasties, and political administrations. Yet, behind the state and its revenues stood the everyday labor and enterprise of men and women alike. Women, especially in early India, were not marginal but vital actors in production, distribution, and trade. Textual sources such as the Rigveda, Atharvaveda, Arthashastra, and Dharmashastras, alongside inscriptions and archaeological findings, indicate a vibrant female presence in economic life. From agriculture and weaving to market transactions and religious donations, women's roles were varied and significant.

Modern gender economics also emphasizes the importance of women's invisible and undervalued contributions to economies. The United Nations, in its 'World's Women 2020' report, stresses that women's participation is historically underestimated. This paper thus combines ancient sources with modern frameworks to reconstruct the role of women in India's economic past, highlighting continuity and decline across centuries.

Literature Review

Scholars have long debated the position of women in ancient Indian society. A.S. Altekar's classic work, 'The Position of Women in Hindu Civilization,' argues that women enjoyed considerable freedom and economic rights during the Vedic age, but their status declined in later centuries. R.S. Sharma, in 'Indian Feudalism,' links the decline of women's economic agency to the emergence of feudal agrarian relations. Romila Thapar, in 'Early India,' highlights how inscriptions demonstrate women's roles as donors and patrons in religious and commercial networks.

Upinder Singh emphasizes the multiplicity of roles women undertook in 'A History of Ancient and Early Medieval India.' Uma Chakravarti's feminist reinterpretation in 'Gendering Caste' demonstrates how caste and patriarchy intersected to restrict women's agency. Comparative economic historians such as Irfan Habib and D.D. Kosambi also argue that ignoring women's contribution skews the understanding of India's economic history.

Global organizations have added a contemporary dimension. The UN's 'World's Women 2020: Trends and Statistics' underlines that across civilizations, women were primary actors in sustaining families and communities, often unrecognized in economic narratives. This perspective encourages re-reading of ancient Indian history with an inclusive economic lens.

Women in the Vedic Economy

The Vedic age (1500–600 BCE) was characterized by pastoralism transitioning into settled agriculture. Women contributed actively to these processes. The Rigveda refers to women engaged in milking, dairy production, spinning, and weaving. They not only maintained households but produced essential goods for exchange. Scholars like Altekar highlight how women such as Gargi and Maitreyi had access to knowledge, indicating that women were integrated into intellectual and economic domains.

Women were not fully excluded from property rights. The concept of stridhan allowed women to possess wealth in the form of jewelry, land grants, and gifts. These assets provided them with a degree of independence, used for transactions, donations, and family security.

Women in the Mauryan and Gupta Periods

The Mauryan Empire (4th–2nd century BCE) institutionalized economic administration. Kautilya's Arthashastra explicitly mentions women employed as supervisors in state-controlled weaving industries, guards in palaces, and even spies. This suggests a formal recognition of women in state economy. Women also worked in guilds producing textiles, pottery, and luxury goods.

During the Gupta age (4th–6th century CE), inscriptions from Sanchi, Bharhut, and Mathura record women as donors funding religious monuments. This shows women's access to wealth and public recognition as patrons. Guild inscriptions also mention female artisans and traders, highlighting their involvement in organized economic activity.

Case Studies from Epigraphy and Archaeology

Archaeological and epigraphic records confirm women's economic roles. Inscriptions from Bharhut and Sanchi reveal that women donors contributed to Buddhist stupas, sometimes independently of male relatives. At Mathura, guild records mention female members funding sculptures and ritual activities. Terracotta figurines found in Harappan and early historic sites depict women engaged in spinning and agricultural tasks, underlining their economic roles.

Copper plate inscriptions from the Pallava and Chola periods record land grants to women, suggesting legal recognition of women's property rights. These case studies establish women not as passive figures but as active participants in the institutional economy.

Women in Trade and Guilds

Guilds (shrenis) were powerful economic institutions in ancient India. Women participated as artisans, merchants, and donors. In coastal regions, especially in Tamilakam, women are recorded as participants in long-distance maritime trade. Textile industries frequently employed women, as weaving and dyeing were often household industries integrated into guild networks.

Guild records also mention women contributing to public welfare projects, such as construction of tanks and temples. This indicates that women's wealth extended beyond private households into community development.

Property Rights and Economic Agency

Legal traditions in texts like Manusmriti restricted women's inheritance rights over time. However, epigraphy contradicts a complete absence of rights. Women held and donated land, jewelry, and monetary wealth. The concept of stridhan remained a crucial institution safeguarding women's financial autonomy.

Women's property rights were instrumental in supporting religious and community projects, proving that their agency extended into public economic spheres.

Religious Institutions as Economic Spaces

Temples, monasteries, and stupas were not only spiritual centers but also hubs of economic activity. Women were key patrons in these institutions. At Sanchi and Bharhut, inscriptions record donations by women—sometimes single, sometimes jointly with male relatives. Jain and Buddhist texts also refer to female lay donors.

These contributions indicate that women had disposable wealth and recognition as patrons. Religious spaces thus served as arenas where women could express economic agency.

Comparative Global Analysis

A comparative perspective reveals similarities and differences with other ancient civilizations. In Egypt, women enjoyed substantial legal rights, including property ownership and participation in trade. Ancient Greek women, however, faced greater restrictions, largely confined to the domestic sphere, though in Sparta they managed estates. In China, women in Han dynasty participated in silk production and agriculture but were often restricted legally.

Compared to these, ancient Indian women enjoyed significant roles in craft industries, guilds, and donations. However, like in Greece and China, patriarchy gradually eroded their rights. This comparative framework situates Indian women within a global pattern of initial participation followed by restriction.

Theoretical Framework

Modern gender economics highlights the concept of 'invisible labor,' which refers to unpaid or undervalued work by women. This framework applies strongly to ancient India, where women's contributions to agriculture and household industries were vital yet underrepresented in formal accounts. The UN's Sustainable Development Goal 5 (Gender Equality) encourages acknowledging and valuing unpaid labor as part of national economies.

Applying this framework retrospectively, we can reinterpret women's contributions in ancient India not as marginal but as central to sustaining agrarian and urban economies. Women's roles in weaving, dairy, and religious donations were part of a larger economic system that extended beyond households into markets and institutions.

Decline and Restriction

By the early medieval period, women's economic participation faced increasing restrictions. The rise of feudal agrarian relations tied property and inheritance to patriarchal lineages. Texts such as Manusmriti curtailed inheritance rights, while caste regulations restricted

women's labor mobility. Yet, despite ideological restrictions, local economies continued to depend heavily on women's agricultural and artisanal work.

Thus, the decline was not in actual participation but in the recognition and institutional space women received.

Conclusion

The role of women in ancient India's economy was multifaceted, extending from agriculture and craft production to trade, guilds, property management, and religious donations. Epigraphic and archaeological evidence demonstrates their visibility in economic institutions, while textual traditions reveal debates over their rights. Comparative analysis places Indian women within global patterns of initial participation followed by restriction under patriarchy.

Theoretical insights from gender economics and the UN's SDGs underscore that women's contributions, though historically undervalued, were vital to economic sustainability. Recognizing these roles is crucial not only for reconstructing ancient history but also for shaping inclusive policies in the present. Women of ancient India were economic actors whose legacies continue to inform debates on gender equality and economic justice.

References

- Altekar, A.S. The Position of Women in Hindu Civilization. Delhi: Motilal Banarsidass, 1962.
- Sharma, R.S. Indian Feudalism. Macmillan, 1965.
- Kautilya. Arthashastra. Translations by R. Shamasastry.
- Thapar, Romila. Early India: From the Origins to AD 1300. University of California Press, 2002.
- Singh, Upinder. A History of Ancient and Early Medieval India. Pearson, 2008.
- Chakravarti, Uma. Gendering Caste: Through a Feminist Lens. Stree, 1993.
- Kosambi, D.D. An Introduction to the Study of Indian History. Popular Prakashan, 1956.
- Habib, Irfan. The Agrarian System of Mughal India. Oxford University Press, 1999.
- United Nations. The World's Women 2020: Trends and Statistics. New York: UN DESA, 2020.

Email Id. damini165@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 74-77
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में प्रतिरोध के स्वर

डॉ.चन्दीर पासवान
सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय ,सरिसब–पाही,मधुबनी।

बड़े पैमाने पर समाज में जब परिवर्त्तन की मांग उठती है, तब साहित्य की स्वतंत्रता पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। साहित्य सृजन में नए–नए साहित्यकार के आगमन और उनके साहित्य के नव स्वरों से उसका एकांत टूटता है, उसके प्रतिमानों के अनुसार कमियाँ खलने पर बहस छिड़ती है। उसके कारण और प्रयोजनों को फिर से रचने और परिभाषित करने की आश्यकता महसूस की जाने लगती है, जबकि इन सब बदलावों को अलग मानने वाले साहित्यकार की साहित्य की समानता के समर्थन करने वाले अपनी दुख –दर्द को भी कलात्मक रूप में मुखरित करते रहते हैं, परंतु समय अपने रफ्तार से चलता है! वह समाज के वास्तविक चीख–पुकार के सामने भी अपनी कलात्मक टीस को अधिक से अधिक महत्व देता है। वह साहित्यिकता की दिव्यता और लोकोत्तर की जगह नश्वर तथा आत्मिक भाव का परवाह करता दिखाई देता है। वे समय को भी अपने ढंग से संचालित करने वाली शक्ति ऐसा दृश्यान्तर रचती है। बौद्धों के समय में जब वर्ण पर आधारित वैदिक समाज को चुनौती दी जा रही थी उस समय अश्वघोष कवि ने अपने साहित्य का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहा कि हम आनन्द प्राप्ति के लिए नहीं लिख रहे हैं। उनका लिखना शांति प्रदान करने के लिए है।वह शांति ऐसा शांति जो धर्म अर्थ काम के अर्थ से पूर्ण है।इसी मोक्ष को बौद्ध धर्म में जिस नजरिया से देखा जाता है उसे समझने के लिए हम 'अश्वघोष' निम्नलिखित श्लोकों को देखें।

"इत्येषा व्यपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः
श्रोतृणां ग्रहणार्थ मन्यमनसां काव्योपचारात्कृता।2
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत्काव्यधर्माकृतम्
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृदयं करना स्वादति।। (1)

अश्वघोष का मानना है कि मोक्ष से युक्त रचना शांति प्रदान करने के लिए है।

जो रचना मोक्ष से युक्त है, वह शांति प्रदान करने के लिए है, 'श्रृंगार और रति' जैसे आनन्द देने के लिए नहीं है। मोक्ष के अलावा इसमें जो कुछ सामग्री लाया गया है। काव्य–धर्म के अनुसार इसे सरस बनाने के लिए जैसे कड़वे औषधियों को पीने योग्य बनाने के लिए उसमें शहद मिलाया जाता है। आलोचकों का मानना है कि अश्वघोष का समाज अशांत क्यों है? उसे आनन्द की नहीं बल्कि शांति की जरूरत है । किस बीमारी के लिए कड़वे दवा देने की बात की जा रही है? इस अशांति और रूग्णता का कारण है वर्ण व्यवस्था। मुक्ति या मोक्ष इसी रोग से होनी है।रतिभाव पूर्ण काव्य रोग की विशालता पर आवरण डाल सकता है। लेकिन उसका उपचार नहीं कर सकता।अश्वघोष की स्पष्ट प्राथमिकता है कि वे सामाजिक अस्वस्थता और अशांति का इलाज चाहते हैं। रसिक जनो को श्रृंगार की सागर में निमग्न करना नहीं। वैसे

कहा जाय तो रोग बहुत विकट है लेकिन उसका निदान बहुत सरल है। आसानी से उसे पहचाना जा सकता है।निदान के बाद ही सही उपचार सम्भव है। अश्वघोष रोग का पहचान कराते हुए 'व्रजसूचि' में कहते हैं–"यथैक वृक्षोत्पन्नानां फलानां नास्ति वर्णभेदस्त पुरूषोत्पन्नानां पुरुषाणां नास्ति वर्णभेद" (2)

जैसे एक वृक्ष से उत्पन्न फलों में कोई वर्णभेद नहीं होता, वैसे एक 'पुरुषाणां नास्ति वर्णभेद' नहीं होता वैसे एक पुरुष से उत्पन्न लोगों में वर्ण भेद नहीं है। यह चिंता अश्वघोष को नहीं थी कि उनकी रचनाओं में प्रचलित मानकों के अनुसार अधिक से अधिक गुणों का समावेश हो, बल्कि वे चाहते थे कि उनका समाज उस रोग को पहचाने, जिससे वह स्वयं पीड़ित है और उस रोग को दूर कर शांति का अनुभव कर सकें।

अश्वघोष की इस अभिलाषा की पूर्ति नहीं हुई क्योंकि अशांति के वर्णवादी पहरेदारों ने किलेबंदी करके रोग को भविष्य के लिए सुरक्षित कर दिया। कई शताब्दी बीत गई । रोग बना ही रहा कबीर आए और रोग की फिर से पहचान कराई और अश्वघोष भी तिखे स्वरों से कहाः–

"जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया,
आनवाट हवै काहे न आया ।
तुम्हारे कैसे लहु हमारे कैसे दूध,
तुम कैसे बाम्हण पांड़े हम कैसे सूद ।।"(3)

ऊच– नीच की भावना जिन लोगों के मन में है तो ऐसा कहा जा सकता है कि उसको शारीरिक रोग नहीं, मानसिक रोग है। कबीर ने उस औषधि को खोजना प्रारंभ किया जिससे इस प्रकार के रोगों का उपचार किया जा सके।, स्वस्थ सामाजिक जीवन को फिर से प्राप्त कर सके। इसके लिए उन्हें अन्त में कहना पड़ाः–

"परबत परबत मैं फिरा नयन गमाया रोय।
सो बूटी पाऊं नहीं जाते जीवन होय।।"(4)

कविता की प्राथमिकता कबीर के जीवन में उतनी नहीं है जितना कि जीवन की इस जीवन को स्वस्थ सुन्दर बनाने के लिए और सजाने के लिए है। वे कविता का सदुपयोग इस जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिए करना चाहते हैं कबीर मनभावन गीतकार के रुप में नही दिखना चाहते हैं गीत उनकी दृ ष्टि में विचारों के वाहक है साध्य नहीं। इस संदर्भ में वे कहते हैंः–

"तुम जिनी जानौं गीत है, यह निज ब्रह् विचार।
केवल कहि समुझाइया आतम साधन सार ।।"(5)

कवियों के द्वारा कविता लिखी जाती रही फिर भी रोग बना रहा। इससे मुक्ति दिलाने के लिए अपनी साहित्यिक पैनी दृष्टि और प्रतिभा को लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि आए। बीसवीं शताब्दी के अंत के दो दशकों में पूरा दलित साहित्य आन्दोलन आया वर्णवादी जातिरोगी समाज से टपकती हिंसा और घृणा की बूंद को समेटने के लिए संवेदन शून्य समाज को अस्वस्थता का ज्ञान कराने की कोशिश फिर से नए सिरे से शुरु हुईः–

"घृणा तुम्हें मार सकती है,
तोड़ सकती है।
पर अपने दायरे में जिन्दा नहीं रख सकती,
ताजा हवा देकर।"(6)

फिर से साहित्य रोजगार का माध्यम बना रोगों के उपचार का माध्यम बना। साहित्य का महत्व फिर से रेखांकित हुआ और इस रेखांकन से हमेशा की तरह स्वायतता देकर दुखी हुए। साहित्य को जीवन का माध्यम मानना हमेशा की तरह स्वायतता देकर फिर से दुखी हुए।

यह चिंता अश्वघोष को नहीं थी। उनकी रचनाओं में प्रचलित मापदण्ड के अनुसार अधिक से अधिक गुणों का समावेश हो, बल्कि वे चाहते थे कि उनका समाज उस रोग को पहचाने, जिससे वह स्वयं पीड़ित है और उस रोग को दूर कर शांति का अनुभव कर सकें। साहित्य को जीवन का माध्यम बनाना उन्हें कभी स्वीकार नहीं रहा, जबकि जो भी लोग इस माध्यम की शक्ति पर विश्वास किया और करते चले गए, उन्हें

अतीत में इसकी सफलता का ज्ञान भी था और वे चाहकर भी अपने विश्वास को प्रमाणित नहीं मान सकते थे :–

"शब्दों का खोखलापन,
बार बार उजागर हुआ।
फिर भी कहीं एक विश्वास
बचा रहा।
कि एक न एक दिन
शब्द अपने आदिम रुप में
उपस्थित होकर साक्ष्य देंगे
जन समूह के बीच में।"(7)

साहित्य की प्रतिरोधी भूमिका को ओमप्रकाश वाल्मीकि न पहचाना और बदलाव की कामना के साथ समता के संकल्प को शब्द के साथ दुनिया में सामिल हुए।

आलोचना, कविता कहानी और शोध इन दिनों उपन्यास लेखन में ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुत विधा के रुप में सृजनात्मकता को समृद्ध करते चलते हैं। वाल्मीकि जी मानव विरोधी समाज व्यवस्था की मजबूती से भली–भाँति परिचित है। इसीलिए वे आते ही क्रांतिकारी मुद्रा से बचते हुए आनन–फानन में किसी निर्णय पर नही पहुंचते हैं।

उनकी कहानियाँ आने वाले का अहसास भर कराती है, परिणाम तक पहुंचने की जल्दबाजी नहीं दिखाती, वाल्मीकि जी समाज बदलाव की कोशिश भर पैदा करते हैं, कहानी के दायरा में बदल कर नहीं दिखाते। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि अन्याय और उत्पीड़न से लड़ने में उनके दलित पात्र अकेले नहीं होते। उन्हें कई बार गैर दलितों का समर्थन और सहीयोग भी मिलता है। छतरी खनाबदोश और ब्राह्मास्त्र इत्यादि कहानियों में सवर्णों के कंधे से कंधा मिला कर चलते हैं। यह अलग बात है कि कुछ दूर चलने के बाद वे स्वयं साथ छोड़ देते हैं। हम अपने आस –पास वाल्मीकि जी के द्वारा रचे पात्रों को देख सकते हैं। सवर्ण पात्रों के संस्कार उनकी भौतिक परिस्थियां उनके निजी और सामूहिक हित उन्हें एक सीमा के बाद दलितों के संघर्ष में सहभागिता से रोक देते हैं। इस स्थिति को उभारकर वाल्मीकि जी सवर्णों को अपने जातिगत दृष्टिकोण से पूर्णतः मुक्त होने की प्रेरणा देना चाहते हैं, तो दूसरी ओर दलित समाज से यह कहना चाहते हैं कि संघर्ष के इस निर्णायक दौड़ में वे अकेले होंगें
उन्हें इसके लिए तैयार रहना चाहिए।

वाल्मीकि जी अपने निरंतर जाग्रत और आलोचनात्मक विवेक के चलते अन्य रचनाकारों से अलग दिखाई देते हैं।'शवयात्रा' जैसी कहानी लिखकर जातिभेद की समस्या को बहस का विषय बनाने का साहस करते हैं तो दूसरी ओर व्यंग्य करते हैं उस दलित मध्य वर्ग पर जो अपनी जाति छुपाकर अपना झुठा स्वाभिमान दिखाते हैं 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ!' कहानी के मोहन लाल शर्मा इसी दलित मध्यम वर्ग का प्रतिनिधि है।उदाहरण के रुप में हम देखते हैं कि 'दिनेशपाल जावट' उर्फ दिग्दर्शन कहानी का नायक आजीविका प्राप्त करने और बौद्धिक रचनात्मक क्षमता का सही प्रयोग करने के लिए अपनी जाति को छुपाता है। इस प्रयास में वह एक सफल पत्रकार और उपसंपादक का पद भी प्राप्त कर लेता है। लेकिन उसका आत्म स्वाभिमान उसे बहुत कचोटता है। एक दिन उसका विवेक उसकी पहचान को सार्वजनिक कर देता है।ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का मानना है कि जिस समाज में जातिवाद है तो उसकी घृणा इतना चरम पर है कि हम और आप चाहकर भी उससे बच नहीं सकते। इसलिए जरुरी है कि हीनताबोध से हम स्वयं को मुक्त करें और सामाजिक पहचान पर बिना किसी प्रकार का आवरण लगाए बगैर मुक्त भाव से रहा जाए ।जब कोई भी व्यक्ति अपने अन्दर इच्छा को दबाकर जीता है। दूसरा पक्ष को जाति को लेकर शर्मिंदा होने की बारी है जो उच्चता के शिखर पर बैठे हुए हैं। जो प्रत्येक्ष या परोक्ष रुप से सहयोग दें रहे हैं, वे अपनी अमानवियता के लिए शर्मिंदा हो यही मनुष्य का सहज स्वाभाविक गुण है।

वाल्मीकि जी की कहानियों पर आरोप लगाया जाता है कि वे शाश्वत सनातन की चिंता किए बिना घटनाओं को कहानियों का विषय बनाते हैं। जातिवादी क्रूरता के नंगे सच को रचना में बदलने की सर्जनात्मक चेष्टा करते हैं। 'गौकशी' कहानी में भी कुछ ऐसी ही वर्णन है। कहानी का कथ्य हरियाणा के

एक शहर झज्जर में हुई घटना पर आधारित है। इसमें दिखाया गया है कि जातिवादीतंत्र किस तरह साधनहीन दलितों की हत्या करता चलता है। इस तंत्र का उपजा प्रशासनीक ढांचा किस प्रकार उसे सहीयोग करता है। इसका बिल्कुल सही वर्णन कहानी में है। कहानी इस प्रश्न के साथ पाठकों को संग कर लेती है कि यह नृशंसता अभी भी कबतक चलती रहेगी? यह प्रश्न व्यक्ति, समाज, लेखक सभी की जिज्ञाशा को कुरेदती है।

संदर्भ–ग्रंथ–सूचीः

1.सौन्दरनन्द ,1.8.63
2.व्रजसूची–चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन वाराणसी , संस्कारण –1985,पृष्ठ–32
3.वही,पृष्ठ–34
4.वही, पृष्ठ –76
5.वही, पृष्ठ–81
6.बस्स बहुत हो चुका –ओमप्रकाश वाल्मीकि वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, प.सं–1997,पृष्ठ–31
7.वही,पृष्ठ–28

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 78-82
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तुलसीदास कृत्त 'गीतावली' और चन्दा झा कृत्त मिथिला भाषा रामायण में सीता वनवास प्रसंग : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. नूतन कुमारी
सहायक शिक्षिका,
हिंदुस्तान मित्र मंडल मध्य विद्यालय, गोलमुरी, जमशेदपुर

सारांश: रामायण की कथा भारतीय साहित्य और संस्कृति का अभिन्न अंग रही है, जिसमें विभिन्न कवियों ने क्षेत्रीय भाषाओं और भावनाओं के अनुरूप पुनर्व्याख्या की है। इनमें सीता वनवास प्रसंग उत्तरकांड का एक विवादास्पद एवं भावुकतम खंड है, जो राजधर्म, पतिव्रत धर्म तथा लैंगिक न्याय की जटिलताओं को उजागर करता है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित इस घटना को तुलसीदास की 'गीतावली' (लगभग १६वीं शताब्दी, ब्रज-अवधी गीतों का संग्रह) और चन्दा झा की **'मिथिला भाषा रामायण'** (१९वीं शताब्दी, मैथिली में रचित) में कैसे चित्रित किया गया है, इसका तुलनात्मक अध्ययन इस शोध का मूल है। यह अध्ययन दर्शाता है कि कैसे भक्ति-प्रधान तुलसीदास की व्याख्या में सीता आदर्श पतिव्रता के रूप में उभरती है, जबकि मैथिली परंपरा में चन्दा झा सीता को अधिक साहसी एवं न्यायपूर्ण चरित्र प्रदान करते हैं, जो मिथिला की लोक-संस्कृति से प्रेरित है। 'गीतावली' में उत्तरकांड के पद 21 से 30 तक सीता वनवास का वर्णन गीतात्मक शैली में है, जो भक्ति रस से ओतप्रोत है। तुलसीदास यहां राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्थापित करते हैं, जहाँ सीता का वनवास लोकापवाद के कारण राम के राजधर्म की अनिवार्यता का प्रतीक बन जाता है। सीता का चरित्र सहनशीलता एवं त्याग का आदर्श है; वह राम के निर्णय को बिना प्रश्न किए स्वीकार कर लेती है, जो पतिव्रत धर्म की पराकाष्ठा दर्शाता है। उदाहरणस्वरूप, पदों में सीता का विलाप राम के प्रति अटूट भक्ति को व्यक्त करता है: "राम बिनु जीव नहि लयि" – यह दर्शाता है कि सीता का वनवास व्यक्तिगत पीड़ा से ऊपर उठकर राम की महिमा को बढ़ाता है। तुलसी की भाषा सरल एवं भावपूर्ण है, जो अवधी-ब्रज मिश्रण में लोकप्रिय भक्ति को प्रतिबिंबित करती है। यहां प्रसंग का फोकस राम-सीता के वैवाहिक बंधन की पवित्रता पर है, न कि सामाजिक अन्याय पर। तुलसीदास 'रामचरितमानस' में इस प्रसंग को विलोपित कर चुके हैं, किंतु 'गीतावली' में इसे गीतों के माध्यम से शामिल कर भक्तों को आध्यात्मिक संदेश देते हैं। विपरीत रूप से, चन्दा झा की 'मिथिला भाषा रामायण' में उत्तरकांड का यह प्रसंग मैथिली की मधुर एवं बोलचाल वाली भाषा में रचा गया है, जो मिथिला की स्त्री-केंद्रित लोककथाओं से प्रभावित है। चन्दा झा (भारतेन्दु युग के समकालीन) सीता को तेजस्वी एवं मुखर बनाते हैं; वह राम से स्पष्टतः प्रश्न करती है – "एहि प्रकारे काहे करि वनवास?" – जो पितृसत्तात्मक निर्णय पर सवाल उठाता है। सीता यहां मात्र सहनशील नहीं, अपितु अपने अधिकारों के लिए

संघर्षरत है, जो मिथिला की मैथिली परंपरा में सीता को 'जानकी' के रूप में भूमि-देवी एवं स्वाभिमानी स्त्री के चित्रण से मेल खाता है। प्रसंग में वाल्मीकि के अनुरूप लोकापवाद का वर्णन है, किंतु चन्दा झा इसे सामाजिक पूर्वाग्रह के रूप में उजागर करते हैं, जहाँ सीता का वनवास राम की विवशता से अधिक स्त्री-पीड़ा का प्रतीक बन जाता है। भाषा में मैथिली के छंद (जैसे रोला एवं गौड़) का प्रयोग प्रसंग को गीतात्मक बनाता है, किंतु भावार्थ अधिक यथार्थवादी एवं लोक-न्यायोचित है। यह व्याख्या तुलसी की भक्ति-केंद्रित दृष्टि से भिन्न है, जहां सीता का चरित्र अधिक स्वतंत्र एवं आधुनिक-सा प्रतीत होता है।

बीज शब्द: राजधर्म, पतिव्रत धर्म, लैंगिक न्याय, लोकापवाद, पितृसत्तात्मक।

प्रस्तावना: तुलनात्मक दृष्टि से, दोनों रचनाओं में समानताएं भक्ति एवं राम-कथा के नैतिक आधार में हैं – दोनों ही राम को धर्म का प्रतीक बनाते हैं तथा वनवास को कर्मफल का बंधन दर्शाते हैं। किंतु भेद प्रमुख हैं: तुलसी में सीता का चित्रण आदर्शवादी एवं निष्क्रिय है, जो भक्ति मार्ग को मजबूत करता है, जबकि चन्दा झा में वह सक्रिय एवं विद्रोही है, जो लैंगिक समानता की ओर इशारा करता है। यह अंतर क्षेत्रीय सांस्कृतिक प्रभावों को प्रतिबिंबित करता है – अवध की भक्ति परंपरा बनाम मिथिला की स्त्री-वादी लोक-व्याख्या। यह अध्ययन न केवल रामायण की विविधताओं को उजागर करेगा, अपितु समकालीन संदर्भ में सीता के चरित्र को पुनर्परिभाषित करने में सहायक होगा। भविष्य में यह लिंग-अध्ययन एवं क्षेत्रीय साहित्य की तुलना के लिए आधार प्रदान करेगा।

विश्लेषण: सीता-राम अभिन्न हैं। मनुष्य के रूप में अति उत्तम संस्कारों से युक्त होने के कारण ही वे आज भी विश्व महानायकत्व की पदवी पर विराजमान हैं। राम को पुरुषोत्तम माना जाता है। वे अपनी महानता, शक्ति, सामर्थ्य, बुद्धि, युक्ति, चेतना और आत्मा के स्तर से श्रेष्ठतम थें तभी तो विश्वस्तर पर विभिन्न देशों एवं भाषाओं के कवियों, लेखकों, चिन्तकों, महापुरुषों, दार्शनिकों, संत समाजों, यहाँ तक कि गृहस्थों के द्वारा भी परम आदरणीय आदर्श स्वरूप माने जाते हैं, पूजे जाते हैं। विश्व इतिहास में इतना सुन्दर प्रेम, कर्तव्य, पराक्रम, त्याग का वर्णन और क्या कहीं मिल सका ? सामान्य मनुष्य की भांति राम और सीता का जीवन भोग का जीवन नहीं था। उनका जीवन था त्याग, प्रेम, तपस्या का, उनका जीवन था मनुष्य को उनके कर्तव्य बोध के प्रति जागरूक करने का, उनका जीवन था मनुष्य को पशु-प्रवृत्ति से उठाकर उसके दिव्यत्व से साक्षात्कार कराने का। जगत वंदनीय सीता-राम के कठोर संघर्षपूर्ण जीवन घटना को लेखकों एवं कवियों ने अपनी-अपनी श्रद्धा-बुद्धि-कौशल, संस्कार-विचार, ज्ञान-क्षमता आदि दृष्टिकोण से रचा है और जिसका परिचय अलग-अलग रामकथा-काव्य से हमें प्राप्त होता है। रामकथा-काव्य का एक अत्यन्त विवादित अंश है- **'सीता वनवास'**, जिसे रचनाकारों ने अपने-अपने मनोभावों से रचा है। तुलसीदास ने गीतावली में इसका मनोरम तथा युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। सीता की जन्मभूमि मिथिला में भी चंदा झा ने मिथिला भाषा रामायण में जो वर्णन किया है वह अद्वितीय है। यहाँ गीतावली एवं मिथिला भाषा रामायण में **'सीता वनवास'** प्रसंग का उल्लेख किया जा रहा है।

गीतावली में तुलसीदास सीता वनवास प्रसंग पर कुल 12 पदों की रचना किए हैं। 25वें पद में तुलसीदास ने राम भगवान की लीला को दिखाया है जिसमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि राम ने सीता का त्याग इसलिए किया कि उनकी आयु 12,500 वर्ष में कुछ ही शेष रह गयी थी और उन्हें अपनी पिता की आयु का भोग करना था, अतः राम का पिता की आयु भोग करते हुए पुत्रवधू सीता के साथ रहना मर्यादा के विरुद्ध था। राम के मन को जानकी के सिवा कोई नहीं जान सकता था क्योंकि राम और सीता एक-दूसरे के मन को सदैव देखते रहते हैं। तुलसीदास उनके परम पवित्र प्रेम की मर्यादा का गान करते हैं-

जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ।।
राम जोगवत सीय-मनु, प्रिय-मनहि प्रान प्रियाउ ।।

परम पावन प्रेम-परिमित समुझि तुलसी गाउ ।।[1]

अन्त में रामचन्द्र जी बहुत प्रकार से सोच-विचारकर परम सुकुमारी सीता को त्यागने का निश्चय कर लेते हैं लेकिन, श्री राम, सीता के गर्भवती होने एवं उनके अलौकिक पातिव्रत को सोचकर जिसे देख पार्वती और लक्ष्मी भी सिहाती हैं उस सीता को त्यागने में सकुचाते हैं। सीता के गुणों को याद कर राम उनके सोच में डूब जाते हैं –

प्रियतमा, पति देवता, जिमि उमा रमा सिहाहिं।
गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं ।।
मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहूँ नाहिं।
गेहिनी - गुन - गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ।।[2]

सीता त्याग आवश्यक था अतः राम ने गुप्तचरों से चर्चा किया और लोक में फैल रही निंदा की बात सुनकर सीता से पूछे 'प्राणप्रिये तुम अपनी अभीष्ट रुचि बतलाओ।' सीता ने सकुचाते हुए कहा- **'तीय-तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ।।'** मैं वन में जाकर स्त्री तथा बालकों के सहित तपस्वियों का पूजन करना चाहती हूँ। राम इसे होनी तथा सब परिस्थितियों को अपने अनुकूल जानकर लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि सीता को वन में छोड़ आएँ। लक्ष्मण माथे पर हाथ रखकर कुछ क्षण दुखी होते हैं और भगवान श्री राम की आज्ञा पालन को अपना परम धर्म मानते हुए सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आते हैं। वाल्मीकि ऋषि लक्ष्मण जी को व्याकुल और ग्लानि से गलते देख विधाता को वाम समझकर लक्ष्मण से कुछ नहीं कहते और सीता का विभिन्न प्रकार से सत्कार करते हैं।

वन पहुँचते ही सीता अपने उद्देश्य को याद कर स्वयं को पूर्णरूपेण तपस्विनी समझने लगती है। लक्ष्मण को विदा करने के पूर्ण सीता लक्ष्मण से जो स्नेह भरा प्रार्थना करती है, वह सीता के विनम्रता का प्रतीक है-

लषनलाल कृपाल निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ।।[3]

विधाता को वाम जानकर इस कठोर दुख का कारण स्वयं को समझने वाले लक्ष्मण, अग्रज राम के आदेश और सीता के प्रेम के बीच चिन्ता एवं दुख के बोझ से मूक बने शोकाकुल लक्ष्मण, चुपचाप अयोध्या ऐसे लौट रहे हैं जैसे वस्त्र के पुतले हों।

उधर वाल्मीकि विभिन्न प्रकार से पाप और ताप को दूर करने वाली बहुत सी सरस और पुरानी कथाएँ कहकर सीता को सान्त्वना देते हैं, जिससे उनकी भारी ग्लानि दूर हो जाती है। जानकी के उस आश्रम में आने से पूरी प्रकृति अनुकूल हो गई है। आकाश, जल और पृथ्वी सभी निर्मल एवं सब प्रकार से मंगल दायक हो गए हैं, नीरस वृक्षों में भी सरस फूल-फल लगने लगे हैं, पशु-पक्षी आपस का वैर त्यागकर समभाव से विहार करते हैं। सीता के सानिध्य में सभी प्रसन्न हैं लेकिन, सीता के लिए रामचन्द्र के बिना वन भी सुखकर नहीं हो रहा है, उन्हें तो राम विरह का शूल नित्य बेधता रहता है। इसके पश्चात् सीता दो वीर बालकों को जन्म देती है। सम्पूर्ण लोक, वन एवं आश्रम में आनन्द मंगल छा जाता है। उसी रात दैवयोग से शत्रुघ्नजी आश्रम में आते हैं और प्रातःऋषि से विदा मांगकर चले जाते हैं। सीता जी की सेवा में मुनियों की स्त्रियाँ और कन्याएँ लगी रहती हैं और सीता की माता, मौसी, सासु, बहिनों से भी अधिक मन लगाकर सेवा करती हैं लेकिन सब सुख प्राप्त करते हुए भी सीता के हृदय से राम के स्नेह का शूल नहीं निकलता है। मुनि वाल्मीकि बालकों के छठी, नामकरण, अन्नप्राशन सभी कृत्य करते हैं। तुलसीदास वन में लव-कुश के विभिन्न राजसी खेलों का वर्णन करते हैं जिसे देख सीता प्रसन्न होती है किन्तु राम के वियोग से इस सुख में भी सीता दुखी है।

चंदा झा कृत मिथिला भाषा रामायण में सीता स्वयं राम से कहती हैं कि और कितना दिन मर्त्यलोक में रहेंगे, देवगण मेरे से मर्त्यसुख छोड़कर वैकुण्ठ चलने की प्रार्थना कर रहे हैं और शरीर छोड़ने के पहले मेरी इच्छा हो रही है कि मैं कुछ दिन वन में जाकर रहूँ। सीता मुनि पत्नी एवं उनके कन्याओं के साथ जाकर रहना चाहती है, गंगा स्नान करना चाहती है जिसे सुनकर राम सीता से कहते हैं कि मैं जो बातें कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो, लोक-अपवाद के कारण तुम्हें वन में छोड़ दूँगा, वहीं युगल कुमारों का जन्म होगा, उनका चरित वन में रहने के कारण उदार होगा और उसके बाद आप पुनः आकर शपथ लेंगी और भूमि के विवर में समा कर वैकुण्ठ चली जाएँगी तत्पश्चात कुछ दिन मैं पृथ्वी पर रहकर तुम्हारे पास आ जाउँगा। इस प्रकार एकान्त में राम, सीता से भावी योजना बताते हैं।[4]

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए राम हास्य पंडित से नगर में लोकोपवाद के बारे में जानना चाहते हैं, हास्य पंडित राम से कहते हैं कि लोक में यह अपवाद है कि रावण के द्वारा हरकर ले जाने के बाद भी सीता को राम पुनः पटरानी कैसे बना दिए! एक धोबिन घर से रूठ कर चली गई थी तो धोबी ने उसपर क्रोध करते हुए कहा कि जैसा राजा है प्रजा की गति भी तो वैसी ही होगी। यह बात सुनकर राम को सीता त्याग का एक आधार मिल जाता है और लक्ष्मण से कहते हैं कि सीती को रथ में बैठाकर चित्रकूट वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचा दें और लक्ष्मण अगर सीता को नहीं ले जाना चाहेंगे तो उन्हें राम को तलवार से मारना पड़ेगा। राम होनी को जानकर साध्वी सीता के प्रति खेद प्रकट करते हैं।[5]

निरुपाय लक्ष्मण सीता को रथ में बैठाकर चल देते हैं। मार्ग में रोते हुए लक्ष्मण को सीता शीघ्र ही घर लौटने की जिस प्रकार करुणा एवं प्रेम भरा सहानुभूति देती है वह मि.भा.रा. में ही मिलता है –

देवर जनु करु खेद नयन जलधार की।
श्रीरघुवर पद-कमल प्रेम-विस्तार की॥
सत्वर घुरि घर चलब देखि मुनि-कामिनी।
सुन्दर नव-घनश्याम थिकहुँ सौदामिनी॥[6]

उधर राम सीता को त्याग तो देते हैं लेकिन, सीता के लिए विलाप उनका नहीं रुकता।

दूसरी तरफ, सीता वन में विलाप करती हुई अनेक कथा कहती है जिसका विशद वर्णन मिथिला भाषा रामायण में मिलता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि कवि चंदा झा ने सीता के दुखी भावना का अत्यन्त विस्तार से चञ्चरी छन्द, अमृतगति छन्द, विष्णुपद छन्द, हरिपद छन्द, पादाकुल दोहा छन्द, वियोगि मालव छन्द में सुन्दरता पूर्वक वर्णन किए हैं जिसमें सीता एक साधारण मानव सी दिखाई देते हुए भी अत्यन्त आशावादी और असाधारण प्रतीत होती है-

करुणागार उदार प्राणपति, वन देल दोष लगाय रे।
देवर-दोष विधिक हम की कहु, जनि घर धर्म्म न न्याय रे॥
हमरहि हेतु दशानन मारल, कपि गण सङ्ग लगाय रे।
नैहर जौँ मिथिला चलि जायब, कहत बाप की माय रे।
पुरुष-परशमणि-कर हम सोपल, अयली कि नाम हँसाय रे॥

....

कि कहब कहय योगि नहि रहलहुँ,ब भेलहुँ सबहि काँ भार रे।
कतहु रहब जानकि जन कहते, श्रीरघुनन्दन – दार रे।[7]

(उक्त गीत में सीता कहती हैं कि मेरे करुणागार उदार प्राणपति मुझ पर दोष लगाकर मुझे वन दिए हैं। देवर का दोष क्या कहें जिनके घर में न धर्म है, न न्याय। मेरे लिए राम कपियों को संग लेकर दशानन को मारे और मैं भी अग्नि में

प्रविष्ट होकर अपनी पातिव्रत का प्रमाण दे चुकी हूँ, यह सभी देख चुके हैं। अब यदि मैं अपनी नैहर मिथिला चली जाऊँ तो मेरे माँ और बाप क्या कहेंगे, वे सोचेंगे कि पुरुष परशमणि के हाथ सौंपा था और यह नाम हँसाकर आ गई। सीता कहती है कि क्या कहूँ अब मैं कुछ कहने के योग्य नहीं रही, सबके ऊपर भार हो गई हूँ। लेकिन, कहीं भी रहूँ जानकी को लोग रघुनन्दन की दारा ही कहेंगे।)

कवि चंदा झा ने इस गीत के माध्यम से राजा दशरथ के घर की धर्म व्यवस्था और उनकी न्याय व्यवस्था पर सीता के माध्यम से करारा चोट किया है। जिसमें मिथिला का आक्रोश स्पष्ट दिखता है। सीता को आश्रम पहुँचाकर लक्ष्मण का मन अशांत है लेकिन, वे खुद को इसका दोषी नहीं मानते हैं इसलिए लक्ष्मण अपनी निर्दोष होने की गवाही में सीता से स्वयं कहते हैं कि हे माता आपको पुनः कठिन कष्ट सहना पड़ेगा लेकिन, सकल विधाता साक्षी हैं कि मेरा कोई दोष नहीं है। यह कहकर लक्ष्मण भारी मन से घर लौट जाते हैं और शोकसंतप्त हो वाक् हीन हो जाते हैं। उधर सीता विकला होकर वन में अत्यन्त विलाप कर रही है। वाल्मीकि को जब शिष्यों द्वारा पता चलता है तो वाल्मीकि ध्यान लगाकर सब समझ जाते हैं। सीता को आश्रम लाया जाता है, वह मुनि पत्नी के साथ निवास करती है लेकिन, उनके मुख पर हँसी नहीं आती और नयन सदैव सजल रहता है। सभी सीता को बहुत प्यार और आदर करते हैं और विभिन्न प्रकार से सीता को सांत्वना देते हैं। मिथिला भाषा रामायण में लव-कुश जन्म प्रसंग का कवि ने संकेत मात्र किया है, जिसकी कमी सीता वनवास प्रसंग में विशेष रूपेण खलता है।

चंदा झा सीता के जीवन के कष्ट को देख परम आश्चर्य करते हुए कहते हैं – जिसकी धरती समान माता, रघुवर के समान पति, तिरहुति जैसी जन्मभूमि हो और जिसे समस्त लोक सती कहते हैं उस सीता का जन्म रोते-रोते बीतेगा और ऐसी गति होगी इसे कौन जानता था![8] सत्य ही है जब परम सती सीता को समाज के समक्ष इतनी कठोर परीक्षा देनी पड़ी तब सामान्य नारियों की क्या गति होगी यह तो विधाता ही जाने।

निष्कर्ष: चंदा झा ने **'सीता वनवास'** प्रसंग में सीता के दुख का विशद वर्णन किया है वहीं तुलसीदास ने सीता वनवास के बाद राम के मनोव्यथा का अत्यन्त हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। गीतावली में तुलसीदास राम को पिता की आयु भोगने के नाम पर, सीता को वनवास देकर भी बचा लेते हैं और मिथिला भाषा रामायण में सीता स्वयम् वनवास जाने की इच्छा राम के समक्ष व्यक्त करती है। दोनों ही रामायण में राम और सीता के वनवास पूर्व की वार्तालाप से उनके पवित्र अन्तः सलिला प्रेम का दिव्य परिचय तो मिलता ही है साथ ही सीता परित्याग कर राम का जो सच्चा अनुताप दिखाया गया है उससे राम के प्रति सामान्य लोगों के मन में प्रेम की शीतल धारा हिलोर लेने लगती है और सीता वनवास से आक्रोशित लोगों के हृदय का टीस शांत पर जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. तुलसीदास, गीतावली/उत्तरकांड/25; गीताप्रेस गोरखपुर
2. वही, पूर्वोद्धृत; उत्तरकांड/26
3. तुलसीदास, दोहावली/उत्तरकांड/29; गीताप्रेस गोरखपुर
4. चंदा झा, मिथिला भाषा रामायण, पृ.360
5. वही, पूर्वोद्धृत; मि.भा.रा.,पृ. 391
6. वही, पूर्वोद्धृत; मि.भा.रा.,पृ. 392
7. वही, पूर्वोद्धृत; मि.भा.रा.,पृ. 394-95
8. वही, पूर्वोद्धृत; मि.भा.रा.पृ. 395

मोब. 9835375247

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 83-85
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत के आर्थिक विकास पर डिजिटलाइजेशन का प्रभाव

प्रो. राजेश बारिया
माँ नर्मदा शासकीय महाविद्यालय, सोण्डवा जिला- आलीराजपुर (म.प्र.)

शोध सारांश -
वर्तमान युग डिजिटलीकरण का युग है पिछले कुछ वर्षों में भारत का डिजिटल परिवर्तन उल्लेखनीय रहा है, जिसमें स्मार्टफोन, इंटरनेट कनेक्टिविटी व बैंकिंग तकनीकी का तीव्र उपयोग डिजिटल अर्थव्यवस्था में तीव्र विकास करने में सफल रहा है। डिजिटलीकरण ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास हेतु अवसर प्रदान किए हैं। तेज गति वाले डिजिटलीकरण ने देश की आर्थिक वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। डिजिटलीकरण ने भारत की अर्थव्यवस्था को जिन मुख्य तरीकों से प्रभावित किया है उनमें से एक महत्वपूर्ण कारक ही कॉमर्स है। ई-कॉमर्स ने भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित किया है। भारत में ई-कॉमर्स की वृद्धि ने व्यवसायों के लिए ग्राहकों तक पहुंच के नए अवसर पैदा किए हैं और उत्पादों और सेवाओं को उपभोक्ताओं के लिए सुलभ बना दिया है। भारत सरकार भी सक्रिय रूप से डिजिटल भुगतान को बढ़ावा दे रही है इसके साथ ही वित्तीय क्षेत्रों को भी काफी बढ़ावा मिला है जैसे-जैसे भारत डिजिटल परिवर्तन के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है वैसे-वैसे वित्तीय क्षेत्र में और अधिक वृद्धि एवं विकास की संभावना नजर आ रही है। भारत अपने डिजिटल दशक में है अर्थात भारत के संदर्भ में यह दशक 2020. 2030 वह समय है जब इंटरनेट कनेक्टिविटी डिजिटल भुगतान ऑनलाइन शिक्षा ई गवर्नेंस कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्लाउंड कंप्यूटिंग और 5G जैसी तकनीक आम लोगों के जीवन का हिस्सा बन रही है। भारत की जीडीपी में डिजिटल अर्थव्यवस्था का अनुमान 2026 तक 20 प्रतिशत ज्यादा होने का अनुमान है और भारत की डिजिटल अर्थव्यवस्था 2030 तक 6 गुना बढ़कर 01 लाख करोड़ डॉलर तक पहुंच सकती है। भारत की इंटरनेट अर्थव्यवस्था मौजूदा दशक के अंत तक अपने जीडीपी के 12.13 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी। भारत 2047 तक विकसित राष्ट्र बनने के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ रहा है जो डिजिटल अर्थव्यवस्था को मजबूत करके ही विकसित राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

कीवर्ड्स -
डिजिटलाइजेशन, डिजिटल पेमेंट, ई गवर्नेंस, ईकॉमर्स आदि।

शोध उद्देश्य
1. इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि डिजिटलाइजेशन का भारत के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा एवं देश के नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में क्या सुधार होगा।

2. द्वितीय उद्देश्य यह जानना कि सरकार द्वारा डिजिटलाइजेशन को भारत में लागू करने से डिजिटल इंडिया के सपने को साकार किया जा सकेगा या नहीं एवं डिजिटलाईजेशन की नवीन विचारधारा किस प्रकार प्रभावी ढंग से कार्य कर सकेगी।

समंक संग्रहण की विधियां -

इस शोध अध्ययन हेतु समंको को संग्रहण करने के लिए द्वितीय समंको को संकलित किया गया है। द्वितीय समको के संग्रहण हेतु विभिन्न पत्र पत्रिकाएं समाचार पत्रों, जनरल्स, पुस्तके, शोध पत्र एवं संक्षेपिका एवं इंटरनेट वेबसाइट आदि का प्रयोग किया गया है। अतः यह शोध पूर्णतः द्वितीयक समंको पर आधारित है।

शोध समीक्षा -

भारत को अधिक संभावना वाली एक प्रमुख अर्थव्यवस्था बताने वाले नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री ए. माइकल स्पेंस ने कहा है कि भारत उच्चतम संभावित वृद्धि दर वाली प्रमुख अर्थव्यवस्था है उन्होंने कहा कि भारत ने दुनिया में अब तक की सबसे अच्छी डिजिटल इकोनॉमी और फाइनेंस सिस्टम तैयार किया है।

द इकॉनमी ऑफ़ ए बिलियन कनेक्टेड रिपोर्ट में कहा गया है कि शहरों में इंटरनेट कनेक्टिविटी का तेजी से विस्तार होना, उपभोक्ता और बिजनेस के लगातार विकास के चलते 2030 तक भारत डिजिटल भारत बन जाएगा और भविष्य में अधिकांश सामान ऑनलाइन ही खरीदा जाएगा डिजिटलाइजेशन के इस युग में संपूर्ण भारत को एक खुला बाजार बना दिया है।

भारत में डिजिटलाइजेशन की आवश्यकता -

भारत में डिजिटलाइजेशन लागू करने का अर्थ देश के सभी 145 करोड़ जनता तक समस्त सेवाएं डिजिटल रूप में उपलब्ध कराने से है। इससे लोगों को नवीन जानकारी और तकनीकी नवाचारों का लाभ मिलेगा। डिजिटलाइजेशन गावों को समृद्ध करने एवं उनकी उन्नति कराने में लाभदायक सिद्ध होंगे। भारत में डिजिटलाइजेशन की आवश्यकता सिर्फ तकनीकी बदलाव के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए भी है। यह पारदर्शिता, दक्षता और समावेशिता को बढ़ावा देता है। भारत के डिजिटल दशक की परिकल्पना तभी सफल होगी जब हर नागरिक डिजिटल रूप से सशक्त होगा, डिजिटल साक्षरता बढ़ेगी और डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार होगा।

डिजिटलाइजेशन के समक्ष चुनौतियां -

भारत में डिजिटलीकरण का विकास काफी हद तक संभव हो गया है और देश की अर्थव्यवस्था पर इसका प्रभाव भी पड़ा है। परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इंटरनेट और प्रौद्योगिकी की पहुंच सीमित होने के कारण लगभग 40% आबादी अभी भी ऑफलाइन है। डिजिटल लेनदेन व डेटा शेयरिंग में वृद्धि ने महत्वपूर्ण गोपनीयता और डेटा सुरक्षा चिताओं को बढ़ा दिया है। जैसे-जैसे डिजिटलीकरण बढ़ता है साइबर खतरों और हमले की समस्या भी बढ़ती है। भारत को 2022 में लगभग 91 लाख साइबर सुरक्षा घटनाओं का प्रबंध सुनिश्चित करना पड़ा है। अतः साइबर सुरक्षा को मजबूत किए जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत आवश्यक साधनों की अपर्याप्तता जैसे बिजली ब्रांडबैंड नेटवर्क कनेक्टिविटी, बैंकिंग सुविधाओं की कमी आदि कारण डिजिटलाइजेशन लागू करने में बाधक है। इसके अतिरिक्त भारत की ग्रामीण आबादी डिजिटल रूप से अशिक्षित होने के कारण डिजिटल साधनों का प्रयोग करने में असमर्थ है।

डिजिटलाइजेशन को अपनाने हेतु संभावित उपाय-

डिजिटलाइजेशन को सफलतापूर्वक अपनाने और उसके लाभों को हर व्यक्ति तक पहुंचाने के लिए ठोस उपायो की आवश्यकता है। भारत जैसे विशाल और विविधता पूर्ण देश में यह कार्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।
डिजिटलाइजेशन को अपनाने हेतु संभावित उपाय निम्नलिखित है -

1. डिजिटल साक्षरता का विस्तार
2. मजबूत डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास
3. साइबर सुरक्षा और डाटा प्राइवेसी पर ध्यान
4. सस्ती और सुलभ डिजिटल सेवाएं
5. सरकारी सेवाओं का डिजिटल रूपांतरण
6. प्रशिक्षण और स्किल डेवलपमेंट
7. लोगों में विश्वास पैदा करना
8. स्टार्टअप और नवाचार को बढ़ावा देना
9. सामाजिक और मानसिक बाधाओं को दूर करना

उक्त उपायों को अपनाकर भारत की ग्रामीण आबादी को डिजिटलीकरण का लाभ प्रदान किया जा सकता है और देश की आर्थिक अर्थव्यवस्था में सुधार किया जा सकता है।

निष्कर्ष -

सामान्यतः डिजिटलाइजेशन की शुरुआत काफी पहले हो चुकी है अब केवल वह विकास की ओर बढ़ रहा है। डिजिटलाइजेशन ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में काफी योगदान दिया है परंतु कुछ चीज आज भी डिजिटल नहीं होने का कारण उसकी सुरक्षा की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इंटरनेट का कार्य तीव्रता से किया जा रहा है जिससे कि ग्रामीण लोगों द्वारा भी तकनीकी लाभ प्राप्त किया जा रहा है। डिजिटलाइजेशन ने भारत की आर्थिक अर्थव्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित किया है एवं नागरिकों के जीवन स्तर को भी बढ़ाया है। आज अधिकांश व्यक्ति के हाथ में मोबाइल है और वह मोबाइल के द्वारा अपने बहुत सारे काम करता है। डिजिटलाइजेशन से भारत देश को डिजिटल इंडिया बनाने का सपना जरूर साकार किया जा सकेगा। यदि तकनीकी जागरूकता कार्यक्रम को पूरे भारत में लागू किया जाए। कई देशों में आईसीटी के उपयोग से आर्थिक विकास दर में वृद्धि को प्रोत्साहित किया है, हमारे देश में भी जीडीपी का प्रतिशत पहले से काफी अधिक बड़ा है। डिजिटलीकरण के द्वारा डिजिटल भुगतान, ई-गवर्नेंस, ई-कॉमर्स, वित्तीय समावेशन, ब्रांडबेड और इंटरनेट तकनीक को प्रोत्साहित कर आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। इस विकास को बनाए रखने के लिए और नागरिक कल्याण को बढ़ाने के लिए चुनौतियां का सामने चुनौतियों का समाधान करना और प्रौद्योगिकी में आधिकारधिक निवेश करना महत्वपूर्ण है, साथ ही यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण है की आबादी के सभी वर्गों के लिए डिजिटल अवसर उपलब्ध हो।

सन्दर्भ –

1. शर्मा, डॉ. रूपलाल शर्मा, अजय कुमार (2021), भारतीय अर्थव्यवस्था के सामाजिक आर्थिक परिवर्तन पर डिजिटलीकरण का प्रभाव
2. श्रीवास्तव, अभिषेक अंजलि (2023), भारत के आर्थिक विकास पर डिजिटलीकरण का प्रभाव
3. Shallu, Sihmar Deepika (2019), Digitalization in India: An Innovative Concept
4. http://digipay.gov.in/
5. http://www.linkdin.com

rajeshbariya0808@gmail.com

मो.नं.- 9669324831

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 86-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में सुदूर पूर्व एवं चीनी मार्ग की निर्णायक भूमिका

दामिनी कुमारी,
शोधार्थी, इतिहास विभाग
प्रो. जया कुमारी आर्यन,
शोध निर्देशक, इतिहास विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी उत्तर प्रदेश 221002

प्राचीन भारत में व्यापार वाणिज्य की स्थिति अच्छी थी। व्यापार वाणिज्य के उन्नत अवस्था कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें वस्तुओं को उत्पादक स्थल से बाजार तक ले जाने की अच्छी व्यवस्था उनमें से एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके लिए व्यापारिक मार्गों को विकसित किया गया। प्राचीन भारत में आंतरिक व्यापारिक मार्ग के साथ-साथ बाह्य व्यापारिक मार्ग भी थे, जिससे विदेशों को वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। प्राचीन समय से ही भारत का अन्य देशों के साथ व्यापारिक संबंध रहे हैं। भारत का विदेशी राज्यों के साथ जल और स्थल मार्गों के माध्यम से व्यापारिक संपर्क स्थापित था।

व्यापारिक मार्ग किसी देश के आर्थिक जीवन की धमनियां होती है आरंभिक काल से ही व्यापारिक मार्गों के विकास के लिए कार्य किए गए पाषाण काल में जो ट्रेक प्रचलित थे, उनसे ही आगे जाकर व्यापारिक मार्गों का विकास हुआ। पुरापाषाण काल से ही यह ट्रेक विभिन्न मानव समूह एवं उप समूह के मध्य सामाजिक आर्थिक संपर्क का माध्यम थे। जैसे ही देश में नवपाषाणकालीन सभ्यता विकसित हुई व्यापारिक गतिविधियों से प्रयुक्त होने वाले इन मार्गों की संख्या भी तेजी से बढ़ गई।[1] सिंधु सभ्यता में भारत एवं पश्चिमी देशों के मध्य जो स्थल मार्ग का पता चलता है वही कालांतर में अंतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख संपर्क मार्गों के रूप में बदल गए।

प्राचीन काल में भारत का समुद्री मार्ग के द्वारा सुदूर पूर्व के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था। भारत के निवासियों ने सुदूर पूर्व के साथ सांस्कृतिक और आर्थिक कारणों से संपर्क बढ़ाने के लिए कई मार्गों का विकास किया। भारतीय की सुदूर-पूर्व के देशों के यात्रा करने की वजह में स्वर्ण की तलाश मुख्य वजह रही थी। भारत के पूर्व एवं दक्षिण पूर्व में स्थित इस भूमि को सुवर्ण भूमि के नाम से भी जाना जाता था तथा इसे भारतीय व्यापारियों का एलडोराडो नाम से भी जानते थे। [2]

स्वर्ण एक ऐसी धातु मानी जाती है जो दुर्लभ थी। इस धातु के आपूर्ति के लिए भारत काफी समय तक बैक्टीरियाई व्यापारियों पर निर्भर था। व्यापारी साइबेरिया जाकर वहां से स्वर्ण लेकर भारत आते थे, परंतु हम देखते हैं कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में मध्य एशिया में खानाबदोश जनजातियों की गतिविधियों के कारण स्वर्ण आपूर्ति का यह स्रोत अवरूद्ध हो गया था। दक्षिण भारत में विशेष कर हम देखते हैं कि स्वर्ण की आपूर्ति का एक अन्य स्रोत रोमन मुद्रा थी, जो स्वर्ण की होती थी। इन मुद्रा के जरिए भी स्वर्ण रोम से भारत आता था परंतु रोम के सम्राट वेस्पास्यिन (67 से 79 ई.) ने इसको बंद कर दिया। भारत रोम को मसाले एवं विलासिता की सामग्री का निर्यात करता था और वहां से इसके बदले में स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति होती थी। [3]

प्लिनी की रचना 'पेरिप्लस ऑफ दी एरिथियन सी' जो की प्रथम सदी ईस्वी की है जिसमें भारत द्वारा रोम को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का विवरण दिया गया है इससे जानकारी मिलती है कि भारत से बहुत बड़े पैमाने पर विलासिता की सामग्री और कीमती वस्तुएं रोम को निर्यात की जाती थी। इस काल में भारत के व्यापारी चीन का रेशम क्रय करते थे और उसे रोम के व्यापारियों तक पहुंचाते थे क्योंकि रोमन लोग को बहुत बड़े पैमाने पर मसाले की आवश्यकता होती थी जिस कारण मसाले की आवश्यकता की पूर्ति केवल भारतीय सामग्री द्वारा संभव नहीं थी इसलिए इस काल में भारतीयों ने दक्षिण पूर्व एशिया से संपर्क बढ़ाया जिससे ज्यादा लाभ भी कमा सके और भारत जो सामग्री का विदेशों में निर्यात करता था उससे प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में सोने और चांदी के सिक्के प्राप्त होते थे। जिसके लिए प्लिनी ने अपने ग्रंथ में दुख भी प्रकट किया है और रोम से सोने चांदी जैसे कीमती धातु के बड़े पैमाने पर होने वाले निकासी के कारण रोम की अर्थव्यवस्था पर बुरे प्रभाव का भी जिक्र करता है।

जब भारत में स्वर्ण की आपूर्ति में बाधा पड़ने लगी तो भारतीयों ने स्वर्ण की प्राप्ति के लिए सुदूर पूर्व की ओर ध्यान दिया। उस समय के कुछ ग्रंथों में इस बात की जानकारी मिलती है। जातक ग्रंथों में ऐसी अनेक कथाएं हैं जिससे यह पता चलता है कि भारतीय लोग धन और लाभ के लिए सुवर्णभूमि की यात्रा करते थे। [4]

हम देखते हैं कि भारत एवं सुदूर पूर्व के लिए कई व्यापारिक मार्ग स्थित है जिनमें से एक मार्ग भरूकच्छ से शुरू होकर सुवर्णभूमि एवं यवद्वीप के तट तक जाता था। एक अन्य मार्ग मसुलीपट्टनम से बंगाल की खाड़ी और वहां से होकर पूर्वी प्रायद्वीप तक जाता था। इस मार्ग का प्रयोग कर यवद्वीप (जावा), सुवर्णद्वीप (सुमात्रा), चम्पा (अन्नाम) और कंबोज (कम्बोडिया) जाया जा सकता था। चूकि इन मार्ग में ऊंची समुद्री लहरें आती थी जिसके लिए एक विशेष प्रकार की जहाज प्रयोग में लाई जाती थी। जिसे 'कोलंडिया' कहा जाता था। टांलमी ने अपनी रचना में एक अन्य मार्ग का भी उल्लेख किया है। यह मार्ग कलिंग के व्यापारियों ने प्रयोग में लाया था यह मार्ग गंजाम के समीप पलुरा (आधुनिक गोपालपुर) नामक बंदरगाह से शुरू होकर बंगाल की खाड़ी से होता हुआ में पूर्वी प्रायद्वीप को जाता था। [5]

भारत के मथुरा, वाराणसी, चंपा और कौशाम्बी के व्यापारियों के लिए ताम्रलिप्ती बंदरगाह सर्वाधिक सुविधा प्रदान करने वाला था। ताम्रलिप्ति बंदरगाह से जहाज समुद्र से होते हुए सुवर्णभूमि, यवद्वीप, कंबोज, चम्पा आदि सुदूर-पूर्व के देशों तक जाते थे। उस काल में भारत और चीन के मध्य प्रचलित मार्ग भी था जिसका प्रयोग व्यापारियों द्वारा बहुतायत किया जाता था। उत्तर भारत से व्यापार करने के लिए चीनी व्यापारी ताम्रलिप्ति बंदरगाह का प्रयोग करते थे। प्रथम सदी ईस्वी में फुनान (कंबोडिया) से भारत आने वाला एक दूतमंडल ताम्रलिप्ति बंदरगाह पर ही उतरा था टॉलमी द्वारा लिखी गई ग्रंथ ज्योग्राफी और कुछ अन्य ग्रंथ जैसे बृहत्कथाकोश संग्रह, कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी, महानिदेश में भी भारत और चीन के बीच स्थित तटीय मार्ग तथा कुछ व्यापारिक केन्द्रो के बारे में जानकारी मिलती है।

सुदूर पूर्व में भारतीय व्यापारियों की समुद्री गतिविधियों में मलय प्रायद्वीप की विशेष भूमिका रही है। मलय प्रायद्वीप भारत चीन के समुद्र मार्ग के मध्य में स्थित था। बंदरगाहों में तक्कोल (बंदरगाह) की महत्वपूर्ण भूमिका महत्वपूर्ण रहा है। इस बंदरगाह की पहचान तकुआ पा से भी की गई है। [6]

तक्कोल से स्थल एवं जल मार्ग दोनों द्वारा ही भारतीय व्यापारी स्याम, कंबोडिया, अन्नाम और इसके आगे भी पूर्व दिशा की ओर यात्रा कर सकते थे। कुछ विद्वानों का मानना है कि ट्रांस प्रायद्वीपीय मार्ग का कई बार प्रयोग में लाया जाता था, इसलिए की मालक्का जलसंधि से गुजरने वाला जो समुद्री मार्ग बहुत ही लंबा और जोखिम भरा था, किंतु फिर भी समुद्री मार्ग ज्यादा लोकप्रिय था। इसलिए भी की इसके माध्यम से यवद्वीप तक पहुंचने में कम समय लगता था। [7]

यवद्वीप पहुंचने के लिए व्यापारी तक्कोल से एक मार्ग द्वारा भी यात्रा करते थे। वारमिंगटन ने बताया है कि यवद्वीप में जावा और सुमात्रा के द्वीप भी शामिल थे। यवद्वीप की प्रसिद्ध स्वर्ण के लिए थी। संभवत: केवल सुमात्रा में ही स्वर्ण पाया जाता था, जावा में नहीं। [8]

ईसा की आरंभिक सदी से ही भारत का सुमात्रा से व्यापारिक संबंध रहा है। आगे जाकर चौथी सदी ईस्वी में आते ही भारतीयों ने यहां राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। जावा ने भारत एवं सुदूर पूर्व के बीच व्यापार मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जावा के एक राज्य का नाम चीनी ग्रंथों में 'हो-लिंग' मिलता है जिसे भारतीय राज्य कलिंग का रूपांतरण माना जाता है। इस तथ्य से यह ज्ञात होता है कि जावा एवं कलिंग के बीच घनिष्ठ संबंध कायम थे।

गुजरात के एक शासक अजिशक ने जावा का औपनिवेशीकरण किया था। दूसरी सदी ईस्वी में जावा के देव वर्मन नामक एक हिंदू शासक के काल में भारतीय व्यापारियों ने चीन के साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किए थे। [9]

प्रथम सदी ईस्वी में स्याम को भी भारतीयों ने उपनिवेश बना लिया था। सिंगापुर के निकट से एक मार्ग आगे जाकर कंबोज के तट पर स्थित बंदरगाह तक पहुंचता था तथा फिर यही मार्ग चंपा के तट के चारों ओर चक्कर लगाकर गुजरा था। भारतीयों द्वारा उपनिवेश बनाए गए कंबोज एवं चंपा का उपनिवेश बनने से पहले से ही आर्थिक संपर्क था। [10]

चंपा (अन्नाम) के एक शासक ने भारत में 240 ई से 245 ई के लगभग एक राजदूत भेजा था। राजदूत को चंपा से गंगा के मुहाने तक पहुंचने में लगभग एक वर्ष का समय लगा था। [11]

सिनाई दक्षिणी चीन को कहा जाता था। चंपा से सिनाई के लिए एक सीधा मार्ग था। इसकी यात्रा के लिए समुद्री मार्ग का प्रयोग किया जाता था किंतु उत्तरी चीन की यात्रा स्थल मार्ग द्वारा की जाती थी। कोई भी व्यक्ति कुछ दिनों की यात्रा से कैंटन (कैटिगारा) पहुंच सकता था जो की सिनाई का ही एक प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र भी था। [12]

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के ग्रंथों से पता चलता है कि चीन से कांची तक समुद्री यात्रा में एक वर्ष से अधिक समय लगता था। ईसा की प्रथम शताब्दी की शुरुआत में चीनी सम्राट ने हुआंग-चे (कांची) के शासक को उपहार भेजे और दूत मंडल बुलाने की बात कही, इससे स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक शताब्दियों से पहले ही भारत और चीन के बीच समुद्री मार्ग से संपर्क था। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व का एक चीनी सिक्का मैसूर से मिला है, जो इस संबंध की पुष्टि करता है।

भारत से चीन जाने वाले कुछ व्यापारिक मार्ग बैक्टीरिया से होकर भी गुजरते थे। भारतीय व्यापारी तक्षशिला से कपीशा तक पहुंचते और वहां से बैक्टीरिया जाते थे। बैक्टीरिया से चीन तक जाने के लिए कई मार्ग उपलब्ध थे। इनमें से एक मार्ग उत्तर दिशा सोग्डियाना से होकर गुजरता था। यह मार्ग सिर दरिया नदी को पार करते हुए ताशकंद

पहुंचता था। ताशकंद से आगे यह मार्ग तियान-शान पर्वत को पार करता और वहां से तूफान (Turfan) की ओर चला जाता था। [13] परंतु भारतीय व्यापार की दृष्टि से बैक्टीरिया वाला मार्ग उतना महत्वपूर्ण नहीं था। भारतीय व्यापारी प्राय: चीन जाने के लिए ताशकुरगन से होकर जाने वाले मार्ग को ही अपनाते थे। बैक्टीरिया और ताशकुरगन के बीच दो प्रमुख मार्ग थे। इनमें से एक मार्ग अलाय घाटी से होकर गुजरता था। दूसरा मार्ग काबुल और कपीशा से होकर एक दर्रे से निकलता था। यह मार्ग सीधे कुंदुज के पास मुख्य मार्ग से आकर मिल जाता था। [14]

कुंदुज से आगे मार्ग पूर्व की दिशा में कॉक घाटी से होकर फैजाबाद पहुंचता था और यहां से सीमा पार कर ताशकुरगन तक जाता था।[15]

ताशकुरगन से एक मार्ग चिचिकलिक दर्रे और येंगिसार होकर काशगर जाता था। भारत आने के क्रम में ह्वेनसांग ने भी यही मार्ग अपनाया था। काशगर आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर था और भारत से चीन जाने वाले बौद्ध धर्म प्रचारकों के लिए यह प्रमुख पड़ाव स्थल था। कुमारगुप्त और धर्मगुप्त भी चीन जाते समय यहां ठहरे थे। व्यापारिक संपर्कों के कारण सातवीं शताब्दी ईस्वीं तक काशगर में बौद्ध धर्म मजबूत हो चुका था। [16]

काशगर से उत्तर की ओर जाने वाला मार्ग व्यापार और सांस्कृतिक संपर्क का मुख्य रास्ता था। यह मार्ग मरालबाशी, तूर्फान एवं आक्सू होकर कुची जाता था। कुची एक व्यापारिक केंद्र था जो काफी महत्वपूर्ण माना जाता था। कुची से आगे बढ़ने पर यह मार्ग खोतान से दूनहुआंग जाने वाले मुख्य मार्ग से मिल जाता था। मिरन से जेडगेट जाने वाला प्रमुख मार्ग जो लोपनोर रेगिस्तान से होकर गुजरता था।ऑरेल स्टीन ने इस मार्ग पर कई प्राचीन अवशेष की खोज की यह मार्ग जेट-गेट (युमेन-गुआन) गांव से कांसु (गांसु) तक फैला हुआ था। वाणिज्यिक दृष्टि से या मार्ग बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था, इसलिए चीनी शासको ने इसकी सुरक्षा के लिए कई विशेष इंतजाम किए थे। [17]

दुनहुआंग करवॉ सराय थी। यह स्थान केवल बौद्ध भिक्षुओं के लिए ही नहीं बल्कि भारत और बैक्टीरिया से आने वाले व्यापारियों के लिए भी आश्रय स्थल था। प्रथम शताब्दी ईस्वी के बाद यह व्यापारियों के लिए एक महत्वपूर्ण कारवां सराय बन गया। तीसरी शताब्दी ईस्वी तक यहां कुछ भारतीय व्यापारियों की बस्तियां भी स्थापित हो गई थी।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत के विदेशी व्यापार में सुदूर पूर्व और चीनी मार्ग की भूमिका केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह बहुआयामी और दुरगामी प्रभाव डालने वाली भी थी। चीनी मार्ग ने भारत को मध्य एशिया, रोम, और चीन जैसी महान सभ्यताओं से जोड़ा, जबकि सुदूर पूर्व के समुद्री मार्गों ने भारत को मलय, सुमात्रा, जावा, कंबोडिया और बाली जैसे क्षेत्रों तक पहुंचा। इन मार्गों के माध्यम से न केवल भारत के मसाले, वस्त्र, धातुएं और मोती विदेश तक पहुंचे, बल्कि भारतीय धर्म, दर्शन, कला और स्थापत्य भी विश्व के अनेक हिस्सों में फैले।

इस व्यापार ने भारतीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाया, शहरीकरण को प्रोत्साहित किया और राज्यों को समृद्धि प्रदान की। साथ ही, सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल अत्यंत महत्वपूर्ण रहा क्योंकि भारत और अन्य देशों के बीच विचारों का आदान-प्रदान हुआ। भारतीय संस्कृति का प्रभाव सुदूर पूर्व के देशों की धार्मिक मान्यताओं, भाषाओं, स्थापत्य शैलियों और सामाजिक परंपराओं में आज भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार प्राचीन भारत केवल एक व्यापारिक केंद्र नहीं रहा, बल्कि एक सांस्कृतिक सेतु भी बना जिसने विविध सभ्यताओं को आपस में जोड़ा। यही कारण है कि प्राचीन भारत को उस समय विश्व व्यापार और संस्कृति का

धुरी (hub) माना जाता था। वास्तव में सुदूर पूर्व और चीनी मार्ग की निर्णायक भूमिका ने ही भारत को " विश्व गुरु" और "अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक केंद्र" के रूप में स्थापित किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. व्हीलर, आर. ई. एम. अर्ली इंडिया एवं पाकिस्तान, बॉम्बे, 1959 पृ. 93
2. मजूमदार, आर. सी., चंपा, बृहत्तर भारत परिसद् ग्रंथावली 1927 पृ 18 - 23
3. वारमिंगटन, ई. एच. कॉमर्स बिटवीन रोमन एम्पायर एंड इंडिया पृ. 213
4. जातक खंड - III पृष्ठ 188, खंड - VI पृष्ठ 30 - 34
5. श्रीवास्तव, बलराम, ट्रेड एंड कॉमर्स इन एंशिएंट इंडिया, पृ.109
6. मजूमदार, आर. सी., हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 16
7. मजूमदार, आर. सी. हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 16 - 17
8. वारमिंगटन, ई. एच. कॉमर्स बिटवीन रोमन एम्पायर एंड इंडिया पृ. 128
9. मजूमदार, आर. सी., हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 19
10. मजूमदार, आर. सी. हिंदू कॉलोनिज इन दि फार ईस्ट पृ. 154 - 155
11. मजूमदार, आर. सी., चंपा, पृ. 17
12. मजूमदार, आर. सी., चंपा, पृ. 18
13. बगची, पी. सी., इंडिया एंड चाइना पृ. 17
14. श्रीवास्तव, बलराम, ट्रेड एंड कॉमर्स इन एंशएंट इंडिया पृ. 115
15. स्टीन, आरेल, ऑन लोक ऑन एंशयंट टैक्स पास्ट पामीर पृ. 4 - 5
16. स्टीन, ए. एंशयंट खोतान, खण्ड - 1 पृ. 48 - 56
17. श्रीवास्तव, बलराम, ट्रेड एंड कॉमर्स इन एंशयंट इंडिया पृ. 117

Email Id. damini165@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 91-93
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अल्पायु विवाह एक सामाजिक समस्या; न्यीशी जनजाती के विशेष संदर्भ में

डॉ. डूरी शांति
सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,
देरा नातुङ शासकीय महाविधालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश

प्रस्तावना : विवाह यानी एक पवित्र बंधन है। यह बधंन तभी मजबूत होगा जब इसमे दोनो पती और पत्नी के बीच समझदारी के साथ सही साझेदारी रहेगी। अल्पायु विवाह का यहाँ सीधा सा अर्थ है कम उम्र में शादी करना।

विवाह जो मानव समाज की सबसे महत्वपूर्ण प्रथा है,साथ ही यह एक समाजशास्त्रीय संस्था भी है। यह समाज का निमार्ण करने वाली सबसे छोटी ईकाई-परीवार का मूल आधार है। एक गम्भीर सत्य यह भी है कि विवाह मानव प्रजाति के सातत्व को बनाए रखने का प्रधान जीवशास्त्रीय माध्यम है।

हमारे न्यीशी समाज में विवाह संबंधी दोनों विचारधाराऐं प्रचलित है। पहला प्रेम विवाह दूसरा सुसंगत विवाह।यह दोनों विवाह एक अभिशाप बन सकती है जब वर या बधु या फ़िर दोनों की उम्र और सोचने तथा समझने की क्षमता में कमी हों।

न्यीशी समाज में सो मे से चालिस प्रतिशत किशोर तथा युवा वर्ग में यह पाया गया है कि वे कम उम्र में विवाह कर अपनी जिन्दगी को बरबाद कर रहें है। जीवन में प्यार करना गलत नहीं है, परन्तु सही तब होगा जब आप शारीरिक और मानसिक तोर पर पूरी तरह से काबिल होगें। कई न्यीशी किशोर कम में विवाह कर अपने भविष्य के जिम्मेदारी और परेशानी से न लड़ पाकर गलत राह पर चलने लगें है।

उनका प्यार जिन्दगी की वास्तविकता से संधर्ष कर रहा है। छोटी उम्र में ही शादी करने से वे अपनी युवा वस्था के आनंद से वंचित ही रहे है। उनके जीवन में बुरे हालात और झगड़े ही झगड़े इसी कम उम्र में शादी करने के बजह से दिखाई पड़ रही है।

आइए यह जानने की कोशिश करें कि उम्र में विवाह किन कारणों के चलते युवा तनावपूर्ण जीवन रहे है :-

(क) परिपकवता की कमी :- परिपकवता को अंग्रेजी में मेचोरिटी कहते है। शादी करने के लिए बहुत सी प्रतिबध्दता यानी कमेटमेन्ट और सहयोग की जरुरत होती है। परन्तु हमारे किशोर इसकी गम्भीरता को नहीं समझ पा रहे है। वे केवल अपनी साथी की मोह और शारीरिक मिलन को प्राथमिकता देते है, और जब जिम्मेदारी निभाने की बारी आती है तब अपने बुरे हालातों पर रोने लगते है। शादी शुदा जिन्दगी में मेचोरिटी एक ऐसा चीज है जो उम्र से संबंधित है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकती है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है, कि हमारे युवा

जोड़े आज इसी अपरिपक्वता यानी इम्मेचोरिटी के कारण एक सफ़ल शादी-शुदा जिन्दगी नहीं जी पा रहे है और न ही अपनी जिन्दगी में तरक्की कर पा रहे है। और कई बार ऐसा देखनो को मिलता है कि इसी इम्मेचोअरिटी के चलते छोटी लड़ेकीयाँ बुढ़ो के संग शादी कर रही है। मेचोरिटी के कमी के कारण शादी-शुदा जीवन में कई बार ऐसे हालात आ जाते है जब आप अपने बीते दिनों को याद कर पचताते रहते है। जैसे आप दोनों-पत्नी ने शादी से पहले अपने दोस्तों के साथ, रेस्ट्रोन, डिस्को में शानदार रात का मजा लिया होगा, जो अभी तक आपके आदतों का एक हिस्सा है। पर अब क्या ? शादी के बाद जब यह मजे हद से ज्यादा हो जाए तो यही आदत बड़ी-बड़ी लड़ाईयों के कारण बन रहे है। हर विवाहित दम्पति को अपने साथी से बहुत सी उम्मीदें लगी होती है, परन्तु दोनों ही नासमझ और कम उम्र वाले हो तो यह मजा सजा बन जाती है। इस स्थिति मे विशेष रुप से कठिनाईयाँ लड़कीयों को ज्यादा होती है, क्योंकि हर कोई घर - परिवार सम्भालने की जिम्मेदारी लडकी के रुप डाल देता है जिसमें कई मायनों में उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाती है। यदि वे दोनों अपनी- अपनी आदतों को ठीक समय में सही न करें तो शादी ठूट जाती है।

आज का हमारा न्यीशी समाज ठूटे परिवार से आधिक होने के कारण बहुविवाह जेसी कुप्रथा का शिकार बनी है। और तो और कई बार इन्ही न समझ जोड़े के बच्चे घरेलु हिंसा का शिकार भी बन रही है।

(ख) वित्तीय संकट :- हाँ मैं यह मानती हूँ कि प्यार पैसों से बढ़कर है। प्यार अपने आप रिश्तों का निमार्ण करती है। परन्तु एक स्च्च यह भी है यदि, पैसों की कमी हद से ज्यादा हो जाए तो आपके प्यार के महल को नष्ट होने में कुछ ही सकेंड लगते है। जब तक आप अविवाहित है तब तक आपके माता-पिता आपकी जिम्मेदारी और आपका खर्च उठाते है, लेकिन एक बार आपकी शादी हो जाने के बाद उनका आपके प्रति यह उम्मीद रहती है कि आप अपना और अपने परिवार का खर्च खुद उठाए। हमारे न्यीशी समाज में ऐसे कई परिवार है जहाँ माता-पिता चाहे वे लड़की के घरवाले हो या लड़के के, वे दोनों की जिम्मेदारी उठाती है और फ़िर उनके बच्चे का भी। कई रुपों में ऐसा करने पर दूसरें बच्चों पर नाइंसाफ़ी करना है। विवाहहित जीवन के बाद अपने माँ-बाप पर बोज बनना गलत है। आप ऐसा कर अपने छोटों को गलत सिक दे रहे है।

जब तक आप और आपका जीवन्साथी आर्थिक रुप से सेटल या सक्षम नही हो पाते तो पहले पढ़ाई-लिखाई पुरी कर ले, फ़िर अपनी बुनियादी जरुरतों को पुरा करने के काबिल बने।

कम उम्र के शादी -शुदा जिन्दगी में अक्सर पढ़ाई पुरी नहीं कर पाने के कारण आच्छा रोजगार नही मिल पाती है। यही बेरोजगारी इन्हे नष्ट कर देती है।

(ग) स्वास्थ्य हानी :- खासकर छोटी बच्चीयों के स्वास्थ के लिए अल्पायु विवाह घातक है। उनका कोमल शरीर गर्भधारण करने में असमर्थ होता है, जिसके चलते उन्हे गर्भावस्था या बच्चे कों जन्म देते वक्त उसकी मोत तक हो सकती है। कई बार ऐसा भी होता है की बच्चे पैदा तो हो जाते है परन्तु वे कुपोषण का शिकार बन जाते है, और न समझी के कारण उन किशोर या युवा दम्पतियों को योन संबंधी बिमारियाँ जैसे एच. आई. वी एड्स और अनेक प्रकार के गुप्त रोग हो जाती है। उनका कोमल शरीर समय से पहला मुरझा जाती है।

(घ) दरिद्रता :- द्ररिता यानी बहुत गरीबी। हमारे न्यीशी समाज के कई इलाकों में अधिकांश कम उम्र शादी उन लड़के-लड़कियों मे देखा गय है जो गरीब परिवार से होते है। गरीबी की तीव्रता से हतास और दु:खी होकर कई बच्चीयाँ मजबुरी के कारण विवाह कर लेती है। वे यह समझती है कि इससे उनका भविष्य सुक्षित हो जाएगा। जबकी यह गलत अवधारणा है। कभी-कभी ऐसा भी पाया गया है कि गरीबी के करण माता-पिता अपने बेटी की शादी कम-उम्र में करवा कर उनसे अपना पीछा छुड़वाती है। हमारे न्यीशी समाज में बेटीयों की जन्म से वे खुश हो जाते है, क्योकि यही बेटी बाद में उनके ऋण चुकाने और विवादों का समाधान करने के काम आती है। आज कल

तो दो परिवारों के बीच के सामाजिक विवादो को दूरकने तथा राजनीतिक गठबंधनो को निपटाने या और ज्यादा मजबूत करने का तरीका भी मानती है। ऐसा कर वे किशोरों के जिन्दगी के साथ अत्याचार कर रहे है।

(ङ.) शिक्षा और जागरुकता की कमी :- न्यीशी सम्मज में आज भी कई ऐसे इलाके या गाँव है जहाँ न तो सड़क पहुँचती है न बिजली। कई परिवार है जहाँ न तो अच्छी शिक्षा न सही ज्ञान। इसी कमी के कारण किशोर शिकार बनती है कम उम्र की लड़्कीयाँ। आज कल तो सभ्य परिवार में भी कम उम्र में शादी देखी जा रही है मानों यह एक प्रकृत्रि यानी ट्रेन्ड बन चुकी है। युवा वर्ग अपने गलत दोस्तों के झाँसे में पड़कर या सही शिक्षा के अभाव के लकारण शीध्र विवाह का शिकार बन रहे है। आज स्कुलों और महाविधालयों में किताबी जानकारी के साथ- साथ जीवन के इस शीघ्र विवाह के दुष्ट परिणामों की जानकारी तथा इसके प्रति जागरुक्ता लाना अति आवश्यक एंव यह न्यी पीढ़ी की माँग बन चुकी है। यह देखा जा रहा है कि आज के बच्चे अपने मित्रों पर अधिक विश्वास करते है और परिवार के प्रति अविश्वास सा बनता जा रहा है। हमें चाहिए कि हम अपने बच्चों, भाई-बहनों और परिवारजनों के साथ ज्यादा से ज्यादा वकत बिताते हुए उनसे प्रेम करें उनका ख्याल रखें। उपने छोटों से समय-समय पर इस बारें में खुल कर बात करें, उनके मित्र बनें। उनकी अचछे से देखभाल करें।

उपसंहार :- जैसे कि आप देख सकते है कि कम उम्र में शादी करने पर केवल उन दम्पतियों की ही जिन्दगी खराब नहीं होती बल्कि इसके चलते उनसे होने वाले बच्चे यानी कि नयी पीढ़ी भी ख़तरें में पड़ सकती है वे नाबलिक माँ-बाप न तो अपने बच्चे की अच्छी परवशिश कर पाते है और न वे खुद की जिन्दगी सँवार पाते है। उनके जीवन में शारीरिक शोषण से लेकर मानसिक तनाव का ख़तरा भयंकर रुप ले लेती है। उन कम उम्र के किशोरों की एक ना समझी शादी के चलते पुरे समाज पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। एक पुरी पीढ़ी बरबाद हो सकती है। इस लिए मेरा आप सभी युवाओं से यह अनुरोध है कि आप जरुर प्रेम करें, परन्तु उस प्रेम को शादी में तभी तबदील करें जब आप इस काबिल हो जाए की आप एक दुसरें के जिम्मेदारी ठीक से ले पाए। एक दुसरे को अच्छे से समय दे, ताकी आप एक दुसरे को ठीक से समझ पाए, आपसी आदतों और भावनाओं को सुधारे और उसकी कदर करें। यह सब कुछ तभी मुम्कीन है जब आप बालिक हो जाते है। आप में अच्छे-बुरे और सही-गलत को समझने तथा परखने का ज्ञान आ जाए।

साथ ही मैं अपने समाज के उन सभी वर्गों के लोगों से यह अनुरोध करना चाहती हूँ कि आज जमाना मंगल गूल तक पहुँच चुकें है और कहाँ आप लोग केवल परिवार बढ़ाने में ही संकुचित रह रहें है। आप कृप्या कर अपने बच्चों के बीच ज्ञान-विज्ञान की बाते है कर सामाजिक बुराईयों और देश के बुरे हालातों पर चर्चा करें उनहें जीवन जीने के नय तथा सुरक्षित तरीकों से अवगत कराए न की केवल अपनी ही मोज मस्ती तथा रानीति में व्यस्त रहें। यदि हम सभी उपरोक्त मुद्दों पर गम्भीरता से अमल नहीं करेगें तो सच्च में वह दिन दुर नहीं जब हमारी नयी पिढ़ी कम उम्र में शादी करने के कारण सबसे पीछे छूट जाएगें।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

१. डॉ. हरीशकुमार शर्मा; भाषा संस्कृति और साहित्य; पृ. 80.

२. कस्टमरी लोज ओफ न्यीशी ट्राईव अरुणाचल प्रदेश ; डॉ. नावम नाका हिना; पृ. ३०

३. न्यीशी वलर्ड : दिवतीय संस्करण पूष्ठ ११

४. तोब तारिन तारा की पुस्तक ;न्यीशी वलर्ड का दूसरा संस्करण ; पृष्ठ- ५६

५. लोक- साहित्य और संस्कृति - दिग्दर्शन ; डॉ. जय नारायण कौशिक पृष्ठ - २४

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 94-98
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों में स्त्रियों का बदलता स्वरूप और पति-पत्नी संबंध (विशेष संदर्भ : आर्थिक उदारीकरण के पश्चात हिन्दी के प्रमुख उपन्यास)

उर्वशी कुमारी
पीएच.डी., हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध सारांश : किसी भी सामाजिक संबंधों में पति-पत्नी का संबंध एक प्रमुख संबंध होता है। इस संबंध के दायरे में समाज की विभिन्न व्यवस्थाएँ आती हैं। इसमें विवाह, तलाक, सम्पत्ति पर स्त्री का अधिकार, उसकी आत्मनिर्भरता जैसे प्रमुख मुद्दे जुड़ते हैं। आर्थिक उदारीकरण के कारण स्त्री की आत्मनिर्भरता की माँग बढ़ी है। उसके सामने रोजगार के अवसर बढ़ने से वह पहले की अपेक्षा ज्यादा आत्मनिर्भर हुई है। उसी आत्मनिर्भरता के कारण पति-पत्नी के पारंपरिक संबंधों में बदलाव दिखायी पड़ता है।

बीज शब्द : पति-पत्नी, विवाह, स्वावलंबन, कैरियर, घरेलू हिंसा, पितृसत्ता, नैतिकता, समझौता, निजता, लैंगिकता, श्रम-मूल्य इत्यादि

मुख्य आलेख :

मुझे चाँद चाहिए उपन्यास में अधिकांश प्रमुख पात्र प्रेम विवाह करते हैं। लेकिन प्रेम विवाह की विडंबना यह है कि उनमें हर बार एक स्त्री को ही समझौता करना पड़ता है। पत्नी को अपनी इच्छा, पैशन, कैरियर सभी को छोड़ कर एक कुशल गृहणी की भूमिका निभानी पड़ती है। विवाह बाद रीटा के सारे सपने टूट जाते हैं। वर्षा डॉक्टर अटल से उसके बारे में बताती है कि, "सर, रीटा को अगला साल अपने बढ़ते हुए परिवार को समर्पित करना होगा। क्या यह परवर्ती सत्र में रिपर्टरी कंपनी में आ सकती है ?"[1]

आवां उपन्यास में पति-पत्नी संबंध को गौतमी के माता-पिता और संजय कनोई के उदाहरणों से समझा जा सकता है। गौतमी की माँ और उसके पहले पिता के बीच का संबंध हिंसा और उत्पीड़न भरा था। शराबी व्याभिचारी पति जो कि पुलिस अधिकारी है, आए दिन पत्नी पर बर्बरता करता था। गौतमी की माँ के पास उस नरक से निकलने का तलाक के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं बचता, "शराबी व्याभिचारी पुलिस अधिकारी पति के मानसिक दैहिक उत्पीड़न से त्रस्त गौतमी की माँ ने लंबी कानूनी लड़ाई लड़ने के उपरान्त जैसे-तैसे उससे मुक्ति पाई। इकलौती युवा बेटी

के साथ चार वर्ष एकाकी जीवन बिताने के पश्चात उन्होंने जिस पुरुष से पुनर्विवाह किया, पेशे से वह सुप्रसिद्ध शिल्पकार थे।"[2]

उपरोक्त दो कथनों में क्रमशः रीटा और गौतमी की माँ के संदर्भ में यदि हम पारिवारिक संस्था, वैवाहिक संस्था का मूल्यांकन करते हैं तो हम पाते हैं कि स्त्रियों के लिए वह कई तरह की चुनौती बनकर आती है। ऐसी ही चुनौतियों के देखते हुए वैवाहिक संस्थाओं में सुधार की तरफ रमणिका गुप्ता ने ध्यान दिलाया है—"पुरुष समाज ने स्त्री को खूंटे से बाँधने के लिए ही ब्याह का बंधन बनाया। ब्याह बंधन है और परिवार उसका पिंजरा है। उसी परिवार में पुरुष भी रहता है, लेकिन वह परिवार में कैद नहीं होता, जैसे स्त्री होती है। पुरुष परिवार से उतना नहीं बँधता, जितना कि स्त्री। इस तरह विवाह और परिवार की अवधारणा के मूल में दोहरी शोषण व्यवस्था निहित है—एक उसका यौन-शोषण, दूसरा उसका आर्थिक इस्तेमाल व आर्थिक लाभ के लिए दोहन। वह परिवार का ऐसा सदस्य बन जाती है, जिसके किसी काम का मोल नहीं यानी उसकी सारी मेहनत, सारे काम उसके कर्तव्य हैं।"[3]

विवाह संस्था में, तलाक और पुनर्विवाह का नियम आसान होने से, एक स्त्री के पास घरेलू हिंसा से बचने का आसान विकल्प हो सकता है।

गौतमी ने साहस करके अपनी जिंदगी अपनी शर्तों पर जीना सीखा है। वह वैवाहिक जीवन में अपनी माँ की तरह कोई समझौता नहीं करना चाहती। वह आत्मनिर्भर है और उसकी आत्मनिर्भरता पति-पत्नी के रिश्ते को नए तरीके से परिभाषित करता है। वह कहती है, "बहुत कुछ मालूम पड़ गया होगा तुम्हें शायद ! शेष मैं बताए दे रही हूँ। माँ के अलावा घर में मेरा एक अदद पति है–नाम है अशोक। ठीक उसी तरह जिस तरह घर में अलमारी है, फ्रिज है, वाशिंग मशीन है, डिशवाशर है। जितना वो मेरे लिए काम का हैं, बदले में मैं उनकी देखभाल करती हूँ–अशोक के साथ भी मेरा यही रिश्ता है ! शेष मैं क्या हूँ, कहाँ जाती हूँ, किसके साथ सोती हूँ, सोना चाहती हूँ, सोती भी हूँ या नहीं सोती हूँ–कोई मतलब नहीं उससे ! घर मेरा है। अशोक को रहना है रहे; न रहना हो, छोड़कर चला जाए।"[4]

यहाँ पति-पत्नी के संबंध में मूल्य और नैतिकताएँ पहले जैसे नहीं हैं। स्त्री आत्मनिर्भर है तो वह नैतिकताओं को अपने तरीके से परिभाषित करती है। उसमें अब नैतिकता को लेकर पहले जैसा दुराव-छिपाव नहीं है। वह अब संबंधों के बारे में बेझिझक नमिता से बता सकती है।

दौड़ उपन्यास में पति-पत्नी का संबंध मुख्यतः शहरी जीवन और कार्पोरेट में काम करने वाले युवा दंपतियों के बीच का है। इनमें रोजगार की समस्या एक प्रमुख समस्या है। यही उनके बीच के संबंधों को प्रभावित करता है। कैरियर और दाम्पत्य संबंधों के बीच कई बार प्राथमिकता को लेकर असमंजस की स्थिति रहती है। पहले की तरह पत्नी अब केवल गृहणी न होकर वह हर मोर्चे पर पुरुष के बराबर खड़ी है। यही विशेषता उसके दाम्पत्य संबंधों को आधुनिक संदर्भों में देखने का आधार देता है।

राजुला और अभिषेक पति-पत्नी हैं। दोनों के बीच विवाह और बच्चों को लेकर अक्सर नोंक-झोंक हो जाती। अभिषेक को लगता कि बीवी और बच्चों के कारण उसका निजी जीवन काफी कठिन हो गया है। अविवाहित लोग विवाहित से ज्यादा सुखी हैं। इस तरह की सोच आज युवाओं में बढ़ती जा रही है। राजुला को लगता कि अभिषेक जैसे पुरुषों को शादी के सुख तो चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं उठानी। वह प्रतिकार करती है, "हिन्दुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं चाहिए। मेरा कितना हर्ज हुआ। अच्छी भली सर्विस छोड़नी पड़ी। मेरी सब कलीग्स कहती थीं राजुला शादी करके अपनी आजादी चौपट करोगी और कुछ नहीं। आजकल तो डिंक्स का जमाना है। डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आमदनी, बच्चे नहीं) सेन्टिमेण्ट के चक्कर में फँस गयी।"[5]

इस कथन में एक स्त्री की आजादी का मतलब, उसकी अपनी पहचान का मतलब केवल उसकी नौकरी तक सीमित कर दी गई है। राजुला घर की देखभाल करती है जिसे वह खुद भी अभिषेक के ऑफिस के श्रम जितना महत्वपूर्ण नहीं मानती। घरेलू जिम्मेदारी संभालने वाली स्त्रियों के श्रम को महत्वपूर्ण न मानने के प्रति जिस तरह की मानसिकता होती है, उसे लेकर स्त्री-पुरुष दोनों के दृष्टिकोण में एक तरह की समानता होती है। श्रम के इस लैंगिक विभाजन के स्वरूप पर निवेदिता मेनन का मत है, "श्रम का यौन-आधारित विभाजन केवल परिवार ही नहीं, अर्थव्यवस्था के संरक्षण में भी बुनियादी भूमिका निभाता है। अगर पति या नियोक्ता द्वारा इस अवैतनिक काम का पारिश्रमिक दिया जाने लगे तो पूरी अर्थव्यवस्था ताश के पत्तों की तरह बिखर जाएगी। एक बार यह कल्पना करके देखें : नियोक्ता अपने पुरुष या महिला कर्मचारी को उसके श्रम के बदले पैसा देता है। लेकिन इस कर्मचारी का अगले दिन काम पर आ पाना किसी अन्य कारण द्वारा (या खुद पर) किए जानेवाले कार्यों जैसे खाना बनाने, सफाई और घर की देखरेख पर निर्भर करता है। इन कार्यों के लिए नियोक्ता कोई पैसा नहीं देता। ऐसे में, अगर अवैतनिक श्रम की एक पूरी संरचना अर्थव्यवस्था का आधार बनी हुई हो तो श्रम के यौनिक विभाजन को घरेलू या निजी मामला न मानकर उसे अर्थव्यवस्था की चालक शक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए। अगर कल प्रत्येक महिला अपने इस काम के दाम माँगने लगे तो पारिश्रमिक देने की जिम्मेदारी पति या नियोक्ता को वहन करनी पड़ेगी।"[6]

पवन और स्टैला के दाम्पत्य संबंध के जो सपने हैं, वे एक-दूसरे के प्रति सहयोगात्मक हैं। दोनों वैवाहिक बंधन में बंधना तो चाहते हैं लेकिन कोई किसी के निजी जीवन में दखल नहीं देना चाहता। दोनों अपनी पसंद के कैरियर को जीना चाहते हैं मगर विवाह के नाम पर किसी को अपने कैरियर से समझौता नहीं करना पड़ता।

एक ब्रेक के बाद उपन्यास में पति-पत्नी के बीच का संबंध उनके रोजगार की स्थिति और रोजगार संबंधी मानसिकता से प्रभावित होता है। उपमन्यु भट्ट अपनी किसी भी नौकरी को लेकर संतुष्ट नहीं रहता। उसका मन जब भी ऊबता वह नौकरी छोड़कर पत्नी-बच्चे सहित किसी दूसरे शहर में नई नौकरी के लिए प्रस्थान कर जाता। उसकी इस आदत और नौकरी के प्रति उसकी इस बेपरवाही से उसकी पत्नी हमेशा दुखी रहती है। आज के कठोर प्रतिस्पर्धा के इस दौर में आर्थिक संकट एक कटु यथार्थ है, जिसे पत्नी अनदेखा नहीं कर पाती। भोपाल में नौकरी करते समय उसकी पत्नी अपने पति की नौकरी बचाने के लिए, कंपनी के मालिक विवेक देवराय से नजदीकी बढ़ाने लगती है। उपमन्यु भट्ट पहली बार पत्नी के स्वभाव में इतना बड़ा परिवर्तन देखता है। वह सदमे में सोचता है, "उसकी पत्नी ने आज तक इतने शहरों की यात्रा में किसी परिवार या शख्स को अपनी घर-गृहस्थी, पति-बच्चे से ज्यादा अहमियत नहीं दी थी। यहाँ तक कि उसका अपना वजूद या दिल्ली वाली नाटक-मंडली से उसका गहरा जुड़ाव भी कभी भट्ट की किसी इच्छा से बड़े नहीं हुए थे। आम भारतीय माँ की तरह वह अपने बेटे अमन के लिए दुनिया का हर सुख तो क्या, स्वर्ग के सातों सुख भी छोड़ सकती थी।"[7]

भट्ट ने पत्नी को अब तक इसी रूप में देखा था कि वह हर विपरीत परिस्थिति में भी एक समर्पित पत्नी, उसके बच्चे के लिए एक समर्पित माँ ही बनी रहेगी। वह अपनी पत्नी की भूमिका इसी रूप में नियत कर बैठा था, "भट्ट को अब समझ में आया कि उसकी लगातार टूटती-बनती-जमती-उखड़ती दुनिया में उसकी पत्नी एक 'कॉन्सटेन्ट फैक्टर' रही है, जो हमेशा एक जैसी रहती आई है।"[8]

पत्नी विवेक देवराय के परिवार के करीब जाने का अपना आर्थिक कारण स्पष्ट करती है। उस परिवार से अलगाव जैसी स्थिति पैदा होती है तो पत्नी कहती है, "सोचा कि ये लोग खुश रहेंगे, तो तुम्हारा खास ध्यान रखेंगे। सब बेकार था।"[9]

देश निकाला उपन्यास में पति-पत्नी के बीच अपनी निजता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आग्रह प्रमुखता से दिखाई पड़ता है। दोनों रंगमंच के कलाकार थे तभी से एक-दूसरे के करीब आए और अंत में वे शादी के बंधन में बंध गए। उनके बीच बहुत सी बातें अनकही ही रह जाती हैं। पति बहुत सी वैसी बातें भी गोपनीय रखता है जो आमतौर पर पत्नी को पता होनी चाहिए। मल्लिका की गौतम से यही शिकायत है, "लॉर्जर दैन लाइफ सिनेमा का सच हो सकता है, जीवन का नहीं। जीवन में छोटे-छोटे दुख भी होते हैं जिन्हें कोई पत्नी अपने पति के साथ शेयर करना चाहती है। तुम कैसे निर्देशक हो जो अपनी पत्नी के दुखों को शेयर करना तो दूर उनसे परिचित तक होना नहीं चाहते ?"[10]

दोनों के बीच का संबंध ऐसा है कि वे पति-पत्नी होने के बाद भी एक-दूसरे के अहसान को बोझ समझते हैं। गौतम किराये के मकान में रहता है। मल्लिका ने नौकरी करके तथा बैंक लोन लेकर मकान खरीद लिया था लेकिन उसमें गौतम को रहना किसी पर बोझ की तरह रहने जैसा लगता है—"एक सुबह गौतम को उसके गोरेगाँव वाले किराये के अपार्टमेंट में छोड़ (मल्लिका) अपने नए फ्लैट में शिफ्ट भी कर गई। गोरेगाँव वाले फ्लैट में बिखरी बेतरतीब जिन्दगी को आकार देते देते वह आजिज आ जुकी थी। उसने गौतम का मान रखते हुए बहुत आदर भाव से आग्रह किया था–जब अपना घर है तो किराये के मकान में रहने की व्यर्थ जिद क्यों ? हमने भले ही विधिवत शादी नहीं की है लेकिन आखिरकार मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, कोई गर्लफ्रेंड नहीं कि मेरे साथ आकर तुम्हारी मर्यादा पर आँच आ जाएगी। तुम थियेटर करते रहो, कौन मना करता है। एक घर में रहकर क्या हम अपना-अपना निजी जीवन जीते नहीं रह सकते?"[11]

मल्लिका और गौतम दोनों के व्यक्तित्व में विरोधाभास है। वे कभी तो एक-दूसरे के बारे में चिंतित होते हैं तो कभी उसे अपने निजी जीवन की बाधा के रुप में देखते हैं। मल्लिका महसूस करती है कि दोनों के निजी स्पेस में कोई दखल न दे मगर कई बार यह बात भी उसे कचोटती है कि गौतम उसे लेकर बेपरवाह है।

सही नाप के जूते उपन्यास में पति-पत्नी के संबंधों में तल्खी का कारण संबंधों के प्रति पति की उदासीनता, घर के प्रति जिम्मेदारी का अभाव दिखता है। उर्मी की माँ जब भी उसे समझाती है तो उसके पिता के प्रति उनका असंतोष अक्सर बाहर आ जाता है। यह असंतोष पुरुष समाज के प्रति भी होता—"तुम्हीं बताओ उर्मि। यह प्रेम विवाह करके मुझे क्या मिला ? दोनों पक्षों की नाराजगी के कारण तुम्हारे पापा की उदासीनता। एक घर में दो लोग रहते हैं। एक दिन भर कोल्हू के बैल की तरह जुता रहता है, दूसरा अपने ही घर में मेहमान की तरह रहता है। मैं रसोई में चिल्लाऊं, 'नमक कहाँ रखा है ?' तो अजीब लगेगा। मगर आदमी का चिल्लाना...'मेरे मोजे कहाँ है ?' जरा भी विचित्र नहीं लगता। घर और घर की सब सुविधाएँ आदमी के लिए हैं, यह घर चलता कैसे है, औरत से पूछो ! तुम्हें इन सब बातों पर सोच-विचार करनी चाहिए। पुरुष व्यापारी है और उसने यह दुनिया अपने सुख और संतोष के लिए रची है।"[12]

उक्त कथन में एक स्त्री का असंतोष, घर के अन्दर काम करने के उसके महत्व को कम करके आँके जाने या एक स्त्री को घर के काम तक सीमित कर दिए जाने को लेकर है। घर के अन्दर श्रम के विभाजन की मानसिकता, महत्व को देखने का अपना एक लैंगिक दृष्टिकोण होता है। उसे अनुपमा रॉय स्पष्ट करती हैं, "इसने (पूँजीवाद ने) बाजार और निजी घर के लिए होने वाले उत्पादनों में एक तरह की पृथकता पैदा की। इस प्रकार, इसने सार्वजनिक तथा घरेलू दायरों के बीच विभाजन पैदा किया। यह विभाजन मुख्य रूप से इस तथ्य से तय हुआ कि घर की आर्थिक गतिविधियाँ सार्वजनिक/नागरिक समाज की गतिविधियों से अलग होती हैं। यह माना गया कि सार्वजनिक/नागरिक समाज में उत्पादन मुनाफा कमाने के लिए होता है तथा उत्पादन के सम्बन्ध में पारिवारिक और व्यक्तिगत जुड़ाव बेमतलब होते हैं। इसके अलावा, दोनों दायरों के बीच जेण्डर के आधार पर भी अन्तर किया गया। घरेलू क्षेत्र को स्त्री और सार्वजनिक क्षेत्र को पुरुष दायरे के रूप में प्रस्तुत किया गया।"[13]

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पति-पत्नी संबंध में पत्नी को अपने स्त्री होने को लेकर एक तरह का असंतोष है। पत्नी के दोयम दर्जा देने के पीछे का मुख्य कारण पितृसत्तात्मक सोच है। उसकी मेहनत, प्रतिभा यहाँ तक कि उसके रोजगार सभी को कमतर करके आंका जाता है। उसके घर संभालने की जिम्मेदारी को कोई महत्व नहीं दिया जाता। यह उसका कर्तव्य मान लिया जाता है। बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों के कारण कहीं-कहीं पुरुष का रवैया सहयोगात्मक भी है।

संदर्भ सूची

1. सुरेन्द्र वर्मा, मुझे चाँद चाहिए, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2021, पृ. 322
2. चित्रा मुद्गल, आवां, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 322
3. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण (पेपरबैक्स) 2022, पृ. 117
4. चित्रा मुद्गल, आवां, पृ. 361
5. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 30
6. निवेदिता मेनन, नारीवादी निगाह से, नरेश गोस्वामी (अनु.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण (पेपरबैक्स) 2021, पृ. 25
7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 131-32
8. वही, पृ. 133
9. वही, पृ. 138
10. धीरेंद्र अस्थाना, देश निकाला, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 10
11. वही, पृ. 13
12. लता शर्मा, सही नाप के जूते, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, 2019, पृ. 45
13. अनुपमा रॉय, नागरिकता का स्त्री-पक्ष, कमल नयन चौबे (अनु.), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2017, पृ. 93-94

Urwashipandey21@gmail.co

Mob : 8130975591

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 99-103
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्रस्तावित मातृभाषा में विद्यालयी शिक्षा की प्रासंगिकता

श्रीमती ऊषा देवी
एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग,
जे० डी० वी० एम० पी० जी० कॉलेज कानपुर नगर

शिक्षा मनुष्य के लिए आवश्यक है। शिक्षा का अर्थ सीखने से हैं। जीवन पर्यंत व्यक्ति सीखता है अतः शिक्षा व्यक्ति का समग्र विकास करती है। मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अति आवश्यक पहलू है। शिक्षा द्वारा मनुष्य जीवन पर्यंत विकासात्मक कार्य की ओर उन्मुख रहता है। शिक्षा द्वारा मनुष्य घर, परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अच्छी तरह से निर्वहन करता है। आधुनिक भारतीय भाषा के क्षेत्रों के विकास के लिए मातृभाषा दिन प्रतिदिन प्रगतिशील है। उत्तरोत्तर बढ़ते विकास के लिए आज मातृभाषा और उसकी संस्कृति की अति आवश्यकता है।

शिक्षा के गुण संबंधी विशिष्टता को कायम रखने के लिए शिक्षा नीति में बदलाव जरूरी है। समय परिवर्तनशील है। समय के परिवर्तन के कारण शिक्षा में परिवर्तन हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को अधिक प्रभावी बनाए रखने के लिए लाई गई है। वैसे तो शिक्षा में बदलाव भारत के स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा नीति द्वारा शिक्षा में बदलाव किया गया। भारतीय शिक्षा प्रणाली में इस हेतु स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात आयोग एवं समितियों का गठन किया गया |

1. कलकत्ता विश्वविद्यालय परिषद-(1818),
2. चार्ल्स वुड समिति-(1824)
3. डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर आयोग -(1882-1883)
4.सर थामस रैले आयोग (1902)
5.एम ई सैंडलर आयोग (1917)
6.सर फिलिप हार्टोज समिति (1929)

स्वतंत्रता के बाद बनी शिक्षा समितियां और आयोग:

1. एस राधाकृष्णन आयोग-(1948 -1949)
2. मुदालियर आयोग-(1953)
3. डीएस कोठारी आयोग-(1964)
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पुनर्विचार-(1992)
5. एम. बी. बुच समिति-(1989)
6. जी. एम. रेड्डी समिति-(1992)
7 प्रोफेसर यशपाल समिति- (1992)
8. रामलाल पारेख समिति (1993)
9. प्रोफेसर खेरमा लिंगदोह समिति-(1994)
10. प्रोफेसर टकवाले समिति–(1995)
11. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग-(2005)
12. जस्टिस जे एस वर्मा समिति-(2012)
13. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-(2017)

नई शिक्षा नीति 2020 में प्ले स्कूल की पढ़ाई को स्कूली पढ़ाई में बदल दिया गया है। इस उम्र का बच्चा अपनी मातृभाषा में शिक्षार्जन अधिक से अधिक ग्रहण करेगा। इससे शिक्षा राइट टू एजुकेशन की ओर अग्रसर होगी। आईटी की शिक्षा भी 18 वर्ष तक के बच्चों के लिए कर दी गई है। जिससे मातृभाषा और प्रौढ़ होगी। सरकार द्वारा शिक्षा नीति में किए गए संशोधन से मातृभाषा को बढ़ावा मिलेगा और स्थानीय भाषा और क्षेत्रीय भाषा का भी विकास होगा । इस नीति को सभी शिक्षण संस्थानों में लागू किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की शिक्षा व्यवस्था बहुभाषा और मातृभाषा पर आधारित है। यह भारत तथा विद्यार्थियों के बीच का एक केंद्र बिंदु है। यह सर्वविदित है कि छोटे बच्चे अपने घर की भाषा / मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते हैं और समझ लेते हैं।

विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। आज भी प्रांतों में शिक्षा और साक्षरता में महिलाओं और बच्चों में पिछड़ापन है। कई बच्चे तो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। और कुछ भाषा की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के कारण पढ़ाई छोड़ देते हैं। मातृभाषा में शिक्षा, कार्य और व्यवहार से शिक्षा और साक्षरता पूर्ण रूप से प्रभावी हो सकती है।

इस नीति में भारत की भाषाओं में शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए राज्य सरकारें अनुबंध के द्वारा शिक्षकों का आदान प्रदान कर सकती हैं तथा कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों को "एक भारत श्रेष्ठ भारत" में भाग लेना होगा। त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन के लिए छात्रों को 3 में से 2 भारतीय भाषाओं का चयन अनिवार्य है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की शिक्षा व्यवस्था में मातृभाषा /स्थानीय भाषा / क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का केंद्र बिंदु है बालक बालिकाओं के भविष्य को शिक्षा, द्वारा केंद्रित की गई है।

इस बार नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए सरकार ने 2030 तक का लक्ष्य रखा है हालांकि शिक्षा भारतीय संविधान में समवर्ती सूची का विषय है। इस शिक्षा नीति में यह प्रस्ताव रखा गया है कि जिसमें केंद्र और राज्य

सरकार दोनों ही का अधिकार होता है। इस तरह राज्य सरकार इसे पूरी तरह माने या ना माने। यह ऐक्छिक है जहां कहीं टकराव की स्थिति पैदा होगी वहां दोनों पक्ष आम सहमति से इसे सुलझा सकेंगे।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से होने वाले लाभ

1. पुरानी कमियों को दूर कर नई शिक्षा द्वारा शिक्षा को व्यापक बनाने पर ध्यान दिया गया है।
2. छात्रों के ज्ञान एवं कौशल का विकास करना।
3. केंद्र व राज्य सरकार द्वारा जी डी पी का 6% शिक्षा पर खर्च |
4. मिश्रित विषय को चुनने की स्वतंत्रता ।
5. बोर्ड की परीक्षा दो बार देने की व्यवस्था |
6. छात्र अपनी भाषा में पढ़ पाएंगे।
7. तकनीकी शिक्षा देने की व्यवस्था |

अतः स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर जो हिंदी भाषा अपनी बोलियों की सहचरी थी उस मातृभाषा की लड़ाई लड़ी और भारत को स्वतंत्रता मिली। स्वतंत्र भारत में भी भारत की अनेक भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी भाषा शिक्षा का पर्याय बनी रही । भारतीयों का रुझान भी अंग्रेजी के प्रति बढ़ता रहा।। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा मनुष्य को एक संसाधन के रूप में देखती रही। उस शिक्षा ने मनुष्य को बाजारीकरण की ओर धकेल दिया, किंतु मातृभाषा पर से हित का भाव और भारतीय भाव से दूर होता चला गया।

मातृभाषा -----मातृभाषा का शाब्दिक अर्थ है--- माता की भाषा ।

मातृभाषा दो शब्दों से मिलकर बना है- मातृ , भाषा।

मातृ---- माता वह होती है जो प्राणी को जन्म देती है। संस्कृत का मूल शब्द मातृ है।

भाषा---भाषा शब्द संस्कृत की भाष धातु से बना है जिसका अर्थ है --' बोलना' या 'कहना' अर्थात भाषा वह है जिसे बोला जाए।

मातृभाषा के लिए बालक को किसी प्रकार का अनावश्यक प्रयास नहीं करना पड़ता। वह दिन प्रतिदिन अपनी भाषा सीखता है। यह प्रक्रिया जीवन पर्यंत चलती रहती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मातृभाषा को निज भाषा की संज्ञा दी है। निज भाषा अर्थात हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाएं थी । व्यक्ति समाज और राष्ट्र की एकता निज भाषा की उन्नति से ही बनाए रखी जा सकती है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब भाषा को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय के शूल।।"

मातृभाषा देश के सभी भाषा और संस्कृति को जोड़ती है। गुलामी की जंजीरों में बंधा हुआ भारत की ज्ञान की परंपरा को नष्ट करने के प्रयास होते रहे हैं। मैकाले की शिक्षा नीति ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को अनेक प्रकार से बर्बाद किया है। मैकाले की शिक्षा नीति में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना का अभाव ही रहा है। मातृभाषा से नैसर्गिक रूप से जुड़ा हुआ व्यक्ति अपनी जन्म दात्री या जन्म भूमि से भी जुड़ा रहता है | इसीलिए जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।

ऐसा कहा गया है---

"अपि स्वर्णमई लंका, न में लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।"

जननी ही जन्म दात्री है पालन पोषण कारिणी है। मां का स्थान सभी से ऊपर है। माता से सीखी हुई भाषा मातृ भाषा कहलाती है। मां की गोद में शिशु खेलकूद कर बड़ा होता है। मां के स्पर्श से ही बच्चे की भाषा का प्रारंभ होता है। स्पर्श भाषा ही मातृभाषा की सांकेतिक भाषा है। वाणी का प्रस्फुटन मां के द्वारा ही होता है।
भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी भाषा पर जोर देते हुए कहा है---

"अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन ।
पै निज भाषा ज्ञान बिनएरहत हीन के हीन।।"

अंग्रेजी पढ़ कर मनुष्य सभी गुण ग्रहण कर सकता है अगर उसे अपनी भाषा का ज्ञान नहीं है तो वह मनुष्य हीन है। यह कथन भारतेंदु हरिश्चंद्र का है जो कि एक सच्चे देशभक्त, स्व भाषा के प्रति प्रेम, लेखक और कवि थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मातृभाषा को ही निज भाषा कहा है। उन्होंने निज भाषा को समृद्ध बनाने का बीड़ा उठाया। भारतेंदु हरिश्चंद्र जानते थे कि अच्छा पढ़ा लिखा भारतीय अंग्रेजी भाषा की अंग्रेजियत में डूब रहा है।

अंग्रेजी भाषा की गुलामी का एहसास भारतेन्दु हरीशचंद्र को बहुत पहले ही हो गया था | तभी उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में चाहे जितना भी मनुष्य दक्ष हो जाये, किन्तु जब तक उसकी अपनी भाषा नहीं होगी तब तक उसका ज्ञान म्यान के समान ही होगा | ऐसा ज्ञान खोखला ज्ञान साबित होगा अपनी भाषा के ज्ञान होने पर ही मनुष्य को गर्व होगा | अपनी भाषा मातृभाषा की एक बोली ही क्यों ना हो |

देश के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह मातृभाषा को सीखे उसी भाषा में उन्नति करे मातृभाषा में बोलने और विचारों का आदान प्रदान करने वाला व्यक्ति कभी भी अपनी माँ को नहीं भूलता है मातृभाषा में ही मनुष्य अपनी संस्कृति और सभ्यता का विकास कर सकता है |

व्यक्ति की जन्म भूमि ही उसकी भाषा का उद्गम स्थल है। माता के मुख से बोली जाने वाली भाषा तथा घर परिवार से सीखी जाने वाली भाषा मातृ भाषा कहलाती है। भारत की मातृ सस्कृति के ही समान संवर्धित होने के कारण मातृभाषा की संज्ञा दी गई। भाषा मानव की उत्तरोत्तर प्रगति का मूल आधार है। मातृभाषा के आधार से मनुष्य का विकास संभव है और भाषा समाज के सपर्क में आने पर विकसित होती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व मातृभाषा से विकसित होता है हर एक मनुष्य किसी न किसी मातृभाषा से जुड़ा होता है। मातृभाषा मनुष्य के जीवन को गति देती है।

जन्म के पश्चात शिशु जब भाषा परिवेश में वाणी का आदान प्रदान करता है वही उसकी मातृभाषा होगी। बच्चे की बोली अगर उपभाषा है तो उसकी मातृभाषा उस भाषा की जन्मदात्री भाषा होगी। जैसे जैसे बच्चे का विकास होता है वह मातृभाषा में ही भाव की अभिव्यक्ति करता है। जब वह शिक्षालय जाता है तो वह प्रारंभिक भाषा सीखता है। वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में गतिशील रहने के लिये मातृभाषा को अपनाता है |

मनुष्य अपने जीवन को गतिशील बनाने के लिये जिस मूलभाषा या उसका प्रारम्भिक भाषा को अपनाता है। उसे मातृभाषा कहते हैं। जिस भाषा में वह शिक्षा ग्रहण करता है वह उसकी प्रारंम्भिक भाषा होगी। मातृभाषा मनुष्य को सुसंस्कृत बना देती है। सब से प्रेम व्यवहार कर मिल जुल कर रहना सिखाती हैंऔर बड़ी से बड़ी लड़ाई लड़ने को भी सिखा देती है। भारत के कोने कोने में रहने वाला हर व्यक्ति आजादी की लड़ाई में शामिल था। आजाद भारत को देखने का भारतीयों का सपना था।

सुभाष चंद्र बोस पश्चिम बंगाल के रहने वाले थे, परंतु उन्होंने पूरे देश का भ्रमण कर यह जान लिया था कि आजादी का नारा हिंदी में देना अधिक श्रेयस्कर है जो भारतीयों की अपनी भाषा है उन्होंने बहुत ही ओजस्वी नारा दिया था ---"तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"

बाल गंगाधर तिलक महाराष्ट्र के निवासी थे उनकी भाषा मराठी थी, परंतु उन्होंने हिंदी में नारा दिया था "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

महात्मा गांधी गुजराती थे उन्होंने आजादी के आंदोलन में हिंदी भाषा में नारा दिया "अंग्रेजों भारत छोड़ो" " करो या मरो " " आंख के बदले आंख पूरी दुनिया को अंधा बना देगी ।"

नागपुर के धरमपेठ महाविद्यालय के एक कार्यक्रम में व्याख्यान के बाद भारत के पूर्व राष्ट्रपति एवं सुविख्यात वैज्ञानिक डॉ अब्दुल कलाम आजाद से एक छात्र ने प्रश्न किया कि आप सफल वैज्ञानिक कैसे बने ? तब डॉक्टर कलाम ने उत्तर दिया था- "कि मैंने 12वीं तक विज्ञान, गणित सहित संपूर्ण शिक्षा मातृभाषा (तमिल) में ली है।" इस शिक्षा नीति में ई लर्निंग, ऑनलाइन शिक्षण को बढ़ावा दिया गया है तथा ई लर्निंग स्थानीय भाषा में पढ़ाया जाएगा।

निष्कर्ष :

भारत के ज्ञान वर्धन के लिए अपनी भाषा में ही ज्ञान देने से यह प्रयास सार्थक हो सकता है । मातृभाषा में ही रचनात्मकता, सृजनात्मकता, शोध और अनुसंधान संभव है। जिस देश की अपनी भाषा का कोई सम्मान नहीं है। उसे विश्व में सम्मान नहीं मिलता है। अतः देश के लोगों का यह कर्तव्य है कि उन्हें अपनी भाषा के प्रति लोगों को जागरूक करें और प्रेरित करें।

छात्र मातृभाषा के सहारे प्राकृतिक रूप से ज्ञानार्जन कर सकता है और जीवन की गति को बढ़ा सकता है। ज्ञान के उच्चतर सीढ़ी तक पहुंचना मातृभाषा के द्वारा आसान हो जाता है। व्यक्ति के लिए देश-विदेश की भाषाओं का समग्र ज्ञान संचित है उसे वह परवर्ती शिक्षा के माध्यम से कभी भी ग्रहण कर सकता है। और तो और उसे अपनी मातृभाषा में व्यवहार का लाभ मिलेगा तथा परिणाम भी सकारात्मक होगा ।

आधुनिक भारत में डिजिटल इंडिया, समर्थ इंडिया, सशक्त इंडिया अपने अनेक रूपों में विकसित हो रहा है ऐसे में शिक्षा एवं संस्कारों को समुचित रूप देने के लिए मातृभाषा नितांत आवश्यक है। मातृभाषा को शैक्षिक और व्यावहारिक दोनों तरह से भारतीय युवाओं को व्यवहार में लाना होगा तभी इसके परिणाम सार्थक होंगे।

सन्दर्भ सूची:

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 - परिवर्तनकारी सुधार - डॉ हरीश कुमार यादव
2. निज भाषा - भारतेन्दु हरिश्चंद्रमातृभूमि के लिए - डॉ रमेश पोखरियाल
3. भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी
4. हिंदी भाषा सर्वेक्षण - डॉ मुंशी राम शर्मा
5. प्रयोजनमूलक हिंदी - डॉ श्रीमती आशा मोहन
6. मातृभूमि के लिए - डॉक्टर रमेश पोखरियाल

मो० नं० : 9140290832

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 104-107
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में लोकगीत : एक सांस्कृतिक और सामाजिक विमर्श

दिव्या रानी
शोधार्थी,
राँची विश्वविद्यालय, राँची

हिन्दी उपन्यासों में लोकगीतों का समावेश एक अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति से उपन्यासों की कथा अत्यधिक वास्तविक, विश्वसनीय और जीवंत हो जाती है। लोकगीतों के चित्रण से हमें न केवल ग्रामीण जीवन की वास्तविक झांकी दिखाई देती है, बल्कि लोक संस्कृति की जड़ों को साहित्य के माध्यम से सुरक्षित करने का यह एक अनूठा प्रयोग है। लोकगीतों के माध्यम से हिन्दी उपन्यास न केवल साहित्यिक रूप से सशक्त और समृद्ध हुआ है, बल्कि सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने वाले माध्यम के रूप में भी उसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

लोकगीत मानव समाज की उस सांस्कृतिक स्मृति का अंग है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी शब्द, लय, भाव और प्रतीकों के रूप में सुरक्षित रहती है। लोकगीत वाचिक परंपरा के संवाहक होते हैं। लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है। वे एक समाज की आत्मा, उसकी संस्कृति और सामूहिक चेतना के स्वर होते हैं। विशेषकर आदिवासी समाज में लोकगीतों की भूमिका वहाँ की संस्कृति, सामूहिकता और जन चेतना के रूप में रही है। लोकगीत जहाँ समाज की आत्मा हैं, वहीं साहित्य उसका दर्पण है। साहित्य को जनमानस की चेतना से जोड़ने के लिए ही साहित्यकार लोकगीतों का प्रयोग करते हैं। ऐसे ही साहित्यकारों में झारखंड के कथाकार 'राकेश कुमार सिंह' का नाम महत्वपूर्ण है।

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' इसी परंपरा को आधार बनाकर एक ऐसा साहित्यिक आख्यान रचता है, जिसमें लोकगीतों के माध्यम से आदिवासी समाज का संपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक परिदृश्य उभर कर सामने आता है। यह उपन्यास समकालीन हिन्दी साहित्य का एक ऐसा सशक्त उपन्यास है, जो हाशिए पर छूट गए आदिवासी समाज की लोक संस्कृति और संघर्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसमें आदिवासी समाज के लोकगीतों की उपस्थिति है, जो न केवल आदिवासियों की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रस्तुत होती है, बल्कि उपन्यास के पात्रों के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना और विद्रोह के रूप में भी प्रस्तुत होती है।

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' 1855 के सन्ताल हूल पर आधारित है और इसमें आदिवासी समाज के लोकजीवन का भी चित्रण है। इस उपन्यास में एक ओर सन्ताल युवक हारिल मुरमू और उरांव युवती लाली के प्रेम का वर्णन है, तो दूसरी ओर जल, जंगल और जमीन से बेदखल किए जाने के कारण अंग्रेजी

हुकूमत, जमींदारों एवं साहूकारों के खिलाफ सिदो-कान्हू जैसे लड़ाकों की अगुआई में सन्ताल हूल का का भी जिक्र है। उपन्यास की शुरुआत ही सन्ताल जाति की उत्पत्ति से संबंधित एक लोकगीत से होती है -

"हिहिड़ी-पिपिड़ी रेबोन जानाम लेन
खोज कामान रेबोन खोज लेन
हरारता बुरू रेबोन खोजलेन
सासाड बेड़ा रेबोन जात लेना"[1]

यह गीत सन्ताल जाति की उत्पत्ति की कथा से जुड़ा हुआ है। यह गीत एक मिथकीय आख्यान को जीवित करता है, जो हांस-हांसिल पक्षियों के रूपक में उनके जीवन का उद्गम बिंबित करता है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम और विरह के गीत, विभिन्न त्योहारों एवं रीति-रिवाजों से संबंधित गीत तथा जनचेतना लाने वाले विद्रोह के गीतों का भी वर्णन किया है। उरांवों के युवागृह 'धुमकुड़िया' में युवक गीत गा रहे थे –

"यदि मुझसे प्रेम है तो
सिसकी क्यों पारती हो?
दे मारो न मुझ पर
कदम्ब का फूल....."[2]

इस गीत में कदम्ब का फूल प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है, जो आदिवासी प्रेम संस्कृति की अभिव्यक्ति है, यह गीत युवक-युवती के पारंपरिक प्रणय भावना को दर्शाता है। उपन्यास में विरह-गीत भी द्रष्टव्य होते हैं -

"नाले घाड़कारे सीसा रारे
दोन आते चियो नालोम रागा
नियं मिनाँय मोर पियो नालन पियोज
कुँअरी मौन पियो डाले-डाले।"[3]

इस गीत में वियोग और मन की वेदना को अभिव्यक्त किया गया है। यहां विरहिणी पपीहे को बोलने से मना करती है, क्योंकि उसकी पी-पी की ध्वनि सुनकर उसकी विरह-वेदना और बढ़ जाती है।

लोकगीत में जनजीवन के सभी पक्षों का दर्शन होता है। आदिवासी समाज प्रकृति में ही रचा-बसा रहता है। यह समाज वन, पर्वत और नदियों सभी को पूजने वाला समाज है। सन्ताल समाज के 'पहाड़ पूजा' का भी जिक्र उपन्यास में हुआ है, जिसमें वन का पर्वत से परिणय कराया जाता है, जिससे बुरूबोंगा (पहाड़ के देवता) प्रसन्न होते हैं। इस अवसर पर स्त्रियाँ गीत गा रहीं हैं –

"हारा एना झर वर, रास्का माने सरबर
हारा हरम हातव लागीत, गाते गमाँगी में ऽऽऽ
हारा हल्लू हातव लागी
गाते गेमाँ मेरे चाँदबंगा
बुदानापी लेकाइन पूँज राया उरीज हेऽऽऽ"[4]

सन्ताल समाज में हर मौसम का अपना राग, रंग और त्योहार होता है। ऐसे ही चढ़ते आषाढ़ की पहली बारिश होते हीं आदिवासी समाज खेतों में बुआई करने की तैयारी शुरू कर देता है, परंतु हल उतारने से पहले जाहेर आयो (अन्न-धन के देवता) की पूजा की जाती है। इस अवसर पर सन्ताल युवक माँदल की थाप पर गुनगुनाने लगते हैं -

"अतांग दा-दिंग...धातिंग-धातिंग
धरती कएतम इंग

दात्ते तेतांग लगाई तिंग
धरती अबोबा दा केतान मेना आ
दात्ते धरती ताबो सोना रेऽऽऽ"[5]

यह गीत वर्षा के आगमन, धरती की उर्वरता और जीवन की प्रार्थना से जुड़ा हुआ है। आदिवासी समाज का धरती के प्रति श्रद्धा और सम्मान इसमें स्पष्ट झलकता है। उपन्यास में लेखक ने सन्तालों के प्रकृति पर्व 'बाहा पर्व' का जिक्र किया है, जिसे उरांव लोग 'सरहुल' के नाम से मनाते हैं। इस त्योहार में आदिवासी समाज अपने सरना स्थल में देवता को महुआ तथा सखुआ के फूल अर्पित करते हैं। बाघामुण्डी गाँव में बाहा पर्व के अवसर पर अखरा में सभी स्त्री-पुरुष माँदल की थाप पर थिरकते हुए नजर आते हैं -

"पुरवा होय द पुरुय-पुरुय
पछिया होय द हालाय-हालाय
मोंड़े को-दो मोंड़े बोयला
तुरुय को-दो तुरुय बोयला
ने तापे मातेवा सुनुम सेनुर तिलाय तापे मनेवा
आय नोम काजार..."[6]

यह गीत बसंत ऋतु में पेड़-पौधे, प्रकृति और देवताओं की आराधना के समय गाया जाता है। इन गीतों का गहरा संबंध नवसृजन, जीवन और उत्सव से है।

आदिवासी समाज का एक महत्वपूर्ण पर्व है सेन्द्रा, जो प्रकृति और शिकार से जुड़ा हुआ है। यह पर्व आदिवासी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है, पहले इसमें जंगली जानवरों का शिकार किया जाता था, परंतु अब जंगली जानवरों की घटती संख्या को देखकर इसे सांकेतिक रूप में मनाया जाता है। सेन्द्रा पर्व के अवसर पर आदिवासी समुदाय के लोग पारंपरिक हथियारों के साथ इकट्ठा होते हैं और देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। उपन्यास में किशोर सेन्द्रा पर्व का गीत भी गाते हुए दिखते हैं -

"धिधितंग धिकतंग...धिधितंग धिकतंग
सरताम कापीताम, सरताम कापीताम
सरताम कापीताम, सबताम
देदांग बिर बोन, देदांग बिर बोन
देदांग बिर बोन, बादुरी दाराम।"[7]

उपन्यास में लेखक गीतों के माध्यम से नारी शक्ति का भी जिक्र करते हैं। इसमें उराँव महिलाओं के 'जनीशिकार' पर्व का वर्णन आया है। यह त्योहार उराँव महिलाओं की वीरता और साहस का प्रतीक है। उराँवों के किले रोहतास गढ़ के पतन के प्रतिशोध में हर बारहवें वर्ष का फाल्गुन 'जनीशिकार' का महीना होता है। इस समय के लोकगीतों में उराँव स्त्रियों के गौरव, प्रतिरोध और क्रोध की भावना स्पष्ट झलकती है -

"ओरे छूँ गंगा, पारे छूँ जमुना, धारे-धारे तुरका आवैं रेऽऽऽ
हाथा में तरवारे, खाँदा में बन्दूकाँ, धारे-धारे तुरका आवैं रे।
गाछा केरा मैना लिरो झोरा कान्दाय
नदी तीरे-तीरे घोड़ा दाड़य रेऽऽऽ"[8]

यह सिर्फ गीत नहीं, बल्कि संघर्ष की घोषणा है। यह गीत हमें बताता है कि जब शोषण और अन्याय चरम पर होता है, तब आदिवासी चेतना हथियार उठाती है। प्रतिरोध की यह भावना आदिवासी पुरूषों में भी दिखाई पड़ती

है। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जब सिदो मुरमू विद्रोह का बिगुल फूँकता है, तब एक विशाल जनसमूह उसके साथ खड़ी दिखाई देती है और उनके लोकगीतों में विद्रोह का स्वर सुनाई देता है -

"मेरा निया नुरूनिया, टिण्डानिया मिटानिया
हाय रे हाय, मापक गपच दो
नुरिच नांगड़, गई काड़ा नाचेल लागित
पाचेल लागेत सेदाय लेका बेताबेतेत्
जाम रुयोड़ लागित
तउबे दो-बोन हूल गेया हो..."[9]

इस गीत में आदिवासी चेतना का सशक्त रूप दिखाई पड़ता है। जो स्वतंत्रता और अधिकार की मांग करता है। सिदो के आह्वान पर सन्ताल युवक हूल के लिए तैयार हो चुके थे और हूल-हूल की हांक शुरू हो गई थी -

"चिदा दो रे कानू
हुल हुलेम मेरभेन
जीत भाई को लागित
मायामेते जुमेन
वेपारिया कोबड़ों
विथुम दो-को हू-ही।"[10]

यह अंश उस क्षण का चित्रण करता है, जब थके-हारे लोग एकत्र होकर लोकगीतों के माध्यम से अपने अतीत को याद करते हैं – विशेषकर सिदो-कान्हू जैसे नायकों को, जो उनके संघर्ष और अस्मिता के प्रतीक हैं। यह एक सांस्कृतिक स्मृति, सामूहिक चेतना और संघर्ष की विरासत का गहन चित्रण है।

उपन्यास में प्रस्तुत ये लोकगीत कथावस्तु को न केवल गहराते हैं, बल्कि साहित्य को जनमानस की चेतना से जोड़ते हैं। यह उपन्यास न केवल आदिवासी समाज की पीड़ा और विस्थापन की कथा कहता है, बल्कि लोकगीतों के माध्यम से उस समाज की सांस्कृतिक जड़ों, सामूहिकता और प्रतिरोध की चेतना को भी उजागर करता है। राकेश कुमार सिंह का यह उपन्यास केवल एक कथा नहीं, बल्कि लोकगीतों के माध्यम से रचा गया संस्कृति का जीवंत हस्ताक्षर है।

संदर्भ - सूची

1. सिंह राकेश कुमार, जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या - 17
2. वही, पृष्ठ संख्या - 93
3. वही, पृष्ठ संख्या - 219
4. वही, पृष्ठ संख्या - 82
5. वही, पृष्ठ संख्या - 116
6. वही, पृष्ठ संख्या - 469
7. वही, पृष्ठ संख्या - 64
8. वही, पृष्ठ संख्या - 31
9. वही, पृष्ठ संख्या - 123
10. वही, पृष्ठ संख्या – 278

संपर्क संख्या – 9031286544 इमेल - divyarani072@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 108-112
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

देवगायक का संघर्षमय जीवन

डॉ . कृष्ण कान्त भट्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर
भाषा विभाग, सेन्ट विन्सेट पल्लोटी कालेज बंगलुरू

आज समाज में एक वर्ग ऐसा है जिसके पास अपना कहने के लिए कोई भी नहीं है ।परिवार उन्हें समाज के भय के कारण ऐसे समय में त्याग देता है जब उन्हें अपने परिवार की बहुत आवश्यकता होती हैं। यदि माता पिता सिर्फ समाज से भय मुक्ति होकर अपने तृतीय लिंगी बच्चो का साथ देने लगे तो भेदभाव पूर्ण व्यवहारिकता पर अंकुश लगाया जा सकता है ।यह पहल मानवीयता को न्याय दिलाने के लिए सहायक हो सकती है।

एक किन्नर अपना जीवन घुटन में जीने के लिए किस तरह मजबूर हो जाता है जब उसके अपने ही उसके साथ छल करने लगते हैं ।उसे गर्त मे अपनी झूठी शान के लिए झोक देते है। किन्नर जुगनू का जन्म ग्रामीण अंचल के क्षत्रिय परिवार में हुआ था। बचपन में उसे यह पता ही नही था कि वह क्या है ? परिवार के सभी लोग उसे प्यार करते थे। परंतु उसके पिता का व्यवहार अच्छा नही था। उनका असमान्य व्यवहार नफरत का संकेत था , जिसे जुगनू ने महसूस किया कि वह उससे हर समय नफरत करते हैं। लेकिन वह नफरत का कारण न समझ सकी।

धीरे-धीरे जब वह थोड़ी बड़ी हुई उसमें अन्य बच्चों की अपेक्षा शारीरिक बनावट में अंतर आने लगा। उसके परिवार को असम्माननीय दृष्टि से देखा जाने लगा। सामाजिक स्तर पर भी लोग उसके परिवार वालों को हेय दृष्टि से देखने लगे। वह घर से बाहर खेलने जाने लगी तो कभी-कभी बच्चे आपस में खेलते -खेलते उसके भाई को अभद्र शब्दों से सम्बोधित कर पुकारते थे , इस कारण उसका भाई क्रोधित हो जाता था। यह सोचता कि उसे इस तरह के व्यवहार की समाज से अपेक्षा नहीं थी। लोग उसके साथ इस तरह का अमर्यादित व्यवहार क्यों करते हैं ? जब वह घर वापस आता तो उसके मन में क्रोध ,ईर्षा और द्वेष की प्रचण्ड ज्वाला धधकने लगतीं थी। वह अपनी बहन के प्रति मन में लज्जा का अनुभव करता था।

जुगनू अपने भाई से बहुत छोटी थी वह कभी समझ नहीं पाती कि वह क्या करे जिससे उसका भाई खुश रह सके ।किन्नर बच्चे के लिए परिवार को भी अपमानित होना पड़ता है ।क्या किन्नर को सामान्य जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं ? यह कैसी सामाजिक विडंबना है? मुझे लगता है कि हम, आप और समाज पूर्णरूप से इस कृत्य के लिए जिम्मेदार है। भगवान की बनाई कृति को इस तरह से असामान्य अपमानित दृष्टिकोण से देखना कहां तक उचित है ।

कानून भी किन्नरों के संबंध में बहुत ही कम ठोस निर्णय ले पाया है जिससे कि समाज में उन्हें समान हक और समान जिम्मेदारी मिल सके। उन्हें अपना जीवन सामान्य तौर पर जीने का अधिकार मिलना चाहिए। समाज में स्त्री पुरुष और किन्नर सभी एक ईश्वर की संतान है उसने सभी को जीने का अधिकार दिया है फिर समाज इन अधिकारों में मतभेद कर ऊंच नीच का भेद कर शिक्षा के अधिकार , स्वतंत्रता के अधिकार ,सम्मान के अधिकार को क्यों कम कर रहा है। अच्छी तरीके से जीवन यापन करने का अधिकार हर नागरिक को है फिर इससे बंचित क्यों ?

जुगनू के जीवन में एक के बाद अनेक परेशानियों का दौर आने लगा। पिता एक ट्रक ड्राइवर थे। इस वजह से वह ट्रक लेकर कई महीनो के लिए बाहर चले जाते थे। वह महीनों बाहर रहते थे, ,बच्चे उनका इंतजार करते थे कि मेरे पिता घर आएंगे मेरे लिए कुछ चीज लाएंगे ,खुशियां ही खुशियां होगी अपने कोमल मन में हृदयस्पर्शी सपने देखा करते थे। जुगनू के पिता में एक बहुत बड़ी बीमारी थी , कि वह शराबी थे ,शराब पीने के बहुत आदी थे।जब वह घर वापस लौट के आते थे , बच्चों में उनका भय व्याप्त रहता था । एक दिन अचानक उनके पिता घर लौटे उस दिन जुगनू और सभी बच्चे घर के आंगन में आपस मे मिल जुल कर खेल रहे थे , माहौल बहुत खुशनुमा था। बच्चों को अचानक दरवाजे से आवाज सुनाई दी
उन्होंने दरवाजे के झिरीं से झांक कर देखा, यह आवाज उनके पिताजी की थी।सभी बच्चे भय से सहम गये और सन्न रह गए।

यह क्या हुआ ? दरवाजा खुलते ही पिता ने जुगनू को लड़की के कपड़ों में देख लिया , वह क्रोध से आग बबूला हो गए। पिता ने बिना सोचे समझे उसी वक्त उसकी पिटाई शुरू कर दी। उसे इतना पीटा कि उसकी जान निकलने वाली हो गई। उसकी सहायता के लिए कोई आगे आने वाला नहीं था। वह दर्द से कराह रही , उसका ऐसा हाल देखकर उसकी मां दौड़कर उसके पास आई और जुगनू के ऊपर लेट गई। पिता लात बेल्ट से पिटाई करते रहे :-
" वह मुझे बचाते हुए स्वयं कितनी देर तक पिटती रही पता नहीं मैं तो कब की बेसुध हो गई हो चुकी थी ,, 1

जुगनू के पिता इसी बात से शांत नहीं हुए उन्होंने जुगनू को जान से मारने के उद्देश्य से पास के कमरे में जिसमें कंडे भरे जाते थे एक रस्सी से फांसी का फंदा तैयार किया उस पर जुगनू को लटका दिया।
" मेरी गर्दन रसी से फंसी थी।गर्दन में भीषण खिंचाव और भीषण दर्द हो रहा था मुंह से सारी शक्ति से चीखने पर भी आवाज नहीं निकल रही थी।" 2

जुगनू किसी तरह से फांसी के फंदे से बच जाती है, उसने सोचा कि ऐसी जिंदगी जीने से क्या लाभ ? उसने निश्चय किया ऐसी जिंदगी से तो अच्छा है कि मै कुएं में कूद करके आत्महत्या कर अपनी जान दे दूं। वह अपने गांव के नजदीक एक कुएं पर आत्महत्या करने के उद्देश्य से जाती है। वहां पर उसने देखा है कि आसपास गाँव के बहुत सारे लोग खड़े हैं। वह कुएं में कूदने के इरादे में असफल हो जाती है।

अतः यहां पर भी उसकी मृत्यु उससे दो कोस की दूरी बना के चली जाती है। अगले ही पल उसके मन में विचार आया कि क्यों न घर से निकल कर ट्रेन के आगे कूद कर आत्महत्या कर लू। यहां पर भी वह किसी प्रकार से बच जाती है। वह बार-बार कूदने की कोशिश करती है तब तक ट्रेन निकल जाती है। इस प्रकार से आत्मग्लानि से भरी हुई जुगनू , समाज में सम्मान न मिलने के कारण . जीवन को आत्महत्या के द्वारा खत्म करने की सोचती है।

हमारे समाजिक परिवेश में ऐसा क्यों हो रहा है ? क्या इस तरह की भेदभाव पूर्ण भावना बहुत समय से चल रही है? इसको दूर करने के लिए क्या करना होगा। वह रेलवे स्टेशन बहराजमऊ से उन्नाव के लिए प्रस्थान करतीं हैं।

ट्रेन में उसे एक प्रौण व्यक्ति मिलता है जो उसे बीस रुपये देने का प्रयास करता है। रूपये देने का उद्देश्य क्या था ?वह प्रौण उसके साथ अनैतिक संबंध स्थापित करना चाहता है। यहां देखने और समझना में एक बहुत बड़ा अदृश्य अंतर स्पष्ट दिखाई देता है कि एक तरफ लोग समाज में सम्मान का मुखौटा ओढ़े रहते हैं और दूसरी तरफ व्यभिचारी योजनाओं में संलिप्त रहते हैं। यहां समाज का दोहरा चेहरा देखने को मिलता है।

जुगनू किसी तरह प्रौण व्यक्ति से बचकर ट्रेन से निकल के प्लेटफार्म पर लगी कुर्सियों पर बैठ जाती है। अकेले बैठा देख एक पुलिस वाला उसके साथ अभद्र भाषा का प्रयोग करते हुए पूछता है। कहां से आया है ? लड़के किधर रहता है ? कहां जाएगा ?क्यों बैठा है वह भी उसको देखते- देखते उसकी तरफ घूरने लगता है।

उसकी आंखों में अजीब सी हरकत दिखाई देती है। वह धीरे-धीरे अपने डंडे से उसके शरीर पर धक्का मारना शुरू कर देता है। पुलिस वाला कहता है।

" चल उठ' मैं नहीं उसने बेरहमी से मेरी जाघों के बीच डंडा लगा दिया मैं तकलीफ से बिल- बिला उठीं मेरी आंखों में आंसू आ गए ,,3

पुलिसवाला अधेड़ उम्र का व्यक्ति इस छोटी उम्र के बच्चे के प्रति व्यभिचार प्रवृत्ति को दिखाता है। क्या वह अपने घर में भी इसी तरह के व्यवहार को अपेक्षित करेगा जो रक्षक है ,वही भक्षक है पुलिस वाला अधेड़ उम्र का था। एक बच्ची के प्रति उसके मन में इस तरह की भावना ने जन्म कैसे लिया। यह सोचने का विषय है क्या खाकी वाले लोग भी इस तरह के हो सकते हैं। हम उम्मीद करते हैं कि हमारी सुरक्षा हो। सुरक्षा करने वाले भक्षक बन जाए तब क्या होगा ? जुगुनू ने एक योजना बनाई ।रेलवे लाइन के नल के पानी से नहाते हुए लड़के के पास मे रखे कपडों चुराया। उसने चुपके से चोरी किए हुए लड़के के कपड़े पहन लिए। अब तो वह देखती है कि :-

" लड़के का रूप धारण करते ही मैने देखा कि मेरी ओर कोई भी नहीं देख रहा था।,,4

जुगनू कई दिनों से भूखी थी, अतः उसने ट्रेन की पटरी पर फेके गए खाने से अपनी भूख मिठाई। झूठे दोने चाटे " दूसरों से खाना मांगने की चेष्टा की , जुगनू सोच रही थी कि वह मेहनत कर अपना पेट भरेगी। इसलिए उसने स्टेशन पर कुली का काम करना शुरू कर दिया ,लेकिन कमजोरी के कारण गिर पड़ी ,इस बार उसकी एक अनवर नामक लड़के के साथ मुलाकात होती है ' वह प्लेटफार्म पर दातुन बेचने का काम करता है। कुछ समय तक वह उसके साथ दातुन बेचने का काम करती रही लेकिन अचानक ट्रेन से चोरी कर भागते समय अनवर की मौत हो गई अतः जुगनू को दूसरा काम तलाशने के लिए चाय की दुकान पर काम करना पड़ा।

"मेरा काम सुबह भट्टी सुलगाना और दिन भर चाय समोसा बिस्किट परोसने का था " 5

चाय वाले पंडित जी की दुकान से काम छोड़कर जुगुनू अप्सरा टॉकीज कानपुर में काम करने लगती है। वहां उसने फिल्म प्रोजेक्टर चलाना सीख लिया। फिल्म के चार शो होते थे ' इसी वजह से उसने फिल्मी अंदाज में बात करने का तरीका सीख लिया

" मैं फिल्मी अंदाज में कभी हीरो तो कभी हीरोइन बनी झूमती इठलाती और अपने आप में मग्न रहती थी " 6

प्रमोद नाम का एक व्यक्ति चौकीदारी का काम करता था। वह कामी प्रवृत्ति का था। वह जुगनू पर निगाह बनाए था ,वह देखता है कि यह लड़का है या लड़की है। एक दिन उसने जुगनू के साथ वेजाह हरकत करने की कोशिश की। जुगनू ने उसको चेतावनी देते हुए कहा:-

" देख प्रमोद तू अपना काम किया कर,,7

जुगनू अप्सरा टॉकीज से काम छोड़कर पुनः रेलवे स्टेशन पर आ जाती है ।रेलवे स्टेशन पर उसे एक गिरोह के लोग पकड़ कर कैद कर लेते है ,जो बच्चो को भूखा रखकर भीख मांगने के काम मे लगातीं है।

" भूख क्या-क्या समझौते कर लेती है यही पता चला ,,8

भीख मंगवाने वाले गिरोह को पकड़ने के लिए पुलिस की रेड पड़ती है। इसमें गिरोह का सरगना पकड़ा जाता है। बच्चों को उनके माता-पिता के पास भेज दिया जाता है। जुगनू को लेने उसकी मां आती है। वह जुगुनू को लेकर अपनी बहन के घर जाती है। वह भी अपनी मौसी से भेट करने उनके घर जाती हैं ।वहां एक रात दोनो विश्राम करते हैं। अगले दिन मौसी से मां ने कहा कि बहन तुम जुगनू को अपने पास कुछ समय के लिए रख लो। इस बात पर उन्हें यह अपशब्द सुनने को मिलते है।

" जब तुम जुगनू को नही रख सकी तो मैं कैसे इसे अपने पास रख सकूंगी तुम्हारें इस हिजड़े जुगनू को",9

जुगनू लखनऊ जाकर अपना काम शुरू करना चाहती है ।क्योंकि वह एक अच्छी होनहार कलाकार है। लेकिन यहां किन्नरों द्वारा पकड़ ली जाती है। उसे किन्नरों के काम करने के तरीके सिखाने के लिए किन्नर गुरू जबर्दस्ती से पेश आते हैं ।वह किन्नरों का नाच गाने और बधाई देने काम नहीं करना चाहती। वह सम्मान सहित जिंदगी जीना चाहती है। लेकिन मजबूरी में उसे यह काम सीखना पड़ा। अब वह बधाई टोली में जाने लगी। उसे पहले दिन बधाई में जो धन मिला उसने आकर गुरुमाई को सौंप दिया। गुरूमाई ने पास बुलाकर:-

" मेरा माथा चूमा और हाथ में सौ का नोट पकड़ाते हुए कहा ले रख शगुन के है तेरी पहली कमाई,, 10

गुरुमाई के डेरे में नशा व्यभिचार होता था इस हालत में जुगनू का अधिक समय तक डेरे में रहना मुश्किल था। किन्नर होने के बाबजूद वह सम्मानित जीवन मेहतन और कला से जीना चाहती थी। किन्नर बहुत मजबूर भी होते हैं और उनके गुरु इस तरह के कार्यो में लिप्त होते हैं। वह अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए क्या- क्या काम करते हैं ।जो अस्मिता पर कलंक के समान है। किन्नर गुरु चाहती थी कि जुगनू भी औरो की तरह के व्यसन से जुड़ जाए। चाय की दुकान पर पप्पू नमक गुंडे ने एक दिन उसके साथ अभद्रता का व्यवहार करते हुए उसकी कमर पर चिकोटी से बहुत तेज काट लिया। उसने तुरंत एक जोरदार थप्पड़ पप्पू के गाल पर रसीद कर दिया। इस घटना में पप्पू ने अपना अपमान समझकर जुगनू के कपड़े फाड़ डाले और बहुत पिटाई भी की। पिटाई के कारण उसे बहुत चोटें आयीं। वह पूरे छै दिन अस्पताल में रही। यहां उसके हालात को देखने न तो किन्नर डेरे से गुरु माई आयी और न ही कोई किन्नर आया। इस घटना ने जुगनू के मन मे दृढ़ इच्छाशक्ति पैदा हुई। उसने फैसला किया कि गुरुमाई ने मुझे इस गलत रास्ते में सनलिप्त होने के लिए पिटवाया है। मैं इस गुरुमाई से पानी मंगा कर पियूंगी ।और पप्पू गुंडे को सबक सिखाऊंगी। किन्नर समाज में फैली बुराइयों को भी दूर करने का प्रयास करूंगी। जुगनू किन्नरों के डेरे को छोड़कर वापस कानपुर आ जाती है और रात दिन पप्पू नामक गुंडे से बदला लेने की योजना बनाने मे लगती है।

" मेरा मन रात दिन पप्पू से बदला लेने के लिए तड़पता रहता था ,,1 1

उसने अपने शरीरिक सौष्ठव को मजबूत बनाने के लिए रात दिन मेहनत की। अपने आपको शक्तिशाली और मजबूत बनाया। एक दिन उसने लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। यहां उसकी मुलाकात एक सज्जन से होती है ,जो उसे आर्केस्ट्रा में काम दिलाते है ।अच्छे प्रदर्शन के कारण कार्यक्रम की समाप्ति पर उसे बहुत ही प्रशंसा मिलती है प्रशंसा के कारण वह बहुत खुश हैं। इस सफलता से वह फूली नहीं समाती है।

एक दिन पप्पू नामक गुंडा बधाई टोली के आगे जाते जुगनू को दिखाई देता है ।वह उसको साईकिल से गिरा देती है । पप्पू गुंडा ऑटो चालकअशोक का गला पकड़ता है , उसे ऑटो से बाहर निकाल कर बुरी तरह दबाने लगता है। इसी दौरान किन्नर जुगनू ऑटो से निकल कर एक शेरनी की तरह उसके ऊपर प्रहार करती है ।

" मैंने आव देखा ना ताव टेंपो से उतरकर पप्पू के पीछे से आकर उसकी गर्दन पकड़ कर जो लात की ठोकर उसकी जांघों के बीच जमाई वह पहले ही बार में बिलबिला उठा ,फिर उस पर अशोक और मैं लात घूसो से बुरी तरह से पिल पड़े "12

जुगनूँ ने पप्पू गुंडे को ऐसा सबक सिखाया कि उसे छठी का दूध याद आ गया ।पीलू दादा की पिटाई से जुगनू की दबंग छवि का प्रचार हो गया ।वह स्वाभिमान से अपने जीवन को जीने लगी। लेकिन जुगनू से पायल गुरु बनने के अपने जीवन सफर में बचपन से लेकर अबतक अपमान को खून के घूंट की तरह पिया है ।एक किन्नर के प्रति अन्याय संवेदनशीलता और व्यवहार के साथ-साथ उनके स्वाभिमानी जीवन को कलंकित करने वाली बातें समाज में हो रही है।

समाज में किन्नरो के प्रति व्याप्त दूर्व्यवहार नहीं होना चाहिए ।उन्हें भी समाज में सम्मान से जीवन जीने का अधिकार होना चाहिए। आज के समय में किन्नर समाज बहुत परेशानी से गुजर रहा हैं ।वह अपनी आवश्यकता की चीजों के लिए सड़कों पर निकलकर लोगों से भीख मांग कर गुजारा कर रहे हैं। सरकार और समाज दोनों की जिम्मेदारी है कि उनके अधिकारों की रक्षा करें और कल्याणकारी योजनाओं को लागू करे । उन्हें सम्मान से जीने के लिए हर प्रकार का हुनर सिखाने के कार्यक्रम चलायें। उन्हें मुख्य धारा से जोड़े। विश्व भर की सरकारे और समाज के लोग मिलकर योजनाओं को कार्यान्वित करेंगे तो अच्छे परिणाम मिलेंगे ।

सन्दर्भ

1. मैं पायल ' अमन प्रकाशन कानपुर पृष्ठ संख्या 36
2. मैं पायल ' अमन प्रकाशन कानपुर पृष्ठ संख्या 36
3. मैं पायल ' अमन प्रकाशन कानपुर पृष्ठ संख्या 37
4. वही, पृष्ठ संख्या 49
5. वही, पृष्ठ संख्या 52
6. वही, पृष्ठ संख्या 69
7. वही, पृष्ठ संख्या 73
8. वही, पृष्ठ संख्या 74
9. वही, पृष्ठ संख्या 80
10. वहीं, पृष्ठ संख्या 100
11. वही, पृष्ठ संख्या 111
12. वही, पृष्ठ संख्या115

Krishna.bhatt0164@gmai
9019595755

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 113-116
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झारखण्ड की संस्कृति से लोक को जोड़ती जसिंता केरकेट्टा की कविताएँ

ईशप्रिया किंडो
असिस्टेंट प्रोफेसर,
देवघर कॉलेज, देवघर

सार संक्षेप – कविता मानव हृदय की संचित पूंजी है। जनमानस के हृदय की अनुभूति जब शब्दों की माला में पिरोयी जाती है तब कविता जन्म लेती है। कविता की सार्थकता इसी में है कि वह सर्वजन हिताय और सर्वजनसुखाय की भावना से ओत–प्रोत हो। झारखंड की पावन भूमि में एक ऐसी ही कवयित्री का जन्म हुआ जिनकी कविता लोक में मानवता सर्वोच्च है। यह सत्य है कि यही इनकी कविताओं की शक्ति है। जंसिता केरकेट्टा एक अंतराष्ट्रीय कवयित्री के रूप में प्रख्यात है। उन्होंने आदिवासी मुद्दों, झारखंडी संस्कृति, जल, जंगल जमीन, नदी पहाड़ों की जीवन शैली समाज की साधनहींनता को सषक्त ढ़ग से अंतराष्ट्रीय मंचो पर रखा है।

बीज शब्द – संस्कृति, राष्ट्रनिमार्ण, प्रकृति, यथार्थवादी, धर्मनिरपेक्ष

झारखण्ड प्रकृति की गोद में बसा राज्य है जिसका अर्थ है जंगल प्रदेश जो अपने आप में जल जंगल जमीन जीवन और प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है। यह झारखण्ड का सौभाग्य है कि यहाँ ऊँचे–नीचे पहाड़ पर्वत, झर झर करते झरने, कल–कल करती नदियाँ, झूमते गाते करम उत्सव मनाते पेड़–पौधे विद्यमान है जो जीवनदायिनी है। राजधानी राँची को यदि हम पहाड़ो की रानी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी पूरे झारखण्ड प्रदेश में एक ओर सखूए के पेड़ फैले हुए है तो दूसरी ओर सारंडा के जंगल पलाश की खूबसूरती को समेटे हुए है। एक ओर हुण्डरू जलप्रपात हमें अपनी ओर आकर्षित करती है तो दूसरी ओर जोन्हा जलधारा की अपनी विशेषता है। यह सिदो कान्हू, चाँद भैरव, फूलो झानो बिरसा मुण्ठा, नीलांबर–पीतांबर, टाना भगत, बुधु भगत जैसे वीर शहीदों की पावन धरती है। इसी झारखण्ड राज्य के सुदूरवर्ती कोल्हान प्रमंडल के सारंडा वनप्रांतर के समीप मनोहरपुर प्रखंड के खुदपोस गाँव में जन्मी कवयित्री जसिंता केरकेट्टा को उनकी कविताओं ने आज अंतर्राष्ट्रीय पहचान दी है। जल जंगल जमीन और झारखण्ड की संस्कृति उनकी कविताओं के कण–कण में बसा है। उनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– 'अंगोर' 'जड़ों की जमीन' 'ईश्वर और बाजार' 'प्रेम में' पेड़ होना।

अपनी कविताओं के विषय में कवयित्री लिखती है– "कविताओं ने मुझे जमीन और प्रकृति से गहरे जोड़ा है।" आगे लिखती है– "इन कविताओं ने ही मुझे जंगल–जंगल, पहाड़–पहाड़, गाँव–गाँव घुमाते हुए जमीन के लोगों के लिए लिखने जीने और एक दिन मर जाने का जज्बा दिया है। कवयित्री न तो चाँद तारे की बातें करती है और न ही कोरी कल्पनाएँ। बल्कि जसिंता केरकेट्टा पूर्णतः यथार्थवादी कवयित्री है। उनकी कविताओं में जल, जंगल, जमीन है तो विचारों की गहराई भी है। आदिवासी समाज की अनकही गाथा भी है। कवयित्री जसिंता केरकेट्टा को उनकी कविताओं के लिए कई राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से नवाजा गया है जिसमें रविशंकर उपाध्याय स्मृति युवा कविता पुरस्कार, झारखण्ड इंडीजिनस पीपुल्स फोरम, ए० आई० पी० पी० थाईलैंड का इंडीजिनस वॉइस ऑफ

एशिया का रिकॉग्निशन, अपराजिता सम्मान, जनकवि मुकुट बिहारी सरोज सम्मान, वेणु गोपाल स्मृति सम्मान शामिल है।

कवयित्री जसिंता केरकेट्टा के हृदय में देशभक्ति की अनुभूति विद्यमान है वे राष्ट्रनिर्माण की आकांक्षी है। अपनी कविता "मैं देशहित में क्या सोचता हूँ ? में वह कहती है–

"मैं कभी जीवन में
गाँव नहीं देखे बस्ती नहीं देखी
झुग्गियाँ नहीं देखी, जंगल नहीं देखे,
मैं किसी को भी ठीक से जानता नहीं
मुट्ठी भर लोगों को जानता–पहचानता हूँ"

भारत एक विशाल देश है। यहाँ सभी वर्गो, भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों के लोग निवास करते हैं। संविधान की प्रस्तावना इस बात की पुष्टि करता है– "हम भारत के लोग भारत को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने का संकल्प करते हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक– 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है– भारत माता कौन है ? हिन्दुस्तान वह सब कुछ है, यहाँ के नदी और पहाड़, जंगल और खेत. जो हमे अन्न देते हैं, साथ हैं वे हैं हिन्दुस्तान के लोग, जो इस सारे देश में फैले हुए है। भारत माता दरअसल यही करोड़ों लोग है और "भारत माता की जय!" से मतलब हुआ इन लोगों की जय। **यहाँ के नदी–नाले, पहाड़–पर्वत खेतों खलिहानों की जय।**

कवयित्री समाज के उन लोगों पर व्यंग्य करती है जिन्होंने देश की शांति को भंग करने की कोशिश की। कभी अमीरी–गरीबी के नाम पर तो कभी धर्म–जाति, अलग भाषा के नाम पर भूखण्ड, संस्कृति के नाम पर। स्वयं को श्रेष्ठ मान कर दूसरों को हीनता की दृष्टि से देखने वाले लोग देश की एकता, अखण्डता, प्रेम भाईचारा देशहित के लिए खतरा है। एक देश का विकास तभी संभव है जब देश के सभी धर्मो, वर्गो के लोगों का विकास हो तथा सभी शांतिपूर्वक जीवन बिता सकें।

आज विकास की प्रचलित अवधारणा ने पर्यावरणीय संकट ला खड़ा किया है कवयित्री अपनी पैनी दृष्टि से सभ्य समाज से प्रश्न करती हुई लिखती है–

"हमने तो जूते पहन रखे है
पर मुझे उनपर तरस आया
क्योंकि जूते पहनने के अभ्यस्त लोग
यह कभी नहीं जान सकते
कि उनके पैरों की जमीन कैसी है
क्या वह साँस ले रही है
ठीक से जी रही या दम तोड़ रही है ?
कहीं उसे बुखार तो नहीं ?
या क्यों यह ठंडी पड़ी रहती है ?
क्या वह उदास है ?
क्या उसे ज्वर है ?"

आज नदियों सूख रही है तो कहीं जल में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो रही है। भूमिगत जल के स्तर में भी कमी आई है। चेन्नई में तो जल संकट की स्थिति है। झारखण्ड में यह स्थिति उत्पन्न न हो इसलिए कवयित्री जल संरक्षण, भूमि संरक्षण पौधरोपण की बातें कहती है।

झारखण्ड में फादर ऑफ द वॉटर के नाम से विख्यात 'सिमोन उराँव' का योगदान पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में अविस्मरणीय है। राजधानी राँची के निकट बेड़ो प्रखंड उन्होंने गाँव के जलस्तर को ठीक करने के लिए तीन बांध, आठ तालाब, नहर और कई कुएँ बनवाए हैं अब जल जमाव से जल स्तर बढ़ गया है। जल, जंगल और जमीन के संरक्षण व संबर्धन के किए गए कार्यों के लिए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। अपनी कविता 'क्यों महुए तोड़े नहीं जाते पेड़ से ?' में उन्होंने उस आदिवासी माँ का जिक्र किया है जो प्रकृति के प्रति बेहद संवेदनशील है वह सारी रात महुए के गिरने का इंतजार करती है पेड़ से नहीं तोड़ती सारा महुआ।

इस अद्भूत कविता की पंक्तियाँ देखें– माँ कहती है/ वे रात भर गर्भ में रहते हैं/ जन्म का जब हो जाता है समय पूरा। खुद–ब–खुद धरती पर/ आ गिरते हैं भोर ओस में जब भीगते हैं धरती पर/ हम घर ले आते हैं उन्हें उठाकर।

"पेड़ जब गुजर रहा हो
सारी रात प्रसव पीड़ा से
बताओ कैसे डाल हिला दें जोर से ?
बोलो, कैसे तोड लें हम
जबरन महुआ किसी पेड़ से ?"

एक माँ अपने बच्चे को जीवन देती है यह एक पुनीत कर्म है ईष्वर प्रदत्त वरदान है। माँ शिशु को नौ माह अपने गर्भ में धारण करती है इस दौरान अपने खानपान, रहन–सहन, अपनी दिनचर्या का ध्यान रखती है जब माँ शिशु को जन्म देती है तो वह प्रसव वेदना भूल कर शिशु का स्वागत् करती है। उसी वेदना को यहाँ प्रकृति भी धारण किए हुए है जिसे कवयित्री महसूस कर पाती है। यही झारखण्ड की संस्कृति है। रचाव और बसाव की संस्कृति, प्राकृतिक, संरक्षण की संस्कृति। प्रकृति प्रेम की संस्कृति।

'परवाह' कविता में उन्होंने एक माँ की व्यथा को व्यक्त किया है। एक माँ दिनभर एक बोझा सूखी लकड़ियों के लिए भटकती है उसे डर है कि कहीं जिंदा पेड़ न काट दूँ। झारखण्ड के जो प्राकृतिक संसाधन है, वन संपदा खनिज संपदा है वह वहाँ के निवासियों की विरासत है, परपंरा है। यह केवल रोजी रोटी का साधन ही नहीं अपितु एक भावना है। आदिवासी दर्शन प्रकृतिवादी है। उनका विष्वास है कि सृष्टि में सब समान है सबका अस्तित्व एक समान है चाहे वह पौधा हो, पत्थर हो या मनुष्य।

कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार है
"माँ कहती हैः / जंगल छानती।
पहाड़ लांघती / दिन भर
भटकती हूँ / सिर्फ सूखी
लकड़ियों के लिए / कहीं
काट ल दूँ कोई जिंदा पेड़।"

वैश्वीकरण के कारण आज सबसे अधिक वृक्ष सड़क के चौड़ीकरण के लिए काटे जा रहे हैं कहीं फोरलेन बनाए जा रहे हैं कहीं आलीशान भवन जमीन की लूट मची है।

कवयित्री वृक्षों की अनकही बातें महसूस कर पाती है और लिखती है–
"पेड़ों ने तुमसे / पेड़ लगाने को नहीं कहा
बस अपने हिस्से की जमीन छोड़ने को
कहा / जहाँ अपने तरीके से वे उग
सकें / पर तुम उनके हिस्से की
जमीन पर जमे रहे / और 'पेड़ लगाओ धरती बचाओ' का नारा लगाते रहे।"

कवयित्री जसिंता केरकेट्टा को झारखण्ड के लोगों से झारखण्ड की संस्कृति से बेहद प्रेम है। वे कहती है– "कभी मत कहना कि कविता सिर्फ तुम्हारी है। ये सिर्फ तुम्हारी कभी नहीं हो सकती क्योंकि ये सबकी है। जिन लोगों की चुप आखों ने कुछ कहा है। जिनकी चुप्पी ने कुछ सुनाया है, जिन जंगल, पहाड़ों, नदियों ने तुमसे बतियाया है उन सबका कविता पर अधिकार है। आगे कवयित्री कहती है "कविता इंसान को मशीन से मनुष्य बनाती है। इन कविताओं ने मुझे भीतर शून्य होना सिखाया है।

कविता 'मातृभाषा की मौत' समाज की विडंबना को उजागर करती है। यह चितां का विषय है कि भारतीय संविधान जहाँ आदिवासी अस्मिता, स्वषासन, रीति, रिवाज, भाषा संस्कृति की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध है वहीं हमारे राज्य और देष नहीं। संविधान की धारा 351 के अन्तर्गत यह निर्देष दिया गया है संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए षब्द भंडार में तथा अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप शैली आत्मसात करते हुए समृद्धि सुनिष्चित करें। कवयित्री भाषा की महत्ता का जिक्र करती हुई कहती हैं भाषा किसी भी समुदाय के सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवहार का परिचय कराती है। आज भाषा को रोटी से जोड़ने की आवष्यकता है। षिक्षा जगत में प्राथमिक षिक्षा मातृभाषा में देना एक वांछनीय प्रयास हो सकता है। कवयित्री मातृभाषा के प्रति तटस्थ रूख नहीं रख पाने की विभिन्न सामाजिक वर्गों की मंषा को व्यक्त करती हुई कहती है–
"माँ के मुँह में ही
मातृभाषा को कैद कर दिया गया
और बच्चे

उसकी रिहाई की मागँ करते–करते
बड़े हो गए।
मातृभाषा खुद नहीं मरी थी
उसे मारा गया था"

वर्त्तमान समय में राजनीति का जो रूप सामने आया है कवयित्री अपनी कविता "जहाँ कुछ नहीं पहुँचता" के माध्यम से दृष्टिपात करती है और राजनेताओं पर करारा प्रहार करती है–

कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार है–

"पहाड़ पर लोग पहाड़ का पानी पीते हैं
सरकार का पानी यहाँ तक नहीं पहुँचता
मातृभाषा में कोई स्कूल नहीं पहुँचता
अस्पताल में कोई डॉक्टर नहीं पहुँचता
बिजली नहीं पहुँचती इंटरनेट नहीं पहुँचता
साब! जहाँ कुछ भी नहीं पहुँचता
वहाँ धर्म के नाम पर
आदमी की हत्या के लिए
इतना जहर कैसे पहुँचता है ?"

आज भी ग्रामीण इलाकों में पेयजल की व्यवस्था नहीं है। मातृभाषा में विद्यालय नहीं है इस कारण बहुत से बच्चे ड्रॉपआउट हो जाते हैं। भाषा की वजह से संप्रेषण में उन्हें कठिनाई होती है। चिकित्सा, बिजली की व्यवस्था, मूलभूत सुविधा से लोग वंचित हैं।

अंत में मैं यह कहना चाहती हूँ कि हमें स्वयं को प्रकृति के अनुसार ढालना है। प्रकृति से सांमजस्य स्थापित करना है अन्यथा हमारा विनाश तय है। विकास हमें प्रकृति के बिना नहीं अपितु प्रकृति के साथ चाहिए। कवयित्री जसिंता केरकेट्टा के कविता संग्रह 'ईश्वर और बाजार' की अंतिम कविता 'इतजार' की दो पंक्तियाँ गागर में सागर के समान है। इन दो पक्तियों में वे बहुत कुछ कह जाती है।

"वे हमारे सभ्य होने के इंतजार में है।
और हम उनके मनुष्य होने के।"

संदर्भ ग्रंथ

1) जसिंता केरकेट्टा – ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० 141
2) जसिंता केरकेट्टा – ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० 144
3) जसिंता केरकेट्टा – ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० 43
4) जसिंता केरकेट्टा – ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० 197
5) जसिंता केरकेट्टा – जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण, 2018, पृ० 164
6) जसिंता केरकेट्टा – ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2022, पृ० 200
7) पंडित जवाहर लाल नेहरू – हिंदुस्तान की खोज, अध्याय 5
8) जसिंता केरकेट्टा – जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण, 2018, पृ० 20

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 117-121
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद के आधार पर 'आपका बंटी' उपन्यास का अध्ययन

रेवा महरा,
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
सोवन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा

सारांश -
लब्ध प्रतिष्ठित लेखिका मन्नू भंडारी ने हिंदी कथा साहित्य की समृद्धि में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। 'आपका बंटी' उपन्यास बीसवीं शताब्दी के चर्चित उपन्यासों में से एक है। जिसमें मन्नू भण्डारी ने बड़े सहज व सरल शब्दों से पति–पत्नी के आपसी द्वंद्व में घायल होती एक बालमन (बंटी) के भावों संवेदनाओं को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की कथावस्तु नायिका शकुन के पारितः घूमती रहती है। जो अपने अधिकारों की लड़ाई में निरंतररत रहती है। यदि एक नारी की निर्भरता महत्वाकांक्षा की दृष्टि से इस उपन्यास को देखा जाए तो शकुन के अधिकारों की लड़ाई भी उचित प्रतीत होती है क्योंकि यह लड़ाई समाज में निरंतर अपना समुचित स्थान बनाती अपना वर्चस्व बढ़ाती सिर्फ शकुन का ही सत्य नहीं वरन् समाज की हर नारी का सत्य है। इस द्वंद्व में सबसे अधिक जिसकी संवेदनाएं दमित होती हैं वह है बाल पात्र बंटी जो अपनी सुरक्षा के लिए भी दूसरों पर निर्भर है उस बालमन की मनोदशा को बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। उपन्यास में बंटी के सपनों की दुनिया से लेकर वास्तविक दुनिया तक उसके मन के विचारों का ताना–बाना दिखाया है। इसीलिए लेखिका बाल मनोविज्ञान की गहरी सूझ–बूझ की परिचायक मानी जाती हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास का कथानक, बंटी, शकुन, अजय, मीरा, डॉ0 जोशी, अमि, जोत, वकील चाचा, प्रमीला, टीटू, फूफी आदि पात्रों के इर्द–गिर्द चक्कर लगाता रहता है।

प्रस्तावना .. सिग्मण्ड फ्रॉयड एक कुशल चिकित्सक थे। लेकिन वे अचेतन मन की खोज का श्रेय साहित्यकार या दार्शनिक को दिया करते थे। वे साहित्य समीक्षक तो नहीं थे लेकिन उनके मनोविश्लेषणवाद से जो नई बातें हमारे सामने आई उससे साहित्य को समझने में सहायता मिलती है। जिस समय उनका चिंतन हमारे यहाँ विकसित हुआ उस समय रुसी रूपवाद, रूसी साम्यवाद, मार्क्सवाद आदि आलोचनात्मक पद्धतियाँ प्रचलित थी। जो यह मानकर चलती थी कि हमने साहित्य को अच्छी तरह व्याख्यायित कर दिया है। ऐसे समय में फ्रॉयड ने साहित्य में नए ढंग से प्रवेश कर साहित्य की नए तरीके से व्याख्या करने की कोशिश की। जब 19वीं शताब्दी में मनोविज्ञान व्यवहार के रूप में विभिन्न संप्रदायों में विकसित हो रहा था। तो उस समय विभिन्न, संप्रदायों के मनोवैज्ञानिक व्यवहार की अपने–अपने तरीके व्याख्या कर रहे थे। संरचनावादियों का मानना था कि संरचना के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को समझा जा सकता है। इसके विरोध में फ्रॉयड का मानना था कि मन की भी एक संरचना होती है। इसी तरीके से उन्होंने मन की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसे साहित्य से जोड़ा। मनोविश्लेषवाद का अध्ययन करके हमें लेखक के व्यक्तित्व को व लेखक के द्वारा रचे गए रचना के पात्रों के व्यक्तित्व को जानने में सहायता मिलती है। जैसे प्रस्तुत उपन्यास में बंटी का चरित्र कुंठा से ग्रसित है। उस कुंठा को पहचाननें के लिए हमें उसके अचेतन मन का अध्ययन करना पड़ेगा। जिससे उस कुंठा को दूर किया जा सके। फ्रॉयड का मानना था कि व्यक्ति के आक्रामक व्यवहार के पीछे अचेतन मन होता है। जो दमित इच्छाएं कुंठा के रूप में व्यक्ति के अचेतन मन में दबी होती हैं। वही

व्यक्ति से आक्रमक व्यवहार कराती है। फ्रॉयड ने मनुष्य के व्यवहार की मूल व्याख्या उसके मन में निहित प्रवत्तियों या ग्रंथियों के आधार पर की है। यह मूल प्रवृत्ति उसकी काम चेतना होती है।जिसे लिबिडो भी कहते है।

''लिबिडो के अंतर्गत सिर्फ काम चेतना को ही नहीं रखा जाता बल्कि इसके अंतर्गत वे सभी व्यवहार आते है जिनका संबंध प्रेम स्नेह लगाव आदि से होता है। व्यक्ति के वे सभी कार्य जिनसे सुख मिलता है। लिबिडों से संबंधित हैं यह एक ऐसी शक्ति है। जो हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।''[1]

मनुष्य सामाजिक व नैतिक वर्जनाओं के कारण काम चेतना को अवदमित करता है। जिसके कारण उसके मन में कुंठा पैदा होती है। एक साहित्यकार का यही उद्देश्य होता है कि वह इन अवदमित इच्छाओं व कुंठाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति करे। स्वच्छंदतावादी– साहित्य सृजन कल्पना से मानते थे। इसका विरोध करते हुए फ्रॉयड का मानना है कि साहित्य सृजन कामवृत्ति के उदात्तीकरण से होता है। व्यक्तित्व संरचना में फ्रॉयड ने इदं, अहं, पराअहं के महत्व को स्वीकार किया परम अहं में मनुष्य नैतिक नियमों का पालन कर अपने इच्छाओं का दमन करता है तथा उदात्त की स्थिति में पहुँच जाता है। समाज के सामने इस स्थिति में कामभावना का उदात्तीकरण तो हो जाता है। लेकिन जो उसकी दमित इच्छाएं होती हैं वे अचेतन मन में स्थिति समाज के सामने कभी–कभी अपसामान्य व्यवहार के रूप में आते हैं। ऐसा व्यवहार वह अपने आप ही करना शुरू कर देता है। उसी अपसामान्य व्यवहार को एक साहित्यकार सौंदर्य रूप देकर साहित्य का सृजन करता है। इनका मानना है साहित्य अचेतन मन की प्रस्तुति है। जब साहित्यकार उस कुंठा को साहित्य के रूप में बदल देता है तो उसके मन से उन भावों का विरेचन हो जाता है जो उससे अपसामान्य व्यवहार करा रहे थे। उसी साहित्य सृजन को पाठक पढ़ते हैं तो उनके मन से भी उन भावों का विरेचन हो जाता है जो कुंठा के रूप में उनके अचेतन मन में स्थित होती है। जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। इसीलिए फ्रॉयड अचेतन मन का अन्वेषक एक साहित्यकार को मानते हैं। वे मानते हैं साहित्यकार अचेतन मन में विचरण करते रहते हैं। साहित्यकार की सृजनात्मक कृति से उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। उसने जो विषय लिया है जो भाषा शैली का प्रयोग किया है वह उसकी अचेतन मन की पूँजी होती है। जिसमें वह अपनी इच्छा की पूर्ति के साथ–साथ पाठकों की इच्छा की पूर्ति भी करता है। वे चुटकलों को, गालियाँ को, मिथकों को महत्व देते हैं। माना वर्तमान स्थिति में हमें किसी नेता की बातें पसंद नहीं आती उसे हमें कुछ कहना है तो हम उसके सामने उसको गालियाँ नहीं दे सकते। व्यंग्य के माध्यम से बोला जाए तो कहने वाला भी हंसेगा व सुनने वाले भी और व्यंग्यकर्ता व पाठककर्ता दोनों मनोविकारों से मुक्त हो जाएंगे। इस तरह की क्रिया करके मनुष्य में जो नैतिक दबाव से मानसिक विकृति आती है। उससे वह मुक्त हो जाता है। इस तरह साहित्य का उद्देश्य समाज को बदलना नहीं बल्कि मनोग्रंथियों की अभिव्यक्ति करना है। साहित्य का मूल संबंध बर्हिजगत से न होकर अंर्तजगत से है। इसीलिए साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक है।

सिग्मण्ड फ्रॉयड के साहित्य चिंतन के आधार पर अगर 'आपका बंटी' उपन्यास का विश्लेषण किया जाए जो फ्रॉयड के विचारों का पूरा–पूरा प्रभाव उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास की नायिका शकुन जो दमित इच्छाओं के कारण कुंठा का शिकार है, अजय से शादी करके उसके इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है। शकुन के अचेतन मन को लेखिका ने उसके व्यवहार द्वारा चित्रित किया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''उसे आज भी याद है। पहली बार जब उसने ऐसा किया था तो ममी जो चौंक गई थी। एकदम उसका हाथ हटा दिया था और बड़ी देर तक उसके चेहरे पर जाने क्या देखती रही थी। अजीब–अजीब नजरों से फिर एक गहरी सांस छोड़कर वे छत की ओर देखने लगी थीं। उनका चेहरा जाने क्यों बड़ा व बेजान हो आया था। वह जैसे भीतर ही भीतर सहम गया था।''[2]

बंटी को मम्मी की ठोड़ी के तिल पर हाथ लगाना अच्छा लगता है। जब बंटी मम्मी के तिल को स्पर्श करता है तो शकुन उसका चेहरा देखती रहती है। जाने किस सोच में डूब जाती है। एकाएक छत की तरफ देखना और उसके चेहरे पर दुख के भाव का आना जो उस परिस्थिति के अनुकूल नहीं है। सामान्य व्यवहार में ऐसा प्रदर्शन माँ का अपने बेटे के प्रति नहीं होता है। यहाँ पर शकुन की मनोदशा के प्रभाव से उत्पन्न व्यवहार हमें देखने को मिलता है। चेतन अवस्था में रहते हुए भी उसकी दमित इच्छाएं कब उसे चेहरे में दुःख के रूप में प्रकट होती हैं। उसे पता ही नहीं चलता है। यहाँ पर लेखिका उसके अचेतन मन का ही प्रदर्शन करना चाहती है। ऐसी स्थितियाँ हमें उपन्यास के मुख्य पात्र बंटी में

भी कई जगह पर देखने को मिलते है। जो मम्मी पापा के झगड़े की सुलह कराना चाहता है। लेकिन इस कार्य में सफल नहीं हो पाता। मम्मी–पापा का विवाह विच्छेद हो जाता है। पल–पल उसकी इच्छाएं दबती जाती है। बंटी की दमित इच्छाओं का परिणाम उसके अपसामान्य व्यवहार के रूप में हमें उपन्यास में कई जगह दृष्टव्य होते हैं। जैसे–

''फिर उसने बंदूक उठाई और उसी गुस्से में दौड़ता हुआ बाहर आ गया। कुछ नहीं, पेड़ पर खूब–खूब उँचे चढ़कर बंदूक चलाएगा। आकर मना तो करें ममी। मारने वाली ममी की बात सुनेगा अब वह? कभी नहीं सुनेगा। ठाँय ठाँय बंदूक की आवाज गूँजती रही। गूँजती रही। पर भीतर से कोई नहीं आया।[3]

बंटी डॉ0 जोशी व उनके बच्चों के साथ समायोजित नहीं हो पाता है। जो उसके दमित इच्छाओं का ही परिणाम है। अमि से खिलौने छीन लेना, घर आए मेहमानों से सही से बात न करना, उसका अपसामान्य व्यवहार उसके अचेतन मन में दबी कुंठा का ही परिणाम है। फ्रॉयड का यह भी मानना है कि जिन इच्छाओं की पूर्ति मनुष्य की चेतना अवस्था में नहीं हो पाती है। उन इच्छाओं की पूर्ति वह अचेतन मन के माध्यम से स्वप्नों (दिवा स्वप्न) के द्वारा करता है। माना हम किसी व्यक्ति का अहित करना चाहते हैं। तो चेतन अवस्था में हम उसका अहित नहीं कर सकते हैं। वही बात हमारे अचेतन मन में बैठ जाती हैं। तब सपनों के माध्यम से हम उस व्यक्ति का अहित करते हैं। हमें वही स्वप्न आते हैं जो विचार हमारे अचेतन अवस्था में विचरण करते हैं। ऐसा ही स्वप्न बंटी को भी आता है दिनभर मम्मी व वकील चाचा की बातें सुनता है मम्मी व पापा के झगड़े की वजह भी नहीं जान पाता है। मम्मी का उदास चेहरा हर हमेशा उसके आँखों के सामने तैरता रहता है। उसे रात को भी वहीं डरावने सपने होते हैं।–

''देखा दूर पेड़ के नीचे खड़ा है।'' डर के मारे उससे तो चीखा तक नहीं गया था बस सांस जैसे घुटकर रह गई थी।''[4]

सपने में वह डरावनी आकृति को देखकर चीखना शुरू कर देता है। यहाँ पर बंटी को सपनों में डरावनी आकृति दिखना उसके अचेतन मन के डर का सपनों के माध्यम से बाहर आना है। जिससे स्पष्ट होता है कि मनोविश्लेषणवाद में साहित्य का संबंध बर्हिजगत से न होकर अंर्तजगत से है। फ्रॉयड ने कई साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ा। साहित्यकारों की साहित्य सृजन के बारे में वे कहते हैं कि साहित्यकार भी एक स्वप्न देखता है जिस रचना का वह वह सृजन करता है। उस रचना से संबंधित विचार उसके अचेतन मन में पहले से विचरण करते हैं। जैसे मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास है यह उनकी कोरी कल्पना नहीं है। बल्कि उनके अचेतन मन में उठने वाले विचार हैं। उनका 'स्वप्न' है। जिसका उन्होंने भाषा व शब्दों के माध्यम से सौंदर्य रूप देकर पाठकों के सामने रखा है।

फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण सिद्धांत में मन की तीन दशाओं का उल्लेख किया है। जिन्हें वह चेतन, अचेतन व अर्द्धचेतन नाम से संबोधित करते हैं। और उनके माध्यम से मानव जीवन का विश्लेषण करते हैं। उन्होंने मन का विश्लेषण करके ही जैने में हिस्टीरिया के रोगियों का उपचार किया। जिसे पूर्व में आंगिक दोष माना जाता था। हिस्टीरिया में व्यक्ति के संवेग उसके नियंत्रण में नहीं होते हैं। उन्होंने मन की दशाओं का अध्ययन कर हिस्टीरिया रोगियों को रोगमुक्त किया। फ्रॉयड ने अचेतन मन को जाग्रत कर 'सम्मोहन विधि' को भी जन्म दिया। सम्मोहन विधि के माध्यम से वे रोगियों के रोगों का अध्ययन करते थे। इस स्थिति में अचेतन मन व मानव शरीर जाग्रत होता है। जबकि चेतन मन सुषुप्तावस्था में होता है अचेतन मन को जो निर्देश किया जाता है। वह वहीं कार्य करना शुरू कर देता है। 'सम्मोहन विधि' के द्वारा भी फ्रॉयड ने रोगियों का इलाज किया।

उनके द्वारा प्रस्तुत मन की तीन अवस्थाओं का उल्लेख निम्नवत् है।–

4.3.1 चेतन मन : चेतन मन, मन की वह अवस्था होती है। जब व्यक्ति कोई कार्य सक्रिय रूप से करता है। उस समय हमारा मस्तिष्क पूरी तरह सक्रिय होता है। जब हम किसी कार्य को पहली बार सीखते हैं तो हमारा पूरा ध्यान उसी कार्य पर ही केन्द्रित होता है ।उस समय हमारा मन चेतन अवस्था में होता है। चेतन मन हमारी पांच इन्द्रियों के आधार पर कार्य करता है। दृष्टि, स्वाद, सुनना, स्पर्श और सुगंध अर्थात् व्यक्ति यहाँ जाग्रत अवस्था में कार्य करता है। आमतौर पर माना जाता है मानव मन का दस प्रतिशत हिस्सा चेतन मन होता है। बाकी अचेतन मन का होता जैसे हमें एक हिमशैल पानी में तैरता हुआ दिखाई देता है हम उसका सिर्फ ऊपरी हिस्सा ही देख पाते हैं लेकिन उसके अंदर वह कितने गहराई तक फैला है उसका अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं। यहां हिमखण्ड का ऊपरी हिस्सा जो

दिखाई दे रहा है वह चेतन मन है और पानी के अंदर का हिस्सा (विशालकाय क्षेत्र) अचेतन मन है। चेतना अवस्था में हम अपने दैनिक कार्य करते हैं। जिसके उदाहरण हमें उपन्यास में भी देखने को मिलते है –

''तुम नहा लो बंटी भय्या! कहो तो हम नहला दे?''

''नहीं अपने–आप नहाऊँगा। बड़ी आई नहलाने वाली।''

''तो जाओ अपने आप नहाओ। हम कपड़ा–वपड़ा निकालकर रख देते हैं।''

''अभी नहीं नहाता, जब मर्जी आएगी नहाऊँगा।'' फूफी को लेकर अभी भी गुस्सा भरा है।''[5]

बंटी फूफी से गुस्सा है फूफी की एक भी बात नहीं मानता फूफी नहाने को कहती है तो उसमें भी बहाना बनाता है। वह चेतना अवस्था में फूफी को गुस्सा दिखाकर अपने संवेग प्रदर्शित कर रहा है।

इसी तरह बंटी का अपने मित्र टीटू के साथ खेलना फूफी के साथ बहस करना मम्मी से बातें करना अपने विद्यालय के मित्रों के साथ बैठकर पढ़ना उसके चेतन मन के व्यवहार को ही प्रदर्शित कर रहा है।

बंटी अपने मित्र टीटू के घर आया है। वह अपनी बहन शन्नो के साथ खेल रहा है। वह अपने मित्र बंटी को देख कैरम की गोटियाँ बिखराकर बंटी के साथ चला जाता है –

''ऐ टीटू! पहले खेल पूरा करके जाओ। हार रहा है तो कैसा भागने लगा।''

जीतती हुई शन्नो ने कुरता पकड़कर उसे खींचा।

''ले खेल और खेल! टीटू ने दोनों हथेलियों से सारी गोटों को इधर उधर छितरा दिया।''[6]

यहाँ पर टीटू व शन्नो आपस में लड़ रहे हैं। इसमें दोनों के चेतन मन से प्रदर्शित व्यवहार हमें देखने को मिलता है। यहां पर टीटू व शन्नो दोनों का मस्तिष्क पूरी तरह से सक्रिय होकर कार्य कर रहा है। जब दोनों कैरम खेलते हैं। तो दोनों पूरी तरह से चेतनावस्था में जीतने की कोशिश करते हैं और कार्य पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करते हैं। ऐसे उदाहरण लेखिका ने उपन्यास में कई जगह दिए हैं।

4.3.2 अचेतन मन : फ्रॉयड के अनुसार मन का सबसे बड़ा भाग अचेतन मन होता है। अचेतन मन में हमारी दमित इच्छाएँ एवं विचार संचित रहते हैं। जो हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं व हमारे व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम जो भी बात करते हैं, सोचते हैं उसके मूल में अचेतन मन ही होता है। अचेतन मन स्वप्न की तरह होता है जिस पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं होता है। हम अपने दमित इच्छाओं को चेतन अवस्था में भूल जाये पर वे इच्छाएं अचेतन अवस्था में कभी नष्ट नहीं होते हैं। उसमें हर प्रकार के विचार संग्रहित रहते हैं। वे निष्क्रिय होकर भी चेतन मन को निर्देश देते हैं और हमारा चेतन मन वहीं करता है, जो अचेतन मन करवाता है जिसका प्रभाव हमारे व्यवहार में भी देखने को भी मिलता है। शकुन जब डॉ0 जोशी के साथ घूमने चली जाती है तो फूफी बंटी को समझाते हुए कहती है कि तुम्हारा व्यवहार में ऐसा परिवर्तन तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है। पहले जब मम्मी कहीं घूमने जाती थी तो तुम उनके साथ जाने के लिए कितना जिद्द करते थे। आज तो तुमने मम्मी से कुछ नहीं कहा। लेखिका के शब्दों में–

'अरे तुम्हे क्या हो गया बंटी भय्या? और सुनो तुम चले काहे नहीं गए ममी के साथ पहले तो कभी अइसे छोड़कर जाने की बात करतीं तो जाने देते तुम? सारे आँगन में लोट–लोटकर अपना और ममी का जी हलकान कर देते। यह उमिर से पहले बूढ़ा हमें अच्छा नहीं लगता तुम्हारा समझे?''[7]

बंटी को मम्मी के डॉ0 जोशी के साथ उठना–बैठना पंसद नहीं है। ये बात जैसे उसने अपने अचेतन मन में बिठा ली हैं। ऐसी घटनाएं उसके साथ बार–बार घटती हैं तो उसने अपनी प्रतिक्रिया देनी छोड़ दी है। बंटी के व्यवहार में परिवर्तन उसके अचेतन मन में बैठे दमित भाव के कारण हुआ है। वह मम्मी के व्यवहार में तो परिवर्तन नहीं कर सकता लेकिन उसका खुद का व्यवहार कब परिवर्तित हो गया उसे पता नहीं चलता। इस तरह की घटनाएँ उपन्यास में हमें कई जगह पर देखेन को मिलती हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र चाहे वह बंटी हो, शकुन हो, अजय हो, सब अपेन अह के टकराहट में अपनी इच्छाओं का दमन करके जीवन में भले ही आगे बढ़ जाये लेकिन अतीत की घटनाएं उनके अचेतन मन में विचरण कर उनके व्यवहार के रूप में प्रकट हो ही जाते हैं।

4.3.3 अर्द्धचेतन मन : मनुष्य की कुछ स्मृतियाँ चेतना में होती है तो कुछ स्मृतियाँ अचेतन अवस्था में होती है। जब मन चेतन अवस्था में होता है तो पूरी तरह से सक्रिय होता है। जब मन अचेतन अवस्था में होता है। तो मस्तिष्क पूरी तरह निष्क्रिय होता है। इन दोनों के बीच की अवस्था अर्द्धचेतन की

अवस्था होती है जिसमें हमारा मस्तिष्क चेतन अवस्था में तो होता है पर कुछ स्मृतियाँ उसे धुंधली प्रतीत होती हैं जिन्हें हम पूरी तरीके से विस्मृति तो नहीं कर सकते हैं पर चेतन अवस्था में वे विस्मृति हो चुकी हैं। विस्मृति विचारों को या घटनाओं को व्यक्ति ध्यान केन्द्रित कर चेतन अवस्था में लाता है। जैसे परिचित नामों को भूल जाना, वस्तुओं का गलत जगह पर रख देना, या परीक्षा हॉल में बैठे बच्चों का प्रश्नों के उत्तर भूल जाना ऐसी स्थिति में थोड़ा सा प्रयास करने मे उसकी स्मृति लौट आती है। ऐसा ही एक उदाहरण दृष्टव्य है –

बंटी डॉ0 जोशी के घर में खोया–खोया सा रहता था। घर में होता तो स्कूल की बातें सोचता स्कूल में होता तो घर की बातें सोचता है। जब से वह अपने कॉलेज वाले घर से आया है उसका मन कहीं लगता ही नहीं है।

''अपने घर से उखडकर बंटी जैसे सभी जगह से उखड गया क्लास में बैठा रहता है। तो मन घर में तैरता रहता है। ममी, अमी, ममी का कमरा, कमरे का जादू और भी जाने क्या–क्या''[8]

बंटी उपुर्यक्त पंक्तियों में विस्मृति यादों को चेतन अवस्था में लाने का प्रयास कर रहा है। ये स्मृतियाँ उसकी चेतन अवस्था में भी नहीं हैं व अचेतन अवस्था में भी नहीं हैं। ऐसी अवस्था को मन की अर्द्धचेतन अवस्था कहा जाता है। ऐसी स्थिति हमारे दैनिक जीवन के व्यवहार में भी कई बार देखने को मिलता है। बंटी के सामने भी कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं। जब वह भूली बातों को याद करता है।

फ्रॉयड के मन की अवस्थाओं का प्रभाव हमें उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास का हर पात्र विचारों के द्वंद्व से जूझ रहा है। जो विचार उनके चेतन, अचेतन, अर्द्धचेतन मन में चलते रहते हैं।

संदर्भ :–

1. अधिगम एवं शिक्षण, पृ0311
2. आपका बंटी, पृ019
3. वही, पृ0103
4. वही, पृ048
5. वही, पृ015
6. वही, पृ017
7. वही, पृ083
8. वही, पृ0150

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 122-126
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रश्मि बी. जे.
शोधार्थी,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग, मुक्तगंगोत्री, मैसूर, कर्नाटक.

1.उषा प्रियंवदा का जीवन परिचय : साठोत्तरी हिंदी कथाकारो में उषा प्रियंवदा का विशेष स्थान है। पाश्चात्य वातावरण में रहने के कारण उनकी लेखनी पर इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने जीवन की यथार्थता को बड़ी नजदीकी से देखा और अनुभूत किया है ।

2. जन्म : हिंदी की विशिष्ट महिला कथाकार : उषा प्रियंवदा जी का जन्म 24 दिसंबर 1930 को कानपुर में सक्सेना कायस्थ के प्रतिष्ठित एवं शिक्षित परिवार में हुआ था। वह बचपन से ही सुशील स्वभाव की थी।

3. जन्म स्थान: उषा प्रियंवदा कानपुर उत्तर प्रदेश में जन्म हुआ था। जन्म स्थान से परिवार स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई से बहुत प्रभावित थे। घर का महोली देश प्रेम से भरा था। जन्म स्थान में परिवार की ख्याति एक व्यावसायिक परिवार के रूप में थी ।उषा जी अपने चाचा चाचा भाई भतीजे के साथ रहने लगी।

4. बाल्य काल : उषा जी के बाल्यकाल से ही पिता दामोदर प्रसाद सक्सेना का असमय देहांत हो गया। उषा जी अपने चाचा, भाई भतीजे के साथ रहती थी। संयुक्त परिवार के संस्कारों का प्रभाव उन पर पड़ा था। उषा जी ने बचपन से शिक्षा क्षेत्र में रुचि दिखाई हैं । उनका पारिवारिक जीवन सुख कर नहीं रहा जीवन में अनेक उतार चढ़ाव, हर्ष-विमर्श, सुख-दु:ख अनेक प्रसंगों का सामना करना पड़ा। पिता की मृत्यु के बाद परिवार में बड़े भाई करता धर्ता थे। स्वतंत्रता संग्राम लड़ाई में वह जेल चले गए फिर उषा जी अपने ननिहाल चली गई ।वहां पर भी लड़की होने के नाते उन्हें बहुत ताने सुनने पड़ते। "ननिहाल जाना मुझे बहुत अप्रिय लगता था; क्योंकि वहां सब पुरुषों और बालकों के बाद भोजन मिलता था ।मां और मैं चुपचाप बरामदे में बैठी प्रतीक्षा करती। कब बड़े मामा जी ममेरे भाई भोजन करके निकले तो अपनी बारी आए। मेरी बालोचित संवेदनशील दृष्टि से यह भी ग्रहण कर लिया की स्त्रियों को भोजन मिलता था। उसमें रबड़ी ;मलाई जो नियमित रूप से पुरुषों को परोसा जाती थी, वह नहीं रहती थी, न हीं इतने प्रकार के व्यंजन ही"।1 आगे भी जब उनके हम उम्र ममेरे भाई बाहर साइकिल चलाते थे तो उषा जी खिड़की से उन्हें देखती लेकिन एक दिन उन्होंने जिद की तो नानी ने कहा कि "तुम लड़की हो; इसलिए सायकिल नहीं चला सकती हो। जब उनके भाई जेल से छूट कर आए तो बताती है कि "स्थिति थोड़ी बदल गई थी।उनके भाई ने उन्हें पढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।दादा ने इलाहाबाद जाकर पढ़ने को प्रोत्साहित किया। मेरे विषय थे अंग्रेजी हिंदी और फिलॉसफी"|

5. वंशवेली: उषा प्रियंवदा के परिवार में संयुक्त परिवार, पिता शहर के नामचीन वकील, मां प्रियंवदा देवी (शिक्षित) बहने- कमल। और कामिनी भाई- शिवबनलाल सक्सेना हीरालाल सक्सेना बड़ी दादी गुलाब देवी छोटी दादी राम देवी। पति- यूरोपीय पुरुष जिनका उपनाम विल्सन है। पिता व्यवसाय से वकील थे और मां शिक्षित अभिजातीय जमींदार परिवार की थी ।पिता की असम में मृत्यु के कारण उनकी मां ही उनके परिवार की कर्ताधर्ता थी। उनकी प्रेरणा स्रोत थी। इसी कारण उषा जी ने अपने नाम के आगे प्रियंवदा जोड़ दिया। उषा जी की दो बड़ी बहनें थी। कमल। और कामिनी ।दो बड़े भाई शिवबंदास और होरीलाल सक्सेना थे ।बड़े भाई प्रोफेसर थे। लेकिन वे नौकरी छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में व्यस्त हो गए। वह कहती है| "मैंने जगह-जगह राजनीतिक उत्सवों में देखा; राष्ट्रपति भवन के हर उत्सव में पंडित नेहरू के सामने जाकर पूछना शिवबल्लाल कैसे हो? मुझे एकदम अभि भूत कर जाता था; विशेष तौर से जब हर किसी से मेरा परिचय करवाते पंडित नेहरू से लेकर श्रीमती इंदिरा गांधी तक; मै हर प्रधानमंत्री से दादा के साथ मिली"। उषा जी के चाचा अकाउंटेंट तथा व्यवस्थापक थे। उनका परिवार संयुक्त होने से उनके घर में हमेशा रौनक रहती । "संयुक्त परिवार के व्यवस्था के कारण घर में काफी चहल-पहल रहती थी।" उषा जी अपने परिवार में सबसे छोटी और सबसे चाहती रही ।उषा जी की मां का नाम प्रियंवदा था। यह नाम बहुत ही कवित्व पूर्ण था। "उनके विवाह के उपरांत भी यह नाम जुड़। रहा"। उनके परिवार का माहौल ही उनके संस्कार के रूप में उपन्यास और कहानियों में झलकता है।

6. शिक्षा-दीक्षा: उषा जी बचपन से शिक्षा के प्रति आकर्षित रही है। जैसे लड़कियों की पढ़ाई के प्रति उनके परिवार का दृष्टिकोण उदार दिखाई देता है। उनका शैक्षिक जीवन संपूर्ण सफल रहा क्योंकि उन्होंने शिक्षा के लिए अनुरूप परिवेश नसीब हुआ। उन्होंने अंग्रेजी विषय के प्रति अपनी अभिरुचि दिखाई इसी कारण उन्होंने 1952 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम .ए किया और इसी विश्वविद्यालय से 1955 में अंग्रेजी साहित्य में पीएचडी की उपाधि ली। 3 साल तक उन्होंने दिल्ली के लेडी श्री राम कॉलेज में अध्यापन किया। बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के बाद फुल ब्राइट स्कॉलरशिप पर अमेरिका गई। उन्होंने कानपुर से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। और फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की ।वहीं से अंग्रेजी साहित्य में मास्टर करने के बाद हिंदी कथा साहित्य से एंगल का प्रभाव इस विषय पर एचडी प्राप्त की। इस दौरान उषा जी पर रघुपति सहाय; फिराक; हरिवंश राय बच्चन; सुमित्रानंदन पंत; धर्मवीर भारती; आदि लेखक और समीक्षाको का प्रभाव पड़ा ।जिसके कारण वह आज हिंदी कथा साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाएं हुए हैं ।वह लिखती है| उनके पुनर्जन्म में पूरा-पूरा श्रेय स्नेहिल बंधु धर्मवीर भारती को में देती हूं; जिन्होंने मुहावरे के अनुसार कान पड़कर 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास लिखने को प्रेरित कर दिया।
अमेरिका प्रवास में उनका साहित्य अनुभव बढ़ता गया। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में कई महीनो तक रह रही वहीं की महिला लेखिकाओं से अधिक प्रभावित रही ।विशेष रूप से एलियन पूरी एंटीरे आदि जानी मानी लेखिकाओं के साहित्य का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। नए परिवेश नई सोच; नई संस्कृति , नए संस्कार से प्राप्त अनुभव से इनका साहित्य विस्तृत हुआ। इसी कारण पश्चात समाज उनकी सोच का प्रभाव उनकी कहानी और उपन्यास में बखूबी झलकता है। महत्वपूर्ण बातो की ऊंचाई जिन्हें अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन अध्यापन कार्य किया लेकिन अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण उषा जी ने हिंदी में ही लिखना श्रेष्ठ माना। उनके मन में दुविधा हमेशा बनी रही कि भारत और पश्चिम के बीच का संपर्क उनका हमेशा माध्यम रहा ।उषा जी का कहना है कि उनका लेखन उसे व्यक्तिगत के मनोवृति से त्रस्त था। जो उनके घर देश वापस ना जा सके ।उषा जी का यह लेखन गहरे संताप का लेखन है। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य किया ।लेकिन उनकी प्रतिभा का कमाल सबसे अधिक कथा साहित्य में दिखाई देता है।

7. गृहस्थ जीवन: उषा जी अपनी मुलाकात में कहती है कि उनकी अपने पति से भेंट हार्वर्ड विश्वविद्यालय में हुई ।वे भाषा विज्ञान के प्रोफेसर थे। उषा जी ने 1962 में किम विल्सन से शादी की। विल्सन स्वीडिश थे ।दोनों विलकिंग्सन'एस विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर थे ।उषाजी तुलनात्मक भारतीय साहित्य विभाग में कार्यरत थी। फिर बाद में हिंदी साहित्य में पढ़ना शुरू किया। उनका दंपति जीवन

सुखद रहा। भले पति-पत्नी लग रहे। लेकिन उनका प्रेम कम नहीं हुआ। उषाजी लिखती है| "सर्वथा साथ रहने वाले दंपतियों की तरह छोटी-छोटी झुनझुलाते दिन_ रात की परेशानियां और एक दूसरे की मन स्थिति को पहचानना भी है। और एक दूसरे को इस तरह से छूट देते रहे हैं। अपने-अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह अभिव्यक्त करने की"। उषा अपने पति से कितनी भी दूर क्यों ना हो लेकिन उनका प्यार उनके पति के लिए कभी कम नहीं हुआ ।और यही कारण है कि वह पश्चिम में रह गई। उषा प्रियंवदा का विवाह पुर्व नाम उषासक्सेना था शादी के बाद भी पति का नाम ना लगाते हुए मां का नाम प्रियंवाडा ही धारण किया ।उषा जी स्वतंत्र विचारो और खुले दिल की स्त्री है ।उनका जीवन बंधनों में नहीं बंद कर जीना खुले विचारों में रहा। यही कारण रहा कि उन्होंने विदेशी पुरुष से विवाह किया। उषा के पति की नेल्सन हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे ।और उषा जी शॉर्टवुड में रहती ।दोनों के बीच 1600 मिल की दूरी रही ।वह अकेले शॉटगन में रहते हुए बागवानी करती । घर की सारी जिम्मेदारी स्वयं उठती । मकान की मरम्मत घर के सारे काम स्वयं करती । वह इसी अवस्था में 20 वर्षों तक रही। स्थानीय निवासियों के लिए आश्चर्य की बात है। उनकी कोई संतान नहीं । पति-पत्नी के बीच अच्छा खासा तालमेल रहा। एक दूसरे से दूर रहते हुए भी दोनों में आपसी सामंजस्य रहा। दोनों एक दूसरे की मन्नो स्थिति को पहचानते । एक दूसरे को स्पेस देते । और अपने-अपने व्यक्तित्व को खूब अच्छी तरह से निभाते । शादी के बाद उषा जी के पति अपनी नानी मुर्मू से मिलने ले गए । जो 94 वर्ष की वृद्ध थी वह कानों से बधिर थी। इसलिए उसे लिखकर ही अपनी बात बतानी पड़ती । उषा जी के मिलने के बाद उनके चेहरे पर खुशी का भाव स्पष्ट दिखाई दिया। नानी को उषा जी बहुत पसंद आई थी।

8. अध्ययनशीलता: उषा जी मात्र अध्ययनशील ही नहीं रही है आज भी वे अपने लेखन कार्य में कार्यरत । बचपन से ही उन्हें लिखने का शौक था। "मौसेरी बहनों को कहानी रच कर सुनती थी। घर में शिक्षा का माहौल होने के बाद उन्हें पुस्तक पढ़ने का मौका मिला। उनकी मां ने उन्हें चंद्रकांता संतति ला कर दी। इसके अलावा उन्होंने चंद माधुरी जैसे उपन्यास भी पड़े।"7शुरुआत हुई बांग्ला अनुवाद से माधवी कोंकण; शशांक; आनंद मठ; उसी के साथ पढ़ने का नशा चढ़ गया .जब फतेहगढ़ में छोटी मामी की अलमारी में; प्रेमचंद; कौशिक; भगवती चरण वर्मा; आदि की पुस्तक उनके हाथ में लगी तो जैसे मुझे एक अलग कोष मिल गया|"अध्ययन के क्षेत्र में उनका मन इसी कार्य में लगता था।

9. मान सम्मान: (पुरस्कार) डॉक्टर सभापति मिश्र द्वारा लिखित कहानी विविधता ना।मक आलोचनात्मक किताब में ऐसा विवेचन किया गया है कि उषा जी को वापसी कहानी पर नहीं कहानियों का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिला है ।उन्हें यह पुरस्कार 16 फरवरी 1909 को राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देव सिंह पाटिल द्वारा नई दिल्ली में प्रदान किया गया है। उषा प्रेम वरदान है जीवन भर हिंदी साहित्य के लिए जो उल्लेखनिय योगदान दिया है। यह पुरस्कार उसी का प्रतिफल है। शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा कला और संस्कृति के क्षेत्र में महत्व योगदान के लिए उषा प्रियंवदा को सन 2008 के पद्मभूषण मोटूरी सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

10. भ्रमण शीलता : उषा जी की जीवन यात्रा का प्रवास कानपुर नगर की गलियों से लेकर दिल्ली इलाहाबाद होते हुए अमेरिका में स्थित हुआ है। परंतु वे श्रद्धा , हृदय से भारत भूमि से जुड़े रही। विदेश में रहते हुए मेरी भाषा हिंदी है। मेरा जन्म भारत में हुआ है। यह उत्तर देते पर हमेशा उनके देश प्रेमी हृदय गर्भ संतोष से भरा रहा। उषा जी कहती है| "बार-बार

भारत लौटना मेरे लिए एक अनिवार्यता है: परिवार के साथ गिरकर बैठना। सुख-दुख बांटना पुराने मित्रों से लंबे-लंबे वार्तालाप हर समय अपनी भाषा सुनने का; सुख यह सभी मुझे प्रेरणा बढ़ाता है ।अपने देश तथा भूमि के प्रति वे सदा ही द्रवित दिखाई देती है|" वही सच्ची देश प्रेमी है।

11. प्रकृति: उषा जी को केवल लिखने पढ़ने का शौक नहीं है। बल्कि अपने घर को सजाना संवारना भी उन्हें अच्छा लगता है ।उनके घर के बाहर बगीचे हैं। जहां तरह-तरह के फल फूल भी उगते है। बगीचे में बैठकर घंटे। चर्चा करने में उन्हें आनंद मिलता है ।उन्हें मौसमी फल और फूल बहुत पसंद है ।वह बता रही है वह जब भी रिटायर हो चुके तो पूरा समय अपने बगीचे की देखभाल में बिताती है ।वह उदार व्यक्तित्व की है ।उन्हें खाना इतना पसंद नहीं जितना खिलाना पसंद है। वह अपने मित्रों और पड़ोसियों के बीच सुख दुख को बुनती है। उनके दादा ने अमेरिका जाने से पहले कहा था| "तुम सदैव याद रखना तुम भारत की संतान हो ।हमेशा अपना सर अभियान से ऊंचा रखना। कभी ऐसा ना करना कि तुम्हारे देश को तुम पर लज्जा हो। तुम भारत की अनौपचारिक राजदूत और सरल हृदय में मन से विदा लेते हुए देखो। अपना लंबे बाल हरगिज़ न काटना। और सिगरेट वगैरा के चक्कर में कभी ना पढ़ना"। उषा की आत्म केंद्रित एवं आत्म प्रशंसा से मुक्त आधुनिक पीढ़ी के अनेक साहित्यकार आत्म केंद्रित नजर आते हैं। किंतु उषा जी अपने जीवन में कभी आत्म प्रशंसा की शिकार नहीं हुई। उनके अंदर के रचनाकार बालिका विद्यालय कानपुर से ही आंखें खोली । आठवीं कक्षा से कार्य के रूप में उन्होंने लेखन आरंभ किया था। लिखना उनके प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा रहा ।अपनी सफलता और प्रशंसा का ताता वह नहीं लगा।ती थी। उनकी प्रकृति शांत सरल स्वभाव की रही । वह स्वयं कहती है "मैं पिंजरे से मुक्त हुए पंछी की तरह पंख पस ।रकर खुले आकाश में थी ना कोई बंधन ना प्रबंध विवाह के उपरांत भी उनके स्वयं विचार की प्रकृति बनी रही। उनके जीवनसाथी ने भी उनकी प्रकृति की हमेशा कदर की है।

12. निडर व्यक्तित्व: बचपन से उषा जी के अंतर्मन में जो विद्रोह और आक्रोश बिंदु थे जो धीरे-धीरे प्रकट होने लगे थे। अमेरिका जाने के निर्णय के रूप में प्रस्तुत हुए। पहली बार परिवार के बड़ों की पसंद ना पसंद की परवाह न। करते हुए अमेरिका के लिए निकल पड़ी थी। उषा जी स्वभाव से शांत रहते हुए भी स्वतंत्र विचारों की रही है ।अपने जीवन के पद उन्होंने स्वयं तय किए हैं ।और इस पद पर वह दृढ़ रही है ।उनका मानना है कि "हर व्यक्ति को अपने जीवन प्रणाली निर्धारित करने का अधिकार होना चाहिए"|

इस प्रकार के विचारधारा उषा जी को पेत्रक संस्कारों से मिली है ।अतः उषा जी शायद मेरी शिक्षा और लालन-पालन इस प्रकार किया गया जिससे मुझे स्वतंत्रता मिली। विचारों की अवधारणा: व्यक्तिगत अभिव्यक्ति व्यक्त: करने का मुझे अवसर मिला था। मेरे अंतर मन में जो विद्रोह आक्रोश बिंदु थे ।धीरे-धीरे प्रकट हुए थे ।मुझे यह विचित्र लगा कि कोई पति गहने कपड़े में रुचि पत्नी पर ठोकता है। और पत्नी अपने वश में इतने ही रहे उसे स्वयं क्या करना? क्या पसंद है? वह जाने इसे ना जानकर वह कभी भी और कुछ प्रयत्न नहीं करती है। इससे स्पष्ट होता है कि उषा जी का स्वभाव स्वतंत्र शांत और गंभीर विचारों वाला, आधुनिक नारी के रूप में प्रकट होकर हमारे सामने आता है। उनके पति ने कभी भी किसी बात के लिए उन पर नहीं थोप। था। उषा प्रियंवदा के साहित्य जगत के पुनर्जन्म का उन्होंने श्री अपने स्नेल बंधु धर्मवीर भारती को दिया है। जिन्होंने उन्हें 'रुकेगी नहीं राधिका' उपन्यास लिखने के लिए वाद्य किया। और सप्त और निष्क्रिय लिखने एक बार फिर जागरूक होकर पटरी पर आ गई । उनका निडर व्यक्तित्व प्रकट होकर सामने आया। वेग और रफ्तार से आगे बढ़ता गया ।और उसने फिर बाद में कोई बाधा नहीं आई ।और उनके लेखन कार्य को बाद में कोई ना रोक पाया ।निडर व्यक्तित्व से उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति को नजदीक से देखा और भावुक महिला होने के नाते संस्कृति

से अधिक उन्हें प्रभावित किया। पर वह अपनी संस्कृति से जुड़ी रही पास जाती और भारतीय संस्कृति की तुलना करके देश-विदेश में हो रहे मूल्य विघटन का भी उन्होंने अध्ययन किया। सारी स्थिति को अपने कथा साहित्य में उजागर किया।

13. निष्कर्ष: यह महत्वपूर्ण बात है कि उषा जी ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन- अध्यापन किया, लेकिन अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण हिंदी में लिखना श्रेष्ठ माना। उनके मन में दुविधा हमेशा बनी रही। भारत और पश्चिम के बीच का संपर्क हमेशा रहा उनका कहना है, कि उनके लेखक में व्यक्तित्व की मानो गति से त्रस्त है जो अपने घर देश समाज वापस ना जा सकेगा ।उषा का यह लेखन कार्य संताप का लेखन है। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य किया है ।लेकिन प्रतिभा का कमाल अपने ही साहित्य में दर्शाया है। उषा जी को बचपन से ही किताबें पढ़ने में रुचि थी ।पारिवारिक वातावरण भी इसी प्रकार था ।लघु कथाएं इन्होंने पढ़ना प्रारंभ किया। उषा जी का पहला उपन्यास दिल्ली में श्री राम महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करते समय लिखा। छठी कक्षा पास करने के बाद गर्मी की छुट्टियों में ननिहाल में बीते। वहीं पर उन्होंने चंद माधुरी उपन्यास जैसी प्रिया पत्रिकाओं को दीमक की तरह चाट लिया । उनकी पहली कहानी बालिका विद्यालय की स्कूल पत्रिका में छपी थी ।उदासी भरी करूं और दुखद अंत के साथ तब आठवीं कक्षा में पढ़ती थी। दुख को चुपचाप सी अन्याय के बावजूद कोई प्रतिक्रिया ना दिखाना। परिस्थितियों को दो-दो कर स्वीकार कर लेना। सीमित दायरे में बंदे रहना तब तक उन्होंने यही देखा था। और यही स्थिति उनकी प्रारंभ की कहानियों में चित्रित हुई ।।यह उनके लेखक का प्रथम सोपान रहा। वह अपनी कहानियों को सरिता में प्रकाशित करने लगी ।पहली कहानी जो सरिता में छपी थी वह थी 'लाल चुनर' छात्रावास में यह कहानी आने के बाद में उल्लास का माहौल था .।इन कहानियों का प्रकाशक उन्होंने उत्साह द क्षिणा नाम से किया था। उन्होंने भारत छोड़ने के बाद एक ही वर्ष में जिंदगी और गुलाब के फूल '55 खंबे लाल दीवारें' 'फिर वसंत आया' यह किताबें प्रकाशित हुई। साहित्य के विभिन्न विधाओं में उषा जी ने लेखन कार्य किया है। उनकी प्रतिभा का कमल सबसे अधिक कथा साहित्य में दिखाई देता है। उषा जी का व्यक्तित्व निडर व्यक्तित्व के रूप में नारी की एक देश और विदेश की परिस्थितियों के अंतर्मन को दर्शाते हुए उन्होंने हिंदी लेखन कार्यों में विशेष महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. उषा प्रियंवदा के कहानियों में टूटे जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण
2. उषा प्रियंवदा की संपूर्ण कहानी की भूमिका
3. उषा प्रियंवदा की अन्य रचनाएँ

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 127-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इंद्रा स्वप्न की कहानी 'दोहे के भाव' में बालमन

डॉ. कुलदीप
सहायक प्रोफेसर हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय दुजाना

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ही एक शाखा है, जिसके अंतर्गत बालकों के व्यवहार, स्थितियां,समस्याएँ व उनसे जुड़े अन्य मुद्दों का अध्ययन किया जाता है| बाल मन बड़ा ही कोमल होता है किसी भी घटना का गहरा प्रभाव उनके मन मस्तिष्क पर पड़ता है| जिसका अर्थ है- बालक की सरलता, कोमलता, मासूमियत, कल्पना उसके मन मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं| इसी आधार पर हम किसी बच्चे को बच्चा कह सकते हैं| बालक के मन को समझने, उसे विकसित करने के लिए बाल साहित्य की रचना की जाती है| इसके लिए सबसे पहले हमें बाल मनोविज्ञान को समझने की जरूरत है, जिसके द्वारा हम बालकों के व्यवहार, उनकी परिस्थितियाँ, समस्याएँ तथा उनसे जुड़ने वाले कार्यो का अध्ययन कर सकते हैं| बालक की व्यवहारिक अनुभूतियों को किताबी ज्ञान की अपेक्षा, बालक के मन का हिस्सा बनकर अधिक मात्रा में समझा व महसूस किया जा सकता है| इसी कारण बाल साहित्य आज के युग में एक स्वतंत्र विद्या के रूप में स्थापित हो चुका है| **"गौरतलब बात है कि बच्चों पर लिखा गया साहित्य और बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य दोनों में फर्क होता है| बाल साहित्य के दायरे में बच्चों पर लिखी गई सभी रचनाएँ नहीं आती|"1** इसमें तो ऐसा साहित्य शामिल किया जाता है जो बच्चों के उत्तम विकास को मध्य नजर रख लिखा जाए, जिससे पढ़कर बच्चों के मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़े| ऐसा कहा जाता है कि बच्चे देश का भविष्य है जिसके कारण उनमें अच्छे संस्कार, उत्तम विचार प्रवाहित करने के लिए यह साहित्य लिखा जाता है| ऐसे साहित्य को बाल साहित्य कहा जाता है| बाल साहित्य बालक के मन पर गहरा प्रभाव डालता है, उसमें निहित ज्ञान को बच्चे शीघ्रता से ग्रहण करते हैं, क्योंकि वह उनकी समझ के दायरे में ही समाया होता है| **"हम जो भविष्य बच्चों को देने वाले हैं वह कैसा होगा, उसमें क्या मानवता जीवित बचेगी या दम तोड़ देगी| ये और ऐसे ही अनेक प्रश्न आज भारतीय संदर्भ में ही हमारी चिंता का विषय नहीं होना चाहिए| बल्कि विश्व के संदर्भ में भी यह चिंता होनी चाहिए|"2** दूसरा वह साहित्य है जिसके अंतर्गत बच्चों का अध्ययन किया जाता है जैसे उनकी कुंठाओं, उनकी सोच, उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों, उनकी समस्याओं को दिखाने वाला साहित्य जैसा कि प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी में बच्चें की मानसिकता को दिखाया गया है तथा मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' उपन्यास में बच्चे की कुंठा और घुटन को दिखाया गया है| ऐसे साहित्य को बच्चों पर लिखा गया साहित्य कहा जा सकता है,उसे बाल साहित्य कहना उचित नहीं है, क्योंकि बाल साहित्य बच्चों का अपना साहित्य है| यह कोई बचकाना या हल्का साहित्य नहीं कहा

जा सकता है| बाल साहित्य की भाषा बच्चों के समझ के अनुरूप होती है जिसके कारण वह उसमें निहित संपूर्ण ज्ञान को बालमन को अर्थाभाव के साथ समझ पाते हैं| इसमें बच्चों के मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान का सहज, प्रभावजनक अस्तित्व रहता है|

इंद्रा स्वप्न भी बाल साहित्य की चितेरी लेखिका हैं| उनकी कहानी आधुनिक युग में बच्चों के मन को छू लेने, प्रेरित करने, ज्ञान देने, चेतना बढ़ाने व बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए प्रसिद्ध है| उनकी ही एक कहानी 'दोहे के भाव' 'बच्चों की प्रिय कहानियाँ' नामक कहानी संग्रह में संगृहित है, जोकि वर्ष 2018 में प्रकाशित की गई थी| इस कहानी संग्रह में बच्चों के ज्ञान व मनोरंजन से संबंधित अनेकों कहानियाँ सम्मिलित है| प्रत्येक कहानी के माध्यम से लेखक बच्चों में संस्कार, नैतिकता व जिज्ञासा को पूर्ण कर रोचकता का समावेश करती हैं| इसमें बच्चों की पसंदीदा कहानी है जो बच्चों को पसंद आती हैं जिन्हें पढ़कर न केवल उन्हें मनोरंजन की अनुभूति होती है, बल्कि उनका मानसिक विकास भी होता है| 'दोहे के भाव' कहानी एक बच्चे सत्येन्द्र द्वारा पढ़े एक दोहे के अर्थ को समझने की जिज्ञासा से शुरू होती है और उस दोहे के भाव को वह जीवन की वास्तविक घटना के माध्यम से समझता है| इस कहानी में बाल मन की जिज्ञासा, कल्पनाशीलता, भावात्मकता, अनुकरण की प्रवृत्ति, नैतिकता, प्रदान की गई है| इस कहानी में सरलता और भोलेपन की झलक तथा अनुभव से सीखने की प्रवृत्ति को भी व्यक्त किया गया है|

बालमन हमेशा से ही जिज्ञासु होता है| वह कुछ ना कुछ नया ज्ञान अर्जित करने के लिए हमेशा तैयार खड़ा रहता है| वह प्रत्येक वस्तु के बारे में जानना चाहता है, समझाना चाहता है| यही जिज्ञासा इस कहानी का पात्र सत्येंद्र जाहिर करता है| वह एक दोहा पढ़ता है:-

"जो तोकू काटा बोए, तू बो उनका फूल,
तोकू फूल के फूल है, वाको है त्रिशूल|"3

अर्थात जो तुझको काटा बाय तो उसको फूल बो अर्थात जो तेरे साथ बुरा करें, तू उसके साथ अच्छा करने की कोशिश कर | वह इस दोहे के भाव को जानने का इच्छुक है| वह अपनी बड़ी दीदी से इस दोहे के अर्थ अर्थात भाव को समझना चाहता है| यह दोहा उस बच्चे के मन को छू गया है| वह लगातार इस दोहे को दोहरा रहा था| उसकी दीदी द्वारा प्रयोग किए गए प्रत्येक मुहावरे पर वह हंसता है कभी अपने दोहे को समझने की जिज्ञासा जाहिर करता है| "**आज क्या मुहावरे का कोश मिल गया दीदी,सत्येन्द्र हंसते-हंसते दुहरा हो गया| अभी एक मुहावरे की उलझन में छट पटा रहा था आपने और मुहावरे झोंक दिए|"4**

बालमन का एक अहम हिस्सा उनकी कल्पनाशीलता है, जो उन्हें अन्य वर्ग से भिन्न करती है| अक्सर देखा जाता है कि बच्चे अपनी कल्पनाओं में ही खोए रहते हैं| न जाने क्या से क्या सोचते रहते हैं| आज भी जब हम अपनी बचपन की कल्पनाओं और विचारों पर दृष्टि डालते हैं, तो हमारे मन-मस्तिष्क में हल्की-सी मुस्कुराहट छा जाती है| इस कहानी का केंद्रीय पात्र सत्येंद्र को जब अपने प्रश्नों का सही उत्तर नहीं मिलता, तो वह अपने ही ख्यालों में खोया हुआ होता है| कक्षा में भी अध्यापक जब उपस्थिति दर्ज कर रहे होते हैं| तब भी वह इस दोहे के अर्थ में ही खोया हुआ होता है| उसका साथी उसे झंझोड़ता है, तभी वह कक्षा में सावधान हो पाता है| इसी तरह जब अनिल उसे चिढाता हुआ उसके पास से निकल जाता है, तब भी वह अपने विचारों की उथल-पुथल में खोया हुआ था| बच्चे का मन उसे कल्पना के संसार में हिलोरे देता रहता है| इस तरह देखा जाता है कि बच्चे अक्सर अपनी ही कल्पनाओं में मगन, अपनी ही दुनिया में खोए हुए होते हैं| वह अक्सर अपनी नित-नई कल्पनाओं के संसार बनाते रहते हैं| उनकी कल्पना राई का पहाड़ ही नहीं चूहा, बिल्ली, हाथी और भी न जाने क्या-क्या बना सकती हैं| डा० लक्ष्मी नारायण दुबे लिखते हैं कि **बच्चों की दुनिया सर्वथा पृथक होती है| उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है| वे संस्कृति, साहित्य तथा समाज के लिए नये होते हैं|"5**

बालमन में नैतिकता अपने परिवार, अपने परिवेश से आती हैं| वह जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, जिस प्रकार की शिक्षा अपने माता-पिता, गुरुजनों से प्राप्त करता है, उसी प्रकार की नैतिकता उसमें समाहित हो जाती हैं| वह ईर्षाद्वेष के भाव सदैव अपने अंदर संजोए नहीं रखता| बाल मन बड़ा ही कोमल और सरल होता है| भले ही एक समय हो, जब वह अपने सहपाठी या साथ खेलने वाले के साथ लड़ाई-झगड़ा करें, उससे रुष्ट हो जाए, लेकिन कुछ ही समय के पश्चात वे दोनों एक-दूसरे के साथ खेलते दिखाई देते हैं| वे सभी झगड़ों को भूल एक-दूसरे के सहयोग के साथ आगे बढ़ जाते हैं| बच्चों में नैतिकता का स्तर काफी ऊँचा होता है, जब उसे दिखता है कि उसका सहपाठी या साथ खेलने वाला बच्चा मुसीबत में है, तो वह अपने झगड़े को तुरंत भुलाकर उसकी मदद के लिए आगे बढ़ जाता है| उनके झगड़े क्षणिक होते हैं| वे हर-रोज झगड़ते हैं, हर-रोज एक दूसरे के साथ खेलते हैं| बच्चों की नैतिकता का समर्थन इस कहानी के अंतर्गत किया गया है| इस कहानी में सत्येंद्र नामक बच्चें का सहपाठी अनिल था, जो उसके प्रथम श्रेणी में आने के कारण उससे रुष्ट हो गया था, जिसके कारण वह समय-समय पर जीभ निकालकर उसे चढ़ता रहता था| एक दिन उसने टांग में टांग उलझा कर उसे जोर से धक्का देकर गिरा दिया| वह भी एक बार उससे बदला लेकर गिराने की सोचता है| लेकिन उसके मन में दोहे के भाव उत्पन्न होने लगते हैं कि जो तेरे लिए कांटा बोए तो तू उसके लिए फूल बो| इसलिए वह उसको नहीं गिराता, उसके चिढ़ाने पर भी वह प्रतिक्रिया नहीं करता और जब अनिल कीचड़ के गड्ढे में गिर जाता है, तो वह उसे सहायता देकर बाहर निकलता है| कहानी के अंत में अनिल के मन के कटु भाव भी समाप्त हो जाते हैं, वह उसे धन्यवाद पत्र के साथ एक कीमती पैन अपनी बहन के हाथों उसके लिए भिजवाता है| **"अनिल की बहन के हाथ में एक कीमती पैन के साथ धन्यवाद आभार की चिट सत्येन्द्र के नाम के साथ चमक रही थी| अपनी दीदी की हंसी के साथ सुमति सत्येंद्र को दोहे के भाव समझ में आ गए थे|"6**

अत: बालमन केवल एक शब्द ही नहीं बल्कि बच्चों की पूरी भावात्मक दुनिया है, जिसमें उनकी कल्पना, जिज्ञासा, निश्चलता, सादगी, अनुकरण प्रवृत्ति, खुशी, उनकी खेल प्रवृत्ति, समाहित होती है| यह जीवन की सबसे कोमल और संवेदनशील अवस्था का परिचायक है, जो ईष्या-द्वेष, छल-कपट से दूर निर्मल सरिता के समान शुद्ध व पारदर्शी होता है| इसी कारण वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिक और शिक्षा शास्त्रियों द्वारा इसको समझने और व्यक्त करने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं| बाल साहित्य बालमन के अनुरूप लिखा गया साहित्य है| बाल साहित्य लिखने वाले लेखक साहित्य के साथ जुड़ने के साथ-साथ बालक के मन, मस्तिष्क, उसकी भावनाओं, इसकी क्रियाओं, उसके विचारों से जुड़ते हैं, तभी जाकर यह साहित्य अपना रूप ग्रहण करता है| साहित्यकार बाल मन को चित्रित करने के लिए शब्द देते हैं।मनोवैज्ञानिक उनके विकास के नियम बनाते हैं तथा शिक्षा शास्त्री उनमें ज्ञान का समावेश कर भविष्य के लिए तैयार करते हैं| यदि बाल मन को सही दिशा और आकर मिले तो उज्ज्वल भविष्य की कामना की जा सकती है| बाल साहित्य में बच्चों की समस्याओं को देख-परख कर नहीं बल्कि उनके स्वच्छ, सुदृढ़ विकास से संबंधित महत्वपूर्ण बातों को शामिल कर उस पर सकारात्मक प्रभाव डालने का कार्य किया जाता है| माननीय विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण वह सुखद अवस्था बचपन है यह भावी जीवन की आधारभूमि है, इस आधारभूमि को सुदृढ़ बनाने का कार्य बाल साहित्य करता है|

संदर्भ ग्रंथ

1. संपादक राजीव रंजन गिरि, प्रेमचंद का संपूर्ण बाल साहित्य, प्रथम संस्करण 2022, अनन्य प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-9
2. विष्णु शर्मा,पंचतंत्र, पृष्ठ संख्या-11
3. इंद्रा स्वप्न, बच्चों की प्रिय कहानियाँ, एन० एन० पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या-62

4. वही, पृष्ठ संख्या-62
5. डॉक्टर लक्ष्मी नारायण दुबे,साहित्य परिचम, 1980, पृष्ठ संख्या-161
6. इंद्रा स्वप्न, बच्चों की प्रिय कहानियाँ, एन० एन० पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या-65

मोबाइल-9728144001

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 131-134
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तरुण भटनागर के उपन्यास 'बेदावा' में किन्नर समाज

मनीषा देवी
शोधार्थी (हिन्दी-विभाग),
शोध-निर्देशिका
डॉ. कृष्णा जून
प्रोफेसर (हिन्दी-विभाग),
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सृष्टि निर्माण में दो आधार स्तंभों स्त्री और पुरुष की भूमिका है। हमारा समाज इन्हीं स्तंभों पर टिका है। इनका प्रमुख कार्य है, आपसी अनुदान से वंश परंपरा के द्वारा मानव जाति का अस्तित्व बनाए रखना। हमारे समाज में स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त एक और लिंग है जो अस्तित्व में पाया जाता है। यह लिंग न तो स्त्री वर्ग में गिना जाता है और न ही पुरुष वर्ग में, यह वर्ग न तो संबंध बन सकता है और न ही गर्भधारण करने की क्षमता रखता है। इस वर्ग को किन्नर कहा जाता है। जनसामान्य में इन्हें हिजड़ा, नपुंसक, खोजा, चक्का आदि कई उपनामों से जाना जाता है **'समाज में इन्हें तृतीय लिंगी, हिजड़ा, खोजा, नपुंसक, किन्नर, छक्का, शिखंडी आदि कई उपनामों से जाना जाता है। किन्नर या हिजड़ों से अभिप्राय उन लोगों से है जिनके जननांग पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते जो पुरुष होकर भी स्त्री रूप में रहने के लिए विवश होता है'1** अर्थात इस वर्ग में उन व्यक्तियों को भी शामिल किया जाता है जिनका जन्म तो स्त्री या पुरुष रूप में हुआ है लेकिन उस रूप में वह स्वयं को असहज महसूस करते हैं। उदाहरण के रूप में जब एक व्यक्ति पुरुष होते हुए भी स्त्री प्रवृत्तियों का अनुपालन करता है या स्त्री होने पर पुरुष प्रवृत्तियों की अनुपालना करती है।

आदर्श हिंदी शब्दकोश में इन्हें **(सं.पुं.) देवयोनी विशेष'2** अर्थात इन्हें स्त्री या पुरुष से अलग विशेष रूप में रखा जाता है।

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह का कहना है कि **'किसी व्यक्ति के पुरुष या स्त्री के रूप में पहचाने या परिभाषित किए जाने के लिए स्पष्ट यौनांग होना आवश्यक है। इसके लिए जननांग की अनियमिता महत्वपूर्ण है। ऐसे मानव हिजड़ा कहे जाते हैं जो लैंगिक रूप से न नर होते हैं न मादा।'3**

ज्योतिष विज्ञान के अनुसार **'वीर्य बढ़ने से पुरुष (पुत्र) उत्पन्न होते हैं और खून बढ़ने से स्त्री (कन्या) पैदा होती है। लेकिन जब वीर्य और खून समान मात्रा में हो तो किन्नर पैदा होता है।'4**

समाज के आधार स्तम्भ स्त्री और पुरुष प्रकृति जन्य हैं। इन दोनों लिंगों के अलावा एक और लिंग समाज के अस्तित्व में है जिसे तृतीय लिंग अर्थात थर्ड जेंडर के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह भी हमारे सभ्य समाज का ही एक अंग है। समाज में यह एक ऐसा वर्ग है जिसे हमेशा से ही समाज ने हाशिए पर रखा है।

समाज इन्हें हीन दृष्टि से देखता है। किन्नर शब्द सुनते ही हमारे मन मस्तिष्क में एक ऐसे मानव की छवि उत्पन्न होती है। जिसकी चाल इठलाती हुई, गहनों, चमकीले कपड़ों और चेहरे पर बहुत सारा मेकअप सजा हुआ होता है। वह घरों में बच्चों के जन्मोत्सव, शादी के अवसरों पर या अन्य कार्यकर्मों में नाच- गाना गाते हैं और मुहँ मांगी रकम मांगते हैं। यदि उनकी इच्छा पूर्ण नहीं होती तो गाली-गलौज पर भी उतर आते हैं। समाज में यह भी मानना है कि शुभ कार्य में उनकी दुआ बड़ी महत्वपूर्ण होती है। उनकी दुआ का असर बहुत अधिक होता है। इस प्रकार समाज की अलग इकाई के रूप में इनकी पहचान की जाती है। समाज में इनको घृणित नजरों से देखा जाता है। हर कोई इनसे बचने की कोशिश करता है। यद्यपि न्यायालय ने इन्हें 'थर्ड जेंडर' या 'तीसरे लिंग' के रूप में मान्यता प्रदान की है। लेकिन समाज में लोग इन्हें सम्मान नहीं देते, समाज की मुख्य धारा से इन्हें विलग कर दिया गया है। इनकी स्थिति दयनीय हैं। समाज उनके प्रति नकारात्मक रवैया को अपनाता है।

किन्नरों के जीवन संघर्ष, उनकी मनोभावनाओं को उजागर करने व समाज में उनके प्रति चेतना जगाने का प्रबल माध्यम साहित्य है। लेखक तरुण भटनागर का उपन्यास **'बेदावा'** किन्नरों के प्रति समाज में चेतना जगाने वाला उपन्यास है। यह उपन्यास 1920 ई. में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह एक प्रेम कथा है, जिसमें अपर्णा इस उपन्यास के केन्द्र में है। उसकी जिंदगी में तीन अलग-अलग तरह के पुरुष पात्र आते हैं। प्रथम जीवेश जो अपर्णा से पागलों की तरह प्रेम करता है।उसके देखने मात्र से ही वह खौफ़ खाती है। दूसरा सुधीर, जो पूर्ण रूप से नाबिना है। समाज की सोच को दरकिनार कर उससे वह अंत में शादी कर लेती है। इस उपन्यास का तीसरा पुरुष पात्र अदीब जो एक किन्नर है उसी के माध्यम से हम किन्नरों की मनोभावनाओं, उनके दर्द, उनकी पहचान की समस्या, माता-पिता की ऐसे बच्चों से आशा तथा उनकी सोच, समाज की सोच आदि पर चर्चा करेंगें।

पहचान की समस्या- किन्नरों के समक्ष सबसे प्रबल समस्या इनकी पहचान की है। समाज में इनको अपनी पहचान छिपाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसके लिए कई बार घर वाले दबाव डालते है, तो कई बार स्वयं इनमें समाज का सामना करने की क्षमता नहीं होती। जिसके कारण यह समाज से अपनी वास्तविकता को छिपाते हैं। पहचान छिपाने का सबसे प्रमुख कारण समाज में इनको हीन दृष्टि से देखा जाना है। इनके अस्तित्व का पता चलने पर समाज इन्हें स्त्री या पुरुष के रूप में रहने की इजाजत नहीं देता। इन्हें समाज से विलग कर दिया जाता है। लोग इन्हें संकीर्ण दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए यह लोग अपनी पहचान को छुपाते हैं। उपन्यास में इसी मानसिकता से ग्रसित अदीब समाज के समक्ष अपनी पहचान को छिपाने को मजबूर है। वह समाज में एक लड़के के रूप में जीवन जी रहा है। लेकिन उसकी भावनाएं लड़की से अधिक मेल खाती है। उस पर परिवार का भी दबाव है। अपर्णा उससे बेइंतहा मोहब्बत करती है। वह उसे पाना चाहती है। अदीब को भी वह अच्छी लगती है, लेकिन उसे उस रूप में वह प्रेम नहीं कर सकता। वह अपर्णा से पहले वादा कर लेता है कि इस विषय में किसी को पता न चल पाए। वह कहता है कि **'क्योंकि दुनिया में तुम तीसरी शख्स होगी जो यह बात जान पाएगी... और इस बात का गोपनीय बने रहना बहुत जरूरी है... अगर तुमने वादा नहीं किया तो मैं तुम्हें यह बात नहीं बता पाऊँगा... पहले वादा...।'5** जब अपर्णा अदीब से वादा करती है तो वह अपनी वास्तविक पहचान के बारे में उसे बताता है। वह स्वयं को किन्नर के रूप में उसके सामने स्वीकार करता है।

माता-पिता की इच्छा- कुछ माता-पिता किन्नर बच्चा पैदा होने पर उसे त्याग देते हैं। उस बच्चें को किन्नरों को दे दिया जाता है, जिससे वह नाच -गाना कर शादी-ब्याह जैसे अवसरों से मांग कर अपना पेट भरता है। लेकिन इसके विपरीत समाज में कुछ ऐसे भी माता-पिता हैं, जो ऐसा नहीं कर पाते वह अपनी औलाद को नहीं त्यागते। लेकिन वे समाज से बचकर अपनी औलाद का पालन पोषण करते हैं। वे समाज के सामने अपने बच्चों की असल पहचान को छिपाते हैं। वह अपने बच्चें को समाज में पूर्ण पुरुष या पूर्ण स्त्री के रूप में सामने लाते हैं। उन्हें अपनी इच्छा अनुसार बनाना चाहते हैं। वह अपने बच्चों की हकीकत को स्वीकार नहीं कर पाते और कई बार डॉक्टरी इलाज के

अनुरूप उन्हें अपनी इच्छा अनुसार बनाना चाहते हैं। **'बेदावा'** उपन्यास में अदीब के पिता उसे लड़का बनना चाहते थे, जबकि उसे लड़कियों के साथ रहना, उनके कपड़े, उनकी खुशबू, गहने, जेवर और उनके साथ रहना पसंद था उसके पिता ने एक मोटी रकम देकर उसके तीन ऑपरेशन करवा दिए। जिसमें उसके कुछ नाजुक अंगों को काट दिया गया और उनके स्थान पर नए अंगों को लगाया गया। उसे लड़कों के हार्मोंस दिए गए। वह कहता है **'जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ मेरे अब्बू मुझे लड़का बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि मेरे जिस्म में लड़कियों के जो हिस्से हैं उन्हें हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया जाए। इस तरह मेरे तीन ऑपरेशन हुए। हर बार मेरे जिस्म का कोई अंग निकाल गया, कोई अंग जोड़ा गया'6** इस प्रकार अदीब के पिता उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे लड़का बनाना चाहते थे। दूसरा उसके माता-पिता चाहते थे कि उनके बेटे का सच दुनिया में किसी को न पता चले। इसलिए उसकी सख्त हिदायत थी कि इस विषय में वह किसी को कुछ न बताएं। वह बताता है कि **'मुझे सिखाया गया कि यह बात हमेशा गोपनीय रहे कि मैं क्या हूँ। मुझे मेरे अम्मी-अब्बू ने हर पल खबरदार किया कि यह बात कभी किसी को पता न चले... कभी नहीं'7**

किन्नर का दर्द- समाज में लड़का-लड़की या स्त्री-पुरुष और किन्नर में जो अंतर है। वह प्राकृतिक है। **'यह प्राकृतिक लिंग भेद प्रकृति ने बनाया है और यह भेद हर परिवार, समाज और देश में एक-सा होता है, यानी शारीरिक रूप में लड़का हर जगह लड़का है और लड़की हर जगह लड़की।'8** लिंग असमानता प्राकृतिक होने पर भी किन्नर को ही क्यों समाज में हीन दृष्टि का सामना करना पड़े? इसका एक ही कारण हो सकता है, संकीर्ण मानसिकता। समाज में किन्नरों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। लेकिन इसका उनके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका ख्याल भी नहीं किया जाता। उनकी प्राकृतिक संरचना इस प्रकार की है तो इसमें उनका क्या दोष? कई बार तो परिवार वाले भी इनकी भावनाओं को नहीं समझते। **'बेदावा'** उपन्यास में अदीब के परिवार वाले ही अपने बच्चों की भावनाओं को नहीं समझ पाते। बाकी समाज से क्या आशा की जा सकती है? उसके बार-बार ऑपरेशन होते हैं, जिसमें उसके नाजुक अंग काटे जाते हैं, उनकी जगह दूसरे अंग लगाए जाते हैं। वह अपनी इस तकलीफ को अपर्णा के समक्ष जाहिर करते हुए कहता है कि **'जब आप जवान हो रहें हों, जब इश्क़ की कोई मरगिल्ली सी चाहत आपमें घर कर रही हो तब उन अंगों का काटा जाना एक बेहद खौफनाक-सी बात थी... ख्याल करता हूँ तो कैसा तो लगता है...'9** दूसरा वह लड़की बनना चाहता था। उसकी भावनाएं लड़की से मैच करती थी। लेकिन उसकी भावनाओं के विरुद्ध उसे लड़का बनाया जाता है। उसे मेल हार्मोंस दिए जाते हैं जिससे वह न तो लड़का बन पाता है और न ही लड़की। **'हर जिस्म में कुछ बेहद नाजुक अंग होते हैं। मांस और तंत्रिकाओं से बने अंग। उन अंगों से लिपटी होती है उस जिस्म की सबसे अहम् संवेदना।'10** इस तरह अदीब की संवेदनाएं अपने अंगों के विपरीत हो गई थी। माता-पिता ने तो समाज की नजरों में उसे लड़का बना दिया था। लेकिन वास्तविक रूप में वह नहीं बन पाया।

चिकित्सा का प्रभाव- किन्नर को पूर्ण स्त्री या पूर्ण पुरुष बनाने में आज हमारे साइंस ने उन्नति कर ली है। डॉक्टर उनकी जांच कर बता देते हैं कि उनमें क्या बदलाव संभव हो सकता है। डॉक्टर के अनुसार सही सलाह, सही इलाज किया जाए तो किन्नर भी पूर्ण स्त्री या पूर्ण पुरुष बन सकते हैं। लेकिन कई बार माता-पिता प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध साइंस का प्रयोग करते हैं। इसके लिए चाहे जितने पैसे खर्च हो वे लगाते हैं। डॉक्टर भी लालच में आकर माता-पिता की इच्छा अनुसार उनका रूप परिवर्तन करने की कोशिश करते हैं। लेकिन ऐसे में वह किन्नर बच्चा पिसता है। चिकित्सीय उपचार के पश्चात उसकी भावनाएं उसके शरीर के अंगों के विपरीत होती चली जाती हैं। ठीक ऐसा ही उपन्यास **'बेदावा'** में होता है। अदीब के माता-पिता उसे लड़का बनना चाहते थे। डॉक्टर जोसेफ ने पहले ही कह दिया था कि वह लड़की तो आसानी से बन सकता है पर लड़का नहीं। लेकिन उसके बावजूद उसके पिता उसे लड़का बनाने की जिद लिए थे। डॉक्टर जोसेफ ने उन्हें समझाया था। लेकिन उसके पिता ने अस्पताल को

मोटी रकम अदा कर दी। जिससे पूरा स्टाफ तैयार हो गया और उसके ऑपरेशन होने शुरू हो गए। उसे पुरुष हारमोंस दिए जाने लगे। हर ऑपरेशन के बाद डॉक्टर जोसेफ को मन ही मन अफ़सोस होता। वह उस बच्चें की भावनाओं, उसके शरीर में बदलाव पर विचार करता न जाने, वह क्या बन पाया है, लड़का, लड़की या कुछ भी नहीं। **'डॉक्टर जोसेफ का मन अफ़सोस से भर उठता, एक रंज उनके ज़ेहन में चिहुँकता- राम जाने वह क्या बन गया होगा, शायद थोड़ा लड़का, शायद थोड़ी लड़की'11** उस बच्चें के विषय में सोचकर डॉक्टर जोसेफ को स्वयं पर घिन आने लगी। इससे दुखी होकर उन्होंने एक दिन यह काम बंद कर दिया और नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

निष्कर्ष- अतः हम कह सकते हैं कि समाज में किन्नर इतने मजबूर है कि वह अपनी जिंदगी अपने हिसाब से भी नहीं चला पाते। उन्हें समाज की घृणा का सामना करना पड़ता है। जिससे बचने के लिए परिवार को अपने बच्चों को इस रूप में अपनाने में शर्म महसूस होती है। किन्नरों को समाज में पग-पग पर लानत सहनी पड़ती है। उनकी भावनाओं की कदर नहीं की जाती, उनके दर्द को महसूस नहीं किया जाता। आज समाज की सोच में बदलाव की आवश्यकता है। किन्नर को भी इंसान समझने की जरूरत है। यद्यपि न्यायालय में उनके लिए सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग करने व इन्हें समान अधिकार देने के लिए भी प्रावधान किए गए हैं। लेकिन अब भी जरूरत है कि समाज में बदलाव हो। समाज में किन्नरों के प्रति सोच बदलेगी, तभी ये लोग भी बेहतर जिंदगी जी पाएंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

1. **डॉ. देवयानी महिड़ा, किन्नर साहित्य: व्यथा, यातना और संघर्ष, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर, 2019, पृष्ठ संख्या-13**
2. **संपादक प्रोफेसर रामचंद्र पाठक, आदर्श हिंदी शब्दकोश, श्री गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, 2004, पृष्ठ संख्या-117**
3. **संपादक डॉ. विजेंद्रप्रताप सिंह, रविकुमार गोंड, भारतीय साहित्य और समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, पृष्ठ संख्या -18**
4. **डॉ. देवयानी महिड़ा, किन्नर साहित्य: व्यथा, यातना और संघर्ष, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर, 2019, पृष्ठ संख्या-14**
5. **तरुण भटनागर, बेदावा, पृष्ठ संख्या- 93**
6. **वही, पृष्ठ संख्या- 93**
7. **वही, पृष्ठ संख्या- 94**
8. **डॉ. जितेंद्र भगत, जेंडर की समस्या और समकालीन महिला- उपन्यासकार, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2015 प्रश्न संख्या-12**
9. **तरुण भटनागर, बेदावा, पृष्ठ संख्या- 93**
10. **वही, पृष्ठ संख्या- 156**
11. **वही, पृष्ठ संख्या- 158**

मोबाइल_8307527972

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 135-141
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झारखण्ड में मातृभाषा आधारित शिक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मुन्ना राम महतो
शोधार्थी
शिक्षा विभाग, झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राँची

सारांश (Abstract)

झारखण्ड एक बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक राज्य है, जहाँ संथाली, उराँव, मुंडारी, हो, खड़िया, कुड़ुख, खोरठा, नागपुरी, कुरमाली जैसी अनेक मातृभाषाएँ प्रचलित हैं। शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास की नींव होती है। मातृभाषा वह भाषा होती है जिसे बच्चा जन्म के बाद सबसे पहले अपने परिवेश से सीखता है और जिसके माध्यम से वह अपने विचारों, भावनाओं तथा अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। जब शिक्षा इसी भाषा के माध्यम से दी जाती है तो विद्यार्थी के लिए न केवल विषयवस्तु को समझना सरल होता है बल्कि उसमें रचनात्मकता, आत्मविश्वास और सहभागिता की भावना भी विकसित होती है। शिक्षा का माध्यम जितना सहज और बच्चों की समझ के निकट होगा, सीखने की प्रक्रिया उतनी ही प्रभावी होगी। इस संदर्भ में मातृभाषा आधारित शिक्षा का महत्व अत्यधिक है। यूनेस्को, यूनिसेफ़ और अनेक शिक्षा विदों ने प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा को माध्यम बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

शिक्षा व्यवस्था में मातृभाषा का प्रयोग विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषा-आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में झारखण्ड में मातृभाषा आधारित शिक्षा की स्थिति, चुनौतियाँ, प्रभाव, सरकारी नीतियाँ और भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा विद्यार्थियों की समझ और शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाती है, किन्तु इसके समक्ष संसाधनों की कमी, शिक्षकों का अभाव और सामाजिक दृष्टिकोण जैसी चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

कुंजी शब्द – झारखण्ड, मातृभाषा, विविधता, दृष्टिकोण, चुनौती

प्रस्तावना (Introduction)

भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश में मातृभाषा शिक्षा का आधार स्तंभ है। इस बहुभाषी देश में शिक्षा का माध्यम क्या हो, सदैव बहस का विषय रहा है। झारखण्ड भारत के पूर्वी भाग में स्थित एक राज्य है। यह भारत का 28 वाँ राज्य के रूप में उदृत हुआ है। यह राज्य अपनें जंगलों, झरनों, पहाड़ियों, और पवित्र स्थलों के लिए जाना जाता है। यहाँ भूगोलिक विविधता के साथ ही साथ भाषाई, सांस्कृतिक, जातीय एवं जनजातीय विविधताएँ पायी जाती है। झारखण्ड अपनी अनुठी संस्कृति, विशिष्ट चित्रकला, परम्पराओं और त्योहारों के लिए जाना जाता है। यह राज्य अपनी जनजातीय संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। झारखण्ड के जनजातियों की अपनी अनूठी भाषा, नृत्य, संस्कृति,

कला और शिल्प है। यहाँ की अधिकारिक भाषा हिंदी है, किन्तु कई जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाएँ उपयोग की जाती है। जिनमें मुख्यतः- संताली, कुडुख, मुंडारी, हो, खड़िया, कुरमाली, खोरठा, नागपुरी, और पंचपरगनिया है।

भाषा विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है, जो जन्म के पूर्व ही आरंभ हो जाती है और जीवन के प्रारंभिक वर्षों में तीव्र गति से प्रगति करती है। शिशु जन्म से पहले ही ध्वनियों को सुनने की क्षमता विकसित कर लेता है और जन्म के बाद वह ध्वनि प्रतिक्रिया, अनुकरण और सामाजिक बातचीत के माध्यम से भाषा सीखना शुरू करता है। यह विकास न केवल जैविक तथ्यों पर निर्भर करता है, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, पारिवारिक पृष्ठभूमि, अभिभावकों की संवादशीलता, शिक्षण पद्धतियों तथा डिजिटल माध्यमों का भी इस पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

मातृभाषा वह भाषा होती है जिसे बच्चा जन्म के बाद सबसे पहले अपने परिवेश से सीखता है और जिसके माध्यम से वह अपने विचारों, भावनाओं तथा अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। जब शिक्षा इसी भाषा के माध्यम से दी जाती है तो विद्यार्थी के लिए न केवल विषयवस्तु को समझना सरल होता है बल्कि उसमें रचनात्मकता, आत्मविश्वास और सहभागिता की भावना भी विकसित होती है। संविधान के अनुच्छेद 350(A) में स्पष्ट प्रावधान है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में देने का प्रयास होना चाहिए। शिक्षा आयोगों (कृष्णन आयोग 1948–49, कोठारी आयोग 1964–66) ने भी इस पर बल दिया है।

नई शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की अनुशंसा की गई है। झारखण्ड, जहाँ 32 से अधिक अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती है और यहाँ अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ बोली जाती हैं,जिनमें मुख्यतः इसीलिए मातृभाषा-आधारित शिक्षा का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह सांस्कृतिक हस्तांतरण और सामाजिक विकास का माध्यम भी है। मातृभाषा में दी जाने वाली शिक्षा बच्चों को सीखने की सहजता, आत्मविश्वास और सांस्कृतिक पहचान प्रदान करती है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

झारखण्ड में मातृभाषा आधारित शिक्षा पर कई शोध हुए हैं। यहाँ कुछ प्रमुख शोध और उनके निष्कर्ष प्रस्तुत हैं:

कुमार और सहाय (2015): झारखण्ड के आदिवासी क्षेत्रों में मातृभाषा आधारित शिक्षा से बच्चों की प्रारंभिक गणित और भाषा कौशल में सुधार पाया गया।

सिंह (2017): मातृभाषा आधारित शिक्षण से बच्चों में स्कूल आने की प्रेरणा और नियमित उपस्थिति बढ़ी।

राय और मंडल (2018): आदिवासी भाषा में पाठ्यक्रम होने से सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान मजबूत हुई।

शर्मा (2019): मातृभाषा आधारित शिक्षा में संसाधनों की कमी और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी सबसे बड़ी बाधा है।

NEP 2020 आधारित अध्ययन (2021): प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में देने से बच्चों के संज्ञानात्मक विकास और भाषा कौशल में वृद्धि होती है।

NUEPA / NEUPA (2014) – Multilingual Education in India: Contexts and Prospects में आदिवासी व बहुभाषी क्षेत्रों (झारखण्ड, ओडिशा, छत्तीसगढ़) पर फील्ड स्टडी किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि मातृभाषा माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा देने पर ड्रॉपआउट घटता है और बच्चों में सीखने की उपलब्धि बढ़ने की पुष्टि किया गया।

वायगोत्स्की (Vygotsky) का "सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत" बताता है कि सीखना भाषा और सामाजिक संदर्भ के माध्यम से होता है। पियाजे (Piaget) ने भी इस बात पर जोर दिया कि बच्चा अपनी परिचित भाषा में ही अनुभव और ज्ञान को संरचित करता है।

यूनेस्को (1953, 2003) ने शिक्षा में मातृभाषा के प्रयोग को बाल-शिक्षा के लिए सर्वश्रेष्ठ माध्यम बताया।

एनसीएफ (2005) और एनईपी (2020) में मातृभाषा/स्थानीय भाषा में प्रारम्भिक शिक्षा पर बल दिया गया। किन्तु दूसरी ओर शिक्षक-प्रशिक्षण, संसाधन और सामाजिक दृष्टिकोण जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं।

साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि मातृभाषा आधारित शिक्षा लाभकारी है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई समस्याएँ और बाधाएँ हैं।

अनुसंधान की आवश्यकता (Need of the Study)

- झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में बहुभाषिक परिवेश के कारण विद्यार्थियों को सीखने में कठिनाई होती है।
- मातृभाषा-आधारित शिक्षा से विद्यार्थियों की उपलब्धि स्तर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका विश्लेषण आवश्यक है।
- नीति-निर्माताओं और शिक्षा-विशेषज्ञों के लिए यह अध्ययन मार्गदर्शक होगा।

अनुसंधान प्रश्न (Research Questions)

- क्या झारखण्ड में मातृभाषा-आधारित शिक्षा की वर्तमान स्थिति ठीक है
- क्या विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों पर मातृभाषा के प्रयोग का प्रभाव पड़ता है
- क्या मातृभाषा-आधारित शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ और अवसरें है
- क्या मातृभाषा-आधारित शिक्षा बच्चों की संज्ञानात्मक विकास हेतु आवश्यक है

उद्देश्य (Objective)

- झारखण्ड में मातृभाषा-आधारित शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन।
- विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों पर मातृभाषा के प्रयोग के प्रभाव का विश्लेषण।
- मातृभाषा-आधारित शिक्षा के समक्ष चुनौतियों और अवसरों की पहचान।
- मातृभाषा-आधारित शिक्षा को सुदृढ़ करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

झारखण्ड की भाषाई विविधता

झारखण्ड भारत का एक ऐसा राज्य है जहाँ भाषाई विविधता अत्यधिक है। यहाँ आर्य, द्रविड़ और ऑस्ट्रो-एशियाटिक तीनों भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं।

आर्य भाषा परिवार – हिंदी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुरमाली, भोजपुरी, मगही इत्यादि।

द्रविड़ भाषा परिवार – कुरुख (उराँव), मलतो।

ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार – मुंडारी, संथाली, हो, खड़िया, कुड़ुख, बिरजिया, बिंझिया, पहाड़िया इत्यादि।

जनगणना 2011 के अनुसार झारखण्ड की आबादी का लगभग 68% लोग हिंदी और उसकी उपभाषाएँ (नागपुरी, खोरठा, कुरमाली, पंचपरगनिया आदि) बोलते हैं, जबकि 32% लोग आदिवासी भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

प्रमुख भाषाएँ

- नागपुरी – यह झारखण्ड की प्रमुख संपर्क भाषा है। इसे सदान समुदाय और अन्य लोग व्यापक रूप से बोलते हैं।
- खोरठा – हजारीबाग, कोडरमा, गिरिडीह आदि जिलों में बोली जाती है।
- पंचपरगनिया – रांची और आसपास के क्षेत्रों की भाषा है।
- संथाली – संथाल परगना क्षेत्र की प्रमुख जनजातीय भाषा, जिसे 2003 से भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है।
- मुंडारी – मुंडा समुदाय की भाषा, मुख्यतः रांची, खूंटी, पश्चिम सिंहभूम क्षेत्रों में बोली जाती है।
- कुरुख (उराँव) – द्रविड़ परिवार की भाषा, रांची, लोहरदगा, गुमला और पलामू जिलों मेंपायी जाती है।
- हो – सिंहभूम क्षेत्र की प्रमुख भाषा है।
- खड़िया – छोटानागपुर के दक्षिणी हिस्सों में बोली जाती है।
- कुडमाली – यह कुडमी समुदायों में अत्यधिक बोली जाती है यह राँची, रामगढ़, बोकारो, धनबाद, हजारीबाग में बोली जाती है।

झारखण्ड में मातृभाषा आधारित शिक्षा की वर्तमान स्थिति और चुनौतियाँ

झारखण्ड की शिक्षा व्यवस्था ऐतिहासिक रूप से हिंदी और अंग्रेजी आधारित रही है। लेकिन यहाँ के आदिवासी और स्थानीय भाषाभाषी बच्चों की वास्तविक मातृभाषा अलग है। शिक्षा और मातृभाषा के बीच इस अंतर ने लंबे समय तक शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित किया। नई शिक्षा नीति (NEP 2020) और राज्य सरकार की पहल से अब मातृभाषा आधारित शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

वर्तमान स्थिति

पाठ्यपुस्तकें और शिक्षण सामग्री

- झारखण्ड शिक्षा परियोजना परिषद (JEPC) ने संथाली, मुंडारी, कुरुख (उराँव), हो और खड़िया भाषाओं में कक्षा 1 से 3 तक के लिए पुस्तकें तैयार कराई हैं।
- इन पुस्तकों में स्थानीय लोककथाएँ, गीत, कहावतें और दैनिक जीवन के उदाहरण शामिल किए गए हैं ताकि बच्चे अपनी संस्कृति से जुड़ाव महसूस करें।

शिक्षकों की नियुक्ति

- कुछ जिलों में मातृभाषी शिक्षकों की नियुक्ति की गई है।फिर भी शिक्षकों की संख्या सीमित है और प्रशिक्षण अपर्याप्त है।

भाषा का प्रयोग

- कक्षा 1 और 2 में मातृभाषा का प्रयोग बढ़ा है, लेकिन कक्षा 3 से हिंदी और अंग्रेजी का दबाव अधिक हो जाता है।
- शहरी और अर्ध-शहरी विद्यालयों में मातृभाषा के प्रयोग की स्थिति और भी कमजोर है।

नीति और योजनाएँ

- NEP 2020 ने मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा पर बल दिया है।
- झारखण्ड सरकार ने "मातृभाषा शिक्षा कार्यक्रम" के तहत चयनित जिलों में पायलट प्रोजेक्ट शुरू किया है।

सकारात्मक प्रभाव

- सीखने में सरलता – जिन विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षा लागू की गई, वहाँ बच्चों की भागीदारी और समझ में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।
- सांस्कृतिक जुड़ाव – बच्चे अपनी कहानियाँ, गीत और परंपराएँ पढ़ाई का हिस्सा पाकर गर्व महसूस करते हैं।
- ड्रॉप-आउट दर में कमी – प्रारंभिक कक्षाओं में विद्यालय छोड़ने की दर अपेक्षाकृत कम हुई।
- द्विभाषिक दक्षता – मातृभाषा का आधार मजबूत होने से बच्चे आगे चलकर हिंदी और अंग्रेजी भी बेहतर ढंग से सीख पा रहे हैं।

चुनौतियाँ

शिक्षक से जुड़ी चुनौतियाँ

- प्रशिक्षित मातृभाषी शिक्षकों की कमी है।
- अधिकांश शिक्षक हिंदी में ही पढ़ाने के आदी हैं।
- बहुभाषी कक्षाओं में शिक्षक सभी बच्चों की मातृभाषा को शामिल नहीं कर पाते।

संसाधन और सामग्री

- कई भाषाओं में पर्याप्त पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं।
- डिजिटल माध्यम से मातृभाषा शिक्षा सामग्री अभी सीमित है।

सामाजिक मानसिकता

- माता-पिता चाहते हैं कि बच्चे हिंदी या अंग्रेजी में पढ़ें ताकि नौकरी और उच्च शिक्षा में लाभ मिले।
- मातृभाषा में पढ़ाई को कई लोग "कमतर" मानते हैं।

प्रशासनिक कठिनाइयाँ

- भाषा नीति का सही क्रियान्वयन जिलों और विद्यालय स्तर पर कमजोर है।
- निगरानी और मूल्यांकन तंत्र मजबूत नहीं है।

संभावित समाधान /सुझाव

नीति स्तर पर

- राज्य और केंद्र सरकार को द्विभाषिक/बहुभाषिक शिक्षा नीति को औपचारिक रूप से लागू करना चाहिए।
- मातृभाषा को प्रारंभिक स्तर पर माध्यम और हिंदी/अंग्रेजी को क्रमिक रूप से जोड़ने की नीति अपनानी चाहिए।
- शिक्षा नीतियों में झारखण्ड की भाषाई विविधता को विशेष महत्व दिया जाए।

शिक्षक प्रशिक्षण

- स्थानीय भाषाओं को जानने वाले शिक्षकों की नियुक्ति और प्रशिक्षण सुनिश्चित किया जाए।
- शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में मल्टीलिंगुअल पेडागॉजी को शामिल किया जाए।
- प्रशिक्षकों को क्षेत्रीय सांस्कृतिक ज्ञान भी दिया जाए ताकि शिक्षण अधिक प्रासंगिक हो सके।

पाठ्य सामग्री और तकनीक

- पाठ्यपुस्तकों को क्षेत्रीय भाषाओं में विकसित किया जाए और उनमें लोककथाएँ, गीत, खेल, और लोकजीवन से जुड़े उदाहरण जोड़े जाएँ।
- ई-लर्निंग और मोबाइल एप्लिकेशन में क्षेत्रीय भाषाओं को शामिल किया जाए।
- ऑडियो-वीडियो शिक्षण सामग्री बच्चों की रुचि और समझ दोनों को बढ़ा सकती है।

समुदाय की भागीदारी

- पाठ्यक्रम निर्माण और शिक्षण सामग्री तैयार करने में स्थानीय समुदाय और बुजुर्गों को शामिल किया जाए।
- विद्यालय स्तर पर माता-पिता समिति को सक्रिय किया जाए ताकि अभिभावकों का विश्वास मजबूत हो।

अनुसंधान और मूल्यांकन

- समय-समय पर अध्ययन और मूल्यांकन किया जाए कि मातृभाषा आधारित शिक्षा का बच्चों की सीखने की गति, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
- झारखण्ड में विभिन्न जनजातीय भाषाओं पर अलग-अलग पायलट प्रोजेक्ट्स चलाए जाएँ।

अनुशंसाएँ

1.प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा अनिवार्य – कक्षा 1 से 3 तक शिक्षण का मुख्य माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।
2.क्रमिक संक्रमण मॉडल – कक्षा 4 से हिंदी और कक्षा 6 से अंग्रेजी को धीरे-धीरे प्रमुख विषय के रूप में जोड़ा जाए।
3.बहुभाषिक कक्षा रणनीति – जहाँ कई मातृभाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ शिक्षक को द्विभाषिक सेतु (Bridge Language Approach) अपनाना चाहिए।
4.शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान – झारखण्ड में विशेष भाषाई प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाएँ।
5.डिजिटल शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाएँ – ऑनलाइन कक्षाओं, एप्लिकेशन और डिजिटल सामग्री में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हो।
6.सांस्कृतिक उत्सव और विद्यालय – विद्यालयों में स्थानीय संस्कृति और भाषा दिवस मनाया जाए ताकि बच्चों में आत्मगौरव विकसित हो।
7.अंतर्राष्ट्रीय सहयोग – फिलीपींस, नेपाल और अफ्रीका के सफल मातृभाषा शिक्षा मॉडल्स से सीख ली जाए और उन्हें झारखण्ड के संदर्भ में अनुकूलित किया जाए।
8.दीर्घकालिक अनुसंधान – केवल प्राथमिक स्तर ही नहीं, बल्कि उच्च शिक्षा और रोजगार में मातृभाषा आधारित शिक्षा का प्रभाव समझने हेतु दीर्घकालिक शोध की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध यह स्पष्ट करता है कि झारखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में मातृभाषा आधारित शिक्षण ने बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि, आत्मविश्वास और सांस्कृतिक जुड़ाव को मजबूत किया है। यह न केवल शिक्षा का एक माध्यम है बल्कि बच्चों की पहचान और अस्तित्व का आधार भी है। हालाँकि चुनौतियाँ बनी हुई हैं—जैसे शिक्षक और संसाधन की कमी, समाज की मानसिकता और उच्च शिक्षा में भाषा संक्रमण की समस्या। लेकिन यदि राज्य और केंद्र सरकार, शिक्षक, अभिभावक और समुदाय मिलकर द्विभाषिक और बहुभाषिक मॉडल को अपनाएँ, तो झारखण्ड के बच्चे न केवल अपनी मातृभाषा और संस्कृति से जुड़े रहेंगे, बल्कि वैश्विक शिक्षा और रोजगार की प्रतिस्पर्धा में भी आगे बढ़ पाएँगे।

संदर्भ सूची:

1. आचार्य, एस. (2012). भारतीय शिक्षा और मातृभाषा का प्रश्न. दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक प्रकाशन।
2. एक्का, जे. (2005). झारखण्ड में आदिवासी शिक्षा: समस्याएँ और संभावनाएँ। जनजातीय अध्ययन पत्रिका, 8(1), 45-59।
3. एक्का, जे. (2018). आदिवासी भाषाएँ और शिक्षा: एक समकालीन विश्लेषण. रांची: जनजातीय प्रकाशन।
4. गुप्ता, एन. (2011). बहुभाषिक कक्षाओं में मातृभाषा की भूमिका। शिक्षा विमर्श, 6(3), 22-31।
5. जोसेफ, पी. (2017). मातृभाषा आधारित शिक्षा और बाल अधिकार। भारतीय शिक्षा अनुसंधान पत्रिका, 12(2), 66-74।
6. झा, एम. (2010). भारतीय शिक्षा व्यवस्था और भाषा नीति. पटना: विद्याभारती प्रकाशन।
7. झारखण्ड सरकार. (2015). झारखण्ड शिक्षा नीति 2015. रांची: शिक्षा विभाग।
8. झारखण्ड शिक्षा परियोजना परिषद. (2018). प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा आधारित शिक्षा: एक अध्ययन. रांची: शिक्षा विभाग।
9. टोप्पो, ए. (2014). आदिवासी छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि और भाषा। जनजातीय शोध पत्रिका, 10(2), 101-110।
10. त्रिपाठी, आर. (2007). मातृभाषा और प्रारंभिक शिक्षा। शिक्षा दर्शन, 4(2), 78-85।
11. लुगुन, जे. (2009). मातृभाषा आधारित शिक्षा और झारखण्ड। भाषा शिक्षा पत्रिका, 14(2), 89-96।
12. लुगुन, जे. (2016). भाषाई विविधता और शिक्षा: झारखण्ड का परिप्रेक्ष्य. रांची: आदिवासी अकादमी।
13. महतो, बी. (2013). झारखण्ड में क्षेत्रीय भाषाओं का संरक्षण और शिक्षा। भाषा विमर्श, 9(1), 55-63।
14. मिश्रा, आर. (2019). भारतीय शिक्षा प्रणाली और मातृभाषा. वाराणसी: शारदा प्रकाशन।
15. मंत्रालय, मानव संसाधन विकास (भारत सरकार). (2020). नई शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: भारत सरकार।
16. मुंडा, के. (2001). आदिवासी समाज और भाषा. नई दिल्ली: अवध प्रकाशन।
17. मुण्डा, आर. (2015). झारखण्ड की भाषाएँ और संस्कृति. रांची: केंद्रीय विश्वविद्यालय।
18. यादव, एस. (2008). शिक्षा में मातृभाषा का महत्व। भारतीय शिक्षा समीक्षा, 52(4), 201-210।
19. UNESCO. (2008). Mother Tongue Matters: Local Language as a Key to Effective Learning. Paris: UNESCO.
20. UNICEF. (2016). The Impact of Mother Tongue Based Education in Tribal Areas of India. New Delhi: UNICEF India.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 142-149
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

علی اکبر آمبوری :" برف سی اجلی" کی افسانوی جمالیات

ڈاکٹر میمونہ بیگم سرڈگی کلبرگی کرناٹک

زندگی اور کائنات کی بے ثباتی اور تغیر کے متعلق ہمیشہ ہر دور میں کچھ نہ کچھ کہنے کی روایت رہی ہے کہ فکر اور تخیل کے سایے دور دور تک پھیل جاتے ہیں ۔ زندگی کو خواب اور وقوع پذیر حالات کو افسانہ کہا گیا ہے لیکن افسانہ کیا زندگی خوابوں سے ہٹ کر کچھ بھی نہیں۔ در حقیقت زندگی کی اکائی خوابوں اور انسانوں سے عبارت ہے۔ ہر فن کار خوابوں کے جھروکوں سے زندگی کی رنگا رنگ سمتوں کو دیکھنے کی کوشش کرتا ہے ۔ خوابوں کی پرورش ان کی نشو و نما اور تشکیل کے لئے رگ وپےسے لہو نچوڑ نے کی ضرورت پیش آتی ہے ۔ خوابوں کے بغیر زندگی کا تصور بے معنی ہے اردو میں جیسا کہ عام طور پر مشہور ہے، مختصر افسانہ نگاری کی بنیاد پریم چند نے ڈالی تھی ۔ پریم چند نے بڑے دلاویز انداز میں سماج، وقت اور زندگی کی بدلتی ہوئی اقدار کو اپنی تخلیقات میں پیش کیا ۔ پریم چند کے افسانوں کی سے بڑی خصوصیت انداز نگارش کی سادگی ہے ۔ پریم چند کے بعد کے افسانہ نگاروں نے بدلتے ہوے حالات اور مغربی افسانہ نگاروں کے نقوش کے پیش نظر افسانہ نگاری کے فن کو ایک نیا موڑا بخشا، میرا اپنا خیال یہ ہے کہ آج افسانہ نگاری نے زندگی کے افق کو جس چابکدستی کے ساتھ چھوا ہے ۔علی اکبر کا تعلق اس نئے قافلے سے ہے جس میں لکھنے کی بھر پور صلاحیت ہے۔علی اکبر کے افسانوں کا یہ پہلا مجموعہ ہے ، چنانچہ اس اعتبار سے بھی اولیت کا سہرا علی اکبر کے سر ہے ۔اُن کی تخلیقات میں تخیل کے رنگارنگ ملبوسات کے باوجود کردار الگ نظر آتے ہیں ۔رین پال سارتر کی تخلیقات بہت متاثر کن ہے، سارتر ہمہ جہت ان فن کاروں میں ہے جن کے قلم کی جنبش داخلیت کی اتھاہ گہرائیوں میں ڈوب ڈوب کر نقوش بکھیرتی رہتی ہے ۔ اردو کے اکثر مشہور افسانہ نگاروں کا شیوہ رہا ہے ۔اپنی تخلیقات میں زندگی کی انھیں حقائق ، حالات اور واقعات کو پیش کئے ہیں جن سے بالواسط آپکا تعلق رہا ہے لکھنے والے کا ذہن اگر دشت امکان سے گریز کرے اور زندگی کے نادیدہ رشتوں کو جائے تو فن کار خود اپنی ہی ذات سے الجھ جاتا ہے۔ خارجی مسائل کی آنکھو ں سے روپوش رہتے ہیں۔ لیکن علی اکبر نے حتی الامکان انسانی نفسیات اور خارجی مسائل کو فطری اسلوب میں پیش کیاہے۔ آپ کا ہر افسانہ زبان موضوع اور اسلوب کے اعتبار سے اتنا د لچسپ ہوتا ہے کہ قاری کا ذہن ماحول سے بے نیازہ افسانے کی رنگارنگ فضا میں کھو جاتا ہے۔ مجھے امید ہے کہ تامل نا ڈایک اچھے فن کار کو ہر دور میں یاد رکھے گا۔ افسانوی مجموعہ"سترنگ "میں سات افسانے شامل ہیں۔ہر افسانہ مختلف انسانی تجربے، سماجی رویے اور نفسیاتی کشمکش کو سامنے لاتا ہے۔

"گرل فرینڈ کے متلاشی "

یہ افسانہ موجودہ نوجوان نسل کی بے سمتی، رشتوں کی سطحیّت اور محبت کو محض وقتی تعلق کے طور پر برتنے کے رجحان کو موضوع بناتا ہے۔ اس میں عشق اور خلوص کے بجائے وقتی دوستی اور "گفتگو برائے دل لگی" کا تصور نمایاں ہے۔ افسانہ نگار نے دکھایا ہے کہ کس طرح معاشرتی دباؤ اور فیشن پرستی نے عشق کو کھیل تماشا بنا دیا ہے۔ افسانہ نگار نے بیانیہ اسلوب اختیار کیا ہے۔ کردار "شکیل" کی گفتگو کو مصنف نے ایک فلسفیانہ جملے کی صورت میں پیش کیا ہے جو انسانی ذہن پر اشتہاری بورڈز کی طرح ابھرتا اور مٹتا رہتا ہے۔ اس تشبیہ سے نہ صرف کردار کے جملے کی شدت اور یادگیری کا اندازہ ہوتا ہے بلکہ جدید شہری تہذیب کی علامت بھی سامنے آتی ہے۔مرکزی موضوع محبت اور انسانی رشتے ہیں،خاص طور پر اس سوال پر کہ گرل فرینڈ بنانے یا تعلق قائم کرنے کے لیے سب سے پہلے دوسری شخصیت کی نفسیات کو سمجھنا ضروری ہے۔افسانہ اس حقیقت کی طرف اشارہ کرتا ہے کہ تعلقات محض اتفاقی ملاقاتوں کا نتیجہ نہیں ہوتے، بلکہ ان کے پس منظر میں ایک ذہنی ہم آہنگی اور شعوری کوشش شامل ہوتی ہے۔ ٹرین کا سفر" زندگی کے سفر اور "وقتی ملاقات" کی علامت کے طور پر استعمال ہوا ہے۔ مگر افسانہ نگار یہ دکھاتا ہے کہ شکیل اور تشکیل کی ملاقات روایتی وقتی تعلق نہیں بلکہ ایک پائیدار رشتے میں ڈھلنے کی صلاحیت رکھتی ہے۔یہ افسانہ اس دور کی جھلک دیتا ہے جب "محبت" اور "گرل فرینڈ" جیسے تصورات شہری متوسط طبقے میں سماجی کشمکش اور جدیدیت کے اثرات کے ساتھ متعارف ہو رہے تھے۔محبت کو ایک "نفسیاتی مطالعے" کی ضرورت کے طور پر دکھایا جانا ظاہر کرتا ہے کہ افسانہ نگار محض رومانی فضا نہیں بناتا بلکہ تعلقات کو شعوری، عقلی اور نفسیاتی جہت دیتا ہے۔ یہاں سماجی تبدیلی کا اشارہ بھی ہے کہ روایتی شرم و حجاب کی جگہ کھلے مباحث اور جدید اصطلاحات آ رہی ہیں۔ یہ افسانہ اردو افسانے میں "جدید شہری رومانی رجحانات" کی نمائندگی کرتا ہے۔ کرداروں کی مرکزی موضوع محبت اور گفتگو میں نفسیاتی شعور، فلسفیانہ سوچ اور علامتی اظہار جھلکتا ہے انسانی رشتے ہیں، خاص طور پر اس سوال پر کہ گرل فرینڈ بنانے یا تعلق قائم کرنے کے لیے سب سے پہلے دوسری شخصیت کی نفسیات کو سمجھنا ضروری ہے۔افسانہ اس حقیقت کی طرف اشارہ کرتا ہے کہ تعلقات محض اتفاقی ملاقاتوں کا نتیجہ نہیں ہوتے، بلکہ ان کے پس منظر میں ایک ذہنی ہم آہنگی اور شعوری کوشش شامل ہوتی ہے۔ ٹرین کا سفر" زندگی کے سفر اور "وقتی ملاقات" کی علامت کے طور پر استعمال ہوا ہے۔ مگر افسانہ نگار یہ دکھاتا ہے کہ شکیل اور تشکیل کی ملاقات روایتی وقتی تعلق نہیں بلکہ ایک پائیدار رشتے میں ڈھلنے کی صلاحیت رکھتی ہے۔یہ افسانہ اس دور کی جھلک پیش کرتاہے جب "محبت" اور "گرل فرینڈ" جیسے تصورات شہری متوسط طبقے میں سماجی کشمکش اور جدیدیت کے اثرات کے ساتھ متعارف ہو رہے تھے۔محبت کو ایک "نفسیاتی مطالعے" کی ضرورت کے طور پر دکھایا جانا ظاہر کرتا ہے کہ افسانہ نگار محض رومانی فضا نہیں بناتا بلکہ تعلقات کو شعوری، عقلی اور نفسیاتی جہت دیتا ہے۔ یہاں سماجی تبدیلی کا اشارہ بھی ہے کہ روایتی شرم و حجاب کی جگہ کھلے مباحث اور جدید اصطلاحات آ رہی ہیں۔ یہ افسانہ اردو افسانے میں "جدید شہری رومانی رجحانات" کی نمائندگی کرتا ہے۔ کرداروں کی گفتگو میں نفسیاتی شعور، فلسفیانہ سوچ اور علامتی اظہار جھلکتا ہے۔

علاوہ ازیں اس حصے تک افسانہ "رومانی مکالمے" اور "شخصی تعلقات" کی نفسیات پر زیادہ زور دیتا ہے، ابھی اس کے سماجی یا تہذیبی انجام کا پتہ نہیں چلتا۔ افسانہ نگار نے علامتوں، استعاروں اور بیانیہ اسلوب کے ذریعے قاری کو یہ سوچنے پر مجبور کیا ہے کہ انسانی رشتے محض سطحی یا وقتی نہیں بلکہ شعور، ذہنی مطابقت اور باہمی فہم پر قائم ہوتے

ہیں۔ وہ "دوستی" کے بہانے اپنی شخصیت کو منوانا چاہتا ہے مگر اس کی گفتگو اور حرکات دراصل اخلاقی کمزوری کو ظاہر کرتی ہیں۔ وہ ہمیشہ "جنسیات" اور "لڑکیوں کی سائیکولوجی" پر گفتگو کرتا ہے، جو اس کی بچکانہ ذہنیت اور سطحی سوچ کو ظاہر کرتا ہےاس کی "عشق و محبت کی داستانیں" دراصل محض شیخی اور خودنمائی کے طور پر پیش کی گئی ہیں، جن سے قاری کو بھی بیزاری محسوس ہوتی ہے، جیسا کہ بیانیہ کردار کو ہو رہی ہے۔ابتدا میں جس بےتکلفی نے دوستی کی شکل اختیار کی تھی، وہ اب جھجک اور بیزاری میں بدل رہی ہے۔راوی کو اس بات کا خدشہ رہتا ہے کہ کہیں شکیل کی حرکات (راہ چلتی لڑکیوں کو چھیڑنا) انہیں کسی سماجی رسوائی یا ہزیمت میں نہ ڈال دیں۔ یہ خوف دراصل اس سماج کی عکاسی کرتا ہے جہاں "چھیڑ چھاڑ" جیسا عمل نہ صرف عورت کی بےحرمتی ہے بلکہ مردوں کے لیے بھی شرمندگی اور خطرے کا باعث بن سکتا ہے۔ افسانہ نگار نے اس کردار کے ذریعے شہری متوسط طبقے کے بگڑے ہوئے رجحانات کو بے نقاب کیا ہے۔شکیل جیسے لوگ "محبت" یا "نفسیات" کی باتیں کرتے ہیں مگر عملی طور پر عورت کو صرف تفریح کا سامان سمجھتے ہیں۔یہاں ایک اخلاقی تبنیہ پوشیدہ ہے کہ تعلیم یافتہ اور باشعور طبقے میں بھی عورت کو غیر سنجیدگی اور سطحیت سے لیا جا رہا ہے۔زبان سے فلسفیانہ باتیں کرتا ہے ("لڑکیوں کی سائیکولوجی"، "محبت") مگر عمل میں سطحی، غیر سنجیدہ اور غیر اخلاقی ہے۔ شہری معاشرے میں "محبت اور دوستی کے نظریات" اور "عملی رویے" میں زمین آسمان کا فرق ہے۔ یہ حصہ افسانے کے اصل مدعا کو اور زیادہ کھولتا ہے۔ آغاز میں جس "گرل فرینڈ بنانے" اور "نفسیاتی سمجھ" کی بات کی گئی تھی، وہ محض ایک ظاہری ڈھکوسلا ثابت ہوتی ہے۔ حقیقت یہ ہے کہ شکیل جیسے لوگ عورت کے ساتھ تعلق کو صرف وقتی تفریح اور سطحی بہادری کا ذریعہ سمجھتے ہیں۔اس کی "عشق و محبت کی داستانیں" دراصل محض شیخی اور خودنمائی کے طور پر پیش کی گئی ہیں، جن سے قاری کو بھی بیزارگی محسوس ہوتی ہے، جیسا کہ بیانیہ کردار کو ہو رہی ہے۔ ابتدا میں جس بےتکلفی نے دوستی کی شکل اختیار کی تھی، وہ اب جھجک اور بیزارگی میں تبدل ہورہی ہے۔ راوی کو اس بات کا خدشہ رہتا ہے کہ کہیں شکیل کی حرکات (راہ چلتی لڑکیوں کو چھیڑنا) انہیں کسی سماجی رسوائی یا ہزیمت میں نہ ڈال دیں۔ یہ خوف دراصل اس سماج کی عکاسی کرتا ہے جہاں "چھیڑ چھاڑ" جیسا عمل نہ صرف عورت کی بےحرمتی ہے بلکہ مردوں کے لیے بھی شرمندگی اور خطرے کا باعث بن سکتا ہے۔ افسانہ نگار نے اس کردار کے ذریعے شہری متوسط طبقے کے بگڑے ہوئے رجحانات کو بے نقاب کیا ہے۔ شکیل جیسے لوگ "محبت" یا "نفسیات" کی باتیں کرتے ہیں مگر عملی طور پر عورت کو صرف تفریح کا سامان سمجھتے ہیں۔یہاں ایک اخلاقی تنقید پوشیدہ ہے کہ تعلیم یافتہ اور باشعور طبقے میں بھی عورت کو غیر سنجیدگی اور سطحیت سے لیا جا رہا ہے۔ اگرچہ یہ حالات سنجیدہ ہیں، مگر راوی کی تشویش اور جملے ("سینڈل سے مرمت") میں ایک طنزیہ مزاح بھی جھلکتا ہےیہ طنز قاری کو اس حقیقت کی طرف متوجہ کرتا ہے کہ شکیل کا "بہادری سمجھنا" دراصل اس کی کمزوری اور اخلاقی دیوالیہ پن ہے۔ یہ انجام افسانے کو محض ایک ہلکی پھلکی محبت کی کہانی سے اوپر اٹھا دیتا ہے۔ یہ نہ صرف قاری کو چونکاتا ہے بلکہ محبت کے غیر حقیقی خوابوں پر طنز بھی کرتا ہے۔ساتھ ہی یہ پیغام بھی دیتا ہے کہ انسانی تعلقات کو محض "نفسیاتی مطالعے" یا "تکنیک" کے ذریعے قابو نہیں پایا جا سکتا، ان کے پیچھے سماجی، اخلاقی اور خاندانی اقدار بھی کارفرما ہوتی ہیں یہ افسانہ ایک عام رومانی قصے سے بڑھ کر محبت کے خواب، حقیقت کی تلخی، دوستی کے تضاد، اور معاشرتی قدروں کے ٹکراؤ کی کہانی بن جاتا ہے۔ انجام قاری پر گہرا نفسیاتی اور جذباتی اثر چھوڑتا ہے۔

"عشق اور امتحان "

عشق اور امتحان ، (اس کی کردار نگاری سرپرست/چچا) پس منظر میں موجود ہیں۔ کردار نگاری کی خوبی یہ ہے کہ یہ محض واقعات کے بہاؤ میں نہیں بلکہ مکالموں، حرکات و سکنات اور داخلی کیفیات کے اظہار سے ابھرتی ہے۔شاہد ایک نوجوان، جذباتی اور عجلت پسند انسان کے طور پر سامنے آتا ہے۔ وقت کی کمی اور ملاقات کی بے چینی اس کے رویّے سے جھلکتی ہے۔ اجنبی کو جھڑک دینا اور سخت لہجہ اختیار کرنا اس کی عجلت اور کم ظرفی کو ظاہر کرتا ہے۔وہ اپنی محبت میں مگن ہے، نیلو سے ملاقات کے تصور میں اس قدر محو ہے کہ اردگرد کے حالات کی پروا نہیں کرتا۔ یہ جذباتیت ہی بعد میں اس کے خلاف فیصلہ کن ثبوت بن جاتی ہے، جب نیلو کا سرپرست اسے "جذباتی" اور "کردار کے اعتبار سے کمزور" قرار دیتا ہے۔ایک طرف وہ محبت کے مقدس اور پُرکشش خواب دیکھتا ہے، دوسری طرف عملی زندگی میں بے صبر، غیر متوازن اور جلد

باز دکھائی دیتا ہے۔ یہی تضاد اس کی ناکامی کا سبب بنتا ہے۔ نیلوفر کو ایک سمجھدار، سنجیدہ اور کسی حد تک روایتی اقدار کی حامل لڑکی کے طور پر دکھایا گیا ہے۔ وہ مذہبی و تاریخی مثالوں سے بات سمجھانے کی کوشش کرتی ہے، جو اس کی فکری وسعت کو ظاہر کرتا ہے۔نیلوفر جذباتی ضرور ہے مگر وہ جذبات کے دھارے میں بہہ جانے والی نہیں۔ وہ وقت، ماحول اور سماجی تقاضوں کو نظر انداز نہیں کرتی۔ شاہد کے برعکس وہ ہر بات پر ٹھنڈے دل سے سوچنے اور جواب دینے کی کوشش کرتی ہے۔آخر میں جب وہ شاہد کو یہ اطلاع دیتی ہے کہ اس کے سرپرست نے رشتہ مسترد کر دیا ہے، تو اس کی آواز میں کرب اور دکھ تو ہے لیکن فیصلہ قبول کرنے کی قوت بھی ہے۔ اس سے اس کا عملی اور حقیقت پسند پہلو اجاگر ہوتا ہے۔اجنبی مسافر: ایک معمولی سا کردار لیکن کہانی میں اہم موڑ پیدا کرتا ہے۔ اس سے شاہد کا غیر متوازن رویہ سامنے آتا ہے جو بعد میں اس کے خلاف ثبوت بن جاتا ہے۔سرپرست/چچا: پردے کے پیچھے رہ کر فیصلہ کرنے والی قوت ہے۔ وہ دراصل اس سماج کی نمائندگی کرتا ہے جہاں فرد کی ذاتی پسند کو سماجی و خاندانی پیمانوں پر پرکھا جاتا ہے۔کرداروں کی شخصیت زیادہ تر مکالمے سے نکھرتی ہے۔ شاہد کے مکالمے میں جلدبازی اور بیقراری، جبکہ نیلو کے مکالمے میں سکون اور شعوری پختگی جھلکتی ہے۔ داخلی کیفیات: شاہد کے خیالات، وقت کی بے چینی، اور خوابوں کی کیفیت اس کے اندرونی تضاد کو ظاہر کرتے ہینعلامتی پہلو: "امتحان" دراصل محبت اور کردار کا امتحان ہے۔ شاہد اس میں ناکام دکھائی دیتا ہے۔

افسانہ "عشق اور امتحان" کی کردار نگاری کو اگر ہم سماجی، تہذیبی اور معاشرتی زیادتیوں کے تناظر میں دیکھیں تو کہانی میں محض ایک عاشق و معشوق کا رشتہ ہی نہیں بلکہ اُس عہد کے سماج کی ساخت، اقدار، اور سخت گیر رویے بھی جھلکتے ہیں۔کہانی میں سب سے بڑی رکاوٹ سرپرست (چچا/گارڈین) کا فیصلہ ہے۔ وہ نیلوفر کی ذاتی پسند اور جذبات کو رد کرتے ہوئے شاہد کو "کرداری طور پر کمزور اور جذباتی" قرار دیتے ہیں۔یہ دراصل اُس معاشرتی رویے کی نمائندگی ہے جس میں محبت کو ذاتی معاملہ نہیں سمجھا جاتا بلکہ خاندانی عزت، سماجی مرتبہ اور روایتی معیار پر پرکھا جاتا ہے۔شاہد کے ساتھ زیادتی یہ ہوئی کہ ایک وقتی رویے (اجنبی کو جھڑک دینا) کو اس کی مکمل شخصیت کا فیصلہ کن معیار بنا دیا گیا۔ یہ معاشرے کا وہ رویہ ہے جو انسان کے ایک عمل سے اس کی پوری زندگی کے فیصلے طے کر دیتا ہے۔نیلوفر کا کردار تہذیبی توازن کا مظہر ہے۔ وہ مذہبی و تاریخی مثالوں (حضرت موسیٰ اور دریائے نیل کا معجزہ) سے بات سمجھانے کی کوشش کرتی ہے۔ اس سے ظاہر ہوتا ہے کہ اُس وقت کی تہذیب میں مذہبی حوالہ، روایتی دانش اور اخلاقی جواز کو گفتگو کا لازمی حصہ سمجھا جاتا تھا۔مگر یہی تہذیب ایک سخت گیر رُخ بھی دکھاتی ہے، جہاں لڑکی کی ذاتی خواہش اور محبت کی آزادی کو سرپرست کے "امتحان" کے آگے قربان کر دینا پڑتا ہے۔تہذیبی سطح پر یہ افسانہ اس تضاد کو نمایاں کرتا ہے کہ ایک طرف عورت تعلیم یافتہ، باشعور اور بات کرنے کی

ہمت رکھنے والی ہے، دوسری طرف اُس پر فیصلہ مسلط کر دیا جاتا ہے۔محبت کو یہاں ایک امتحان کے طور پر پیش کیا گیا ہے، لیکن یہ امتحان عاشق و معشوق کے جذبے یا اخلاص کا نہیں بلکہ سماجی معیار اور سرپرست کی مرضی کا ہے۔ شاہد کی ناکامی دراصل ایک فرد کی نہیں بلکہ اُس طبقے کی نمائندگی ہے جو سماجی رکاوٹوں کے سامنے بے بس ہو جاتا ہےاس امتحان میں کردار کے بجائے خاندانی حیثیت، سماجی دباؤ اور وقت کے سخت فیصلے کامیاب ہو جاتے ہیں۔

"عشق اور امتحان" محض ایک رومانوی داستان نہیں بلکہ اُس وقت کے معاشرتی اور تہذیبی رویوں کا آئینہ ہے۔ شاہد فرد کی جذباتی سچائی کی علامت ہے مگر سماج اسے "ناکام" قرار دیتا ہے۔ نیلوفر عورت کی باشعوری اور داخلی آزادی کی نمائندہ ہے مگر آخرکار وہ معاشرتی فیصلے کے آگے سر جھکا دیتی ہے۔ سرپرست اُس سماج کی علامت ہیں جو افراد کی محبت اور شخصیت کو پرکھنے کے بجائے اپنی "عزت" اور "معیار" کو مقدم رکھتا ہے۔ یوں اس افسانے کی کردار نگاری سماجی اور تہذیبی تضادات کو نمایاں کرتی ہے ۔ معاشرتی زیادتیاں کس طرح شکست دیتی ہیں۔

"سمجھوتہ" دراصل خاندانی زندگی کے تضادات، ماں بیٹے کے رشتے، اور ساس بہو کے تنازعے پر مبنی افسانہ ہے۔ کہانی کا آغاز عابد اور رقیہ کی روز مرہ کی نوک جھونک سے ہوتا ہے۔ رقیہ اپنے شوہر پر یہ الزام لگاتی ہے کہ وہ رات کے کھانے کے بعد محض سیر کے بہانے اپنی ماں سے ملنے جاتا ہے اور اپنی آمدنی کا حصہ انہیں دیتا ہے۔ یہاں سے بنیادی کشمکش ابھرتی ہے: شوہر کی ماں سے وابستگی اور بیوی کی اس پر ناراضی۔ مصنف کہانی میں فلیش بیک کے ذریعے عابد کے بچپن اور ماں کی قربانیوں کو دکھاتا ہے۔ ماں نے بیٹے کی شادی کے لئے اپنی خواہشیں، حسرتیں اور ممتا کے جذبات پیش کیے، لیکن شادی کے بعد وہی ماں بہو کے لئے کھٹک بن گئی۔ یہاں کہانی ایک جذباتی رنگ اختیار کرتی ہے اور ماں کی قربانی بمقابلہ بہو کی بالادستی کو دکھاتی ہے۔افسانہ میں تصادم اس وقت ظاہر ہوتا ہے جبرقیہ گھر میں اپنا راج چاہتی ہے، ساس کو برداشت نہیں کر پاتی۔ وہ شوہر کو بہکا کر ساس کے خلاف کرنے کی کوشش کرتی ہے اور رفتہ رفتہ کامیاب بھی ہو جاتی ہے۔ماں مجبور ہو کر گھر چھوڑ دیتی ہے تاکہ بیٹے اور بہو کو خوش دیکھ سکے، مگر یہ قربانی گھریلو المیہ کو اور گہرا کر دیتی ہے۔ یوں کہانی کا اصل ٹکراو سامنے آتا ہے: ماں کی قربانی بمقابلہ بیٹے کی ناقدری اور بہو کی خودغرضی۔کہانی کا عروجعابد جب اپنے بچے جاوید کو دیکھتا ہے تو اسے احساس ہوتا ہے کہ ماں نے بھی اسی طرح اسے پالا ہوگا۔ رقیہ کے ذہن میں یہ خیال بھی جنم لیتا ہے کہ اگر اس کا بچہ بڑا ہو کر اسی طرح اپنی ماں (رقیہ) کو دھتکار دے تو کیا ہوگا؟ یہ مکالمہ اور داخلی کرب کہانی کو عروج پر پہنچاتا ہے۔ کہانی کسی ڈرامائی اختتام کے بجائے ایک جذباتی اور فکری موڑ پر ختم ہوتی ہے۔

رقیہ اپنے انجام کو سوچ کر لرزتی ہے اور اپنے دل میں خوف محسوس کرتی ہے کہ کہیں جاوید بھی بڑا ہو کر اپنے والد کی طرح "ناخلف" نہ نک

یوں افسانہ کھلی ہوئی گتھی چھوڑ کر قاری کو سوچنے پر مجبور کر دیتا ہے۔ فلیش بیک تکنیک: کہانی ماضی اور حال کو جوڑ کر جذباتی تسلسل قائم کرتی ہے۔ گھریلو حقیقت نگاری: کردار اور مکالمے عام زندگی سے ماخوذ ہیں، جس سے قاری کو روزمرہ حقیقت کا عکس نظر آتا ہے۔تضاد اور کشمکش: بیوی بمقابلہ ساس، شوہر بمقابلہ ماں، محبت بمقابلہ خودغرضی—یہ تمام کشمکش کہانی کو جان بخشتے ہیں۔ جذباتی اپیل: ماں کی قربانی اور بیٹے کی بے حسی قاری کو اندر تک متاثر کرتی ہے۔افسانہ "سمجھوتہ" کا کہانی پن گھریلو زندگی کے چھوٹے چھوٹے جھگڑوں سے شروع ہو کر بڑے المیے میں ڈھلتا ہے، جہاں ماں کی ممتا اور بہو کی خود غرضی آمنے سامنے آجاتی ہیں۔کہانی کا حسن یہ ہے کہ اس کا انجام "سمجھوتے" کے لفظ پر مرکوز ہے: ماں بیٹے کی خوشی کے لئے سمجھوتہ کرتی ہے، بہو شوہر کو اپنے حق میں کرنے کے لئے سمجھوتہ کرواتی ہے، اور آخر میں رقیہ کو یہ سوچ کر اندرونی "سمجھوتہ" کرنا پڑتا ہے کہ کل کو اس کے ساتھ

بھی یہی ہو سکتا ہے۔ ساس بہو کا جھگڑا – خاندانی نظام کی کمزوری، کہانی میں رقیہ اور اس کی ساس کے درمیان تنازعہ اصل سماجی مسئلہ ہے۔ ہندوستانی و برصغیری معاشرے میں ساس بہو کا جھگڑا ایک روایتی المیہ ہے جس نے کئی گھرانوں کو توڑ دیا۔ افسانے میں رقیہ گھر میں اپنی بالادستی چاہتی ہے اور ماں کی موجودگی اسے برداشت نہیں ہوتی۔یہ جھگڑا صرف ذاتی نہیں بلکہ اس بات کی علامت ہے کہ نئے خاندانی نظام (جوہری خاندان) نے مشترکہ خاندانی نظام کو کس طرح کمزور کیاماں کی قربانی اور نئی نسل کی بے حسی، عابد کی ماں نے بیٹے کی پرورش کے لیے سب کچھ قربان کیا، مگر شادی کے بعد وہی بیٹا ماں کی جگہ بیوی کو اہمیت دیتا ہے۔ یہ سماجی حقیقت ہے کہ اکثر بیٹے شادی کے بعد والدین کو نظرانداز کر دیتے ہیں۔افسانہ ماں کے اس دکھ کو نمایاں کرتا ہے کہ جس کے لیے سب قربان کیا، وہی اولاد منہ موڑ گئی۔ یہ تہذیبی زوال کی بھی نشاندہی ہے کہ نئی نسل پرانی نسل کی قدر کرنا بھول گئی۔ عابد ماں اور بیوی کے درمیان فیصلہ کن کردار ادا نہیں کرتا بلکہ بیوی کے دباؤ میں آجاتا ہے۔ یہ معاشرتی سچائی ہے کہ مرد اکثر اپنی ماں کے ساتھ انصاف نہیں کر پاتے، بلکہ بیوی کے دباؤ میں جذباتی یا معاشی
"سمجھوتہ" کر لیتے ہیناس کمزوری نے کہانی میں ایک بڑے المیے کو جنم دیا۔ کہانی کے آخر میں رقیہ اپنے بیٹے جاوید کو دیکھ کر سوچتی ہے کہ اگر کل کو وہی بیٹا اسے اسی طرح دھتکار دے تو؟ یہ وہ لمحہ ہے جہاں افسانہ ایک سماجی سچائی کو عیاں کرتا ہے کہ وقت کا پہیہ ہمیشہ پلٹ کر آتا ہے۔ بہو کی حیثیت سے ساس کو نکالنے
والی رقیہ مستقبل میں خود ساس بنے گی اور شاید وہی کچھ بھگتے گی۔اس داخلی کشمکش سے عورت کی بے بسی جھلکتی ہے جو ماں بھی ہے، بہو بھی ہے، اور مستقبل میں ساس بھی ہوگی۔ افسانہ دراصل اس زوال کی عکاسی کرتا ہے جو "سمجھوتہ" کے نام پر نسل در نسل جاری ہے۔ ماں سمجھوتہ کرتی ہے، بیٹا بیوی کے ساتھ سمجھوتہ کرتا ہے، اور بہو اپنے راج کے لیے سمجھوتہ کرواتی ہے۔ یہ تسلسل دراصل اس بات کی علامت ہے کہ ہمارا معاشرہ محبت اور قربانی کے بجائے خود غرضی، بالادستی اور وقتی فائدے پر چل رہا ہے۔سمجھوتہ" محض ایک گھریلو کہانی نہیں بلکہ ایک سماجی دستاویز ہے۔یہ دکھاتا ہے کہ کس طرح خاندانی نظام میں عدم توازن، مرد کی کمزوری، اور عورت کی خودغرضی مل کر ماں جیسے عظیم رشتے کو قربانی پر مجبور کرتے ہیں۔ ساتھ ہی یہ وارننگ بھی دیتا ہے کہ آج جو ظلم ہم کرتے ہیں، کل وہی ہمارے ساتھ بھی دہرایا جائے گا۔

"برف سی اجلی"

ایک کامیاب افسانہ ہے۔قاری کو حسن پرستی سے حقیقت پرستی کی طرف لے جاتا ہے۔ یہ افسانہ محض ایک ازدواجی تعلق کی کہانی نہیں بلکہ اُس رویے کی عکاسی ہے جو ہمارے معاشرے میں عورت کے ظاہری حسن کو رشتوں کی بنیاد بنا دیتا ہے۔ اختتام پر قاری چونک جاتا ہے اور سوچنے پر مجبور ہوتا ہے کہ محبت کا اصل معیار کیا ہے—حسن یا وابستگی؟ افسانہ "برف سی اجلی" کو تقابلی تناظر میں دیکھتے ہیں اور اسے منٹو اور بیدی کے ایسے افسانوں سے ملاتے ہیں جن میں حسن، عورت اور حقیقت کا ٹکراؤ نمایاں ہے۔ بیدی کے کئی افسانوں میں عورت کے حسن اور اس کی داخلی سچائی کے بیچ کشمکش دکھائی دیتی ہے - لاجونتی" میں عورت محض جسم یا حسن کی علامت نہیں بلکہ عفت اور وقار کی تصویر ہے، مگر جب وہ بلوائیوں کے ہاتھوں بے عزت ہو کر واپس آتی ہے تو سماج کا رویہ اس کے ساتھ بدل جاتا ہے۔ یہاں بھی عورت اپنی اصل عظمت کے باوجود ظاہری تصور کے بوجھ تلے دب جاتی ہے۔ برف سی اجلی" میں بھی یہی رویہ جھلکتا ہے کہ عورت اگر حسن سے محروم ہو جائے تو شوہر کی نظر میں اس کی اہمیت مشکوک ہو سکتی ہے۔ فرق یہ ہے کہ بیدی نے عورت کے وقار کو سماجی زاویے سے دکھایا جبکہ اس افسانے میں عورت کی شناخت ازدواجی تعلق اور حسن پرستی سے جڑی ہوئی ہے۔

منٹو عورت کو اکثر حقیقت میں دکھایا ہے، جہاں حسن اور خواہش کی بنیاد پر رشتے قائم ہوتے ہیں مگر حقیقت ان رشتوں کو توڑ دیتی ہے۔ ہتک" میں مرکزی کردار سوگندھی طوائف ہے، جو سماج کے لئے جسمانی حسن اور لذت کا ذریعہ ہے، مگر حقیقت میں وہ ایک انسان ہے جس کی تذلیل کی جاتی ہے۔ حسن یہاں بھی وقتی ہے اور حقیقت تلخ۔ اسی طرح "ٹھنڈا گوشت" میں عورت حسن کا استعارہ نہیں رہتی بلکہ مرد کی ہوس اور انجام کی تصویر ہے۔ "برف سی اجلی" میں یہ تضاد کم شدت سے لیکن نفسیاتی انداز میں ابھرتا ہے۔ ایک شوہر جو حسن پرست ہے، اور ایک بیوی جو حقیقت (بیماری، بدصورتی) کے کرب کے ساتھ جی رہی ہے۔مماثلت تینوں (بیدی، منٹو، اور موجودہ افسانہ) میں عورت کے حسن کو ایک سماجی اور نفسیاتی پیمانے کے طور پر پیش کیا گیا ہے، اور حسن کا زوال یا اس کی غیر موجودگی تعلقات کے توازن کو بگاڑ دیتی ہے۔بیدی زیادہ
سماجی اور اخلاقی رویوں کو سامنے لاتے ہیں۔ منٹو عورت کو سماجی و جنسی حقیقت کے تناظر میں دکھاتے ہیں۔" برف سی اجلی" عورت کو ازدواجی تعلق اور شوہرپن نظر سے پرکھتا ہے۔ یہ افسانہ ذاتی اور نفسیاتی دائرے میں محدود رہتا ہے، مگر قاری کو سوچنے پر مجبور کرتا ہے کہ کیا حسن ہی رشتے
کی بنیاد ہے؟اگر بیدی کا "لاجونتی" سماج کی عکاسی ہے اور منٹو کا "ہتک" عورت کی تذلیل اور حقیقت کی، تو "برف سی اجلی" حسن پرستی کے خواب اور حقیقت کے تصادم کا بیانیہ ہے۔ یہ افسانہ قاری کو ایک نفسیاتی آئینہ دکھاتا ہے، جہاں محبت کا امتحان حسن کے زوال سےشروع ہوتا ہے
تقابلی مطالعے سے یہ بات واضح ہوتی ہے کہ "برف سی اجلی" اگرچہ اپنی نوعیت میں چھوٹا اور سادہ افسانہ ہے، لیکن یہ بیدی سماج کے تناظر میں عورت کے وقار کو دیکھتے ہیں۔ منٹوعورت کو حقیقت کی بے رحمی دکھاتے ہیں، اور "برف سی اجلی" ازدواجی محبت میں حسن کے زوال سے پیدا ہونے والی نفسیاتی کشمکش کو اجاگر کرتا ہے۔

"پہاڑوں کی آغوش میں"

فطرت کی کشش اور انسان کی تنہائی کو موضوع بناتا ہے۔ پہاڑ اور ان کی آغوش سکون، تحفظ اور پناہ کی علامت ہیں۔ افسانہ نگار نے کرداروں کی نفسیاتی تھکن اور ان کے فطرت سے رشتے کو نمایاں کیا ہے۔ یہ افسانہ فطرت اور انسان کے باطنی سکون کے تعلق کو اجاگر کرتا ہے۔ کردار کوئی ایسا شخص جو شہری زندگی کی مشینی دوڑ دھوپ سے اکتا کر پہاڑوں کا رخ کرتا ہے۔ موضوع فطرت کا سکون، انسان کی تنہائی اور داخلی سکوت کی جستجو۔ اسلوب منظرنگاری اور فطرت کے حسین مناظر کہانی کو جمالیاتی رنگ دیتے ہیں۔ پیغام انسان اگر فطرت کی آغوش میں جائے تو اسے اپنی ذات کا گہرا عرفان اور سکون ملتا ہے۔

"دایاں موڑ"

کہانی زندگی کے فیصلوں اور ان کے نتائج پر مبنی ہے۔ موڑ" استعارہ ہے قسمت یا زندگی کی اس تبدیلی کا جو اچانک انسان کو نئی سمت میں لے جاتی ہے۔ افسانے میں فیصلہ سازی، انجام اور تقدیر کا احساس غالب ہے۔ یہ افسانہ زندگی میں اچانک آنے والے فیصلوں اور ان کے نتائج پر مبنی ہے۔ کردار کوئی عام آدمی جو زندگی کی دو راہوں پر کھڑا ہے۔ موضوع قسمت، فیصلہ سازی، اور زندگی کی سمت بدلنے والے موڑ۔ اسلوب بیانیہ اکثر ڈرامائی اور سنسنی خیز موڑ پر پہنچا کر قاری کو سوچنے پر مجبور کرتا ہے۔ پیغام زندگی ایک سفر ہے، اور اس میں ایک چھوٹا سا فیصلہ انسان کی تقدیر بدل سکتا ہے۔

"نئی راہ"

امید، نئی منزل اور جدوجہد کی علامت ہے۔ کہانی میں مایوسی کے بعد زندگی کے نئے امکانات سامنے آتے ہیں۔ پیغام یہ ہے کہ انسان اگر حوصلہ پیداکرے تو اندھیروں کے بعد نئی روشنی کی راہ نکل آتی ہے۔ یہ سب افسانے مختلف انسانی رویوں، سماجی تضادات اور داخلی

کشمکش کو چھوتے ہیں۔ کہیں رومانوی سطحیت ہے، کہیں حقیقت کا دباؤ، کہیں قربانی کا سبق اور کہیں نئی راہ تلاش کرنے کی جستجو۔ "سترنگ" کی یہ افسانوی کڑی نوجوان قاری کو رومانی، سماجی اور نفسیاتی ہر سطح پر متاثر کرتی ہے۔ افسانے کی معنوی تہہ، کرداروں کی نفسیات، اسلوب اور اس کے فکری و سماجی پیغام کو سمجھا جا سکے۔ متذکرہ افسانہ امید اور جدوجہد کا استعارہ ہے۔ کردار ایک ایسا شخص یا عورت جو شکست اور مایوسی کے بعد نئی راہ تلاش کرتا ہے۔ موضوع شکست کے بعد امید، نیا سفر، اور جدوجہد۔ اسلوب رجائی اور حوصلہ افزا، بیانیہ روشنی کی طرف بڑھنے کا تاثر دیتا ہے۔ انسان اگر ہمت کرے تو ہر اندھیرا کٹ سکتا ہے اور زندگی کے امکانات نئے دروازے کھول دیتے ہیں۔ سترنگ" میں شامل یہ افسانے اپنے اپنے رنگ میں انسانی زندگی کے مختلف پہلوؤں کو پیش کرتے ہیں۔رومانی سطحیت اور سنجیدگی کا تضاد (گرل فرینڈ کے متلاشی، عشق اور امتحان، رشتوں میں قربانی اور بقا،سمجھوتہ عورت کی داخلی عظمت اور معاشرتی سرد مہری، برف سی اجلی، فطرت اور انسان کا رشتہ، پہاڑوں کی آغوش میں،زندگی کے فیصلے اور تقدیر کا راز،دایاں موڑ، امید اور رجائیت،نئی راہ، یہ افسانے محض کہانیاں نہیں بلکہ آج کے معاشرتی، نفسیاتی اور جمالیاتی تناظر کو نمایاں کرتے ہیں۔ ان میں نوجوان نسل کی بے سمتی بھی جھلکتی ہے ۔ اور مستقبل کی نئی راہوں کی بشارت بھی۔ ہر فن کار خوابوں کے جھروکوں سے زندگی کی

رنگا رنگ اور مستقبل کی نئی راہوں کی بشارت بھی۔۔ ہر فن کار خوابوں کے جھروکوں سے زندگی کی رنگا رنگ سمتوں کو دیکھنے کی کوشش کرتا ہے ۔ خوابوں کی پرورش ان کی نشو و نما اور تشکیل کے لئے رگ رگ سے لہو نچوڑ نے کی ضرورت پیش آتی ہے ۔ خوابوں کے بغیر زندگی کا تصور بے معنی ہے اور افسانے انہیں جیتے جاگتے ، اونگھتے ، مسکراتے ہوئے اور کائنات کی بے ثباتی اور تغیر کے متعلق ہمیشہ ہر دور کے غماز ہیں ۔

مراجع ومصادر

1۔برف سی اجلی:علی اکبر آمبوری،ناشر ادارہ جدید ،مدراس

2۔تمل ناڈو میں اردو:علیم صبانویدی

3۔تاریخ ادب اردو تمل ناڈو:علیم صبانویدی،مرتب:ڈاکٹر جاوید ہ حبیب

4۔آزادی کے بعد تمل ناڈو میں اردونثرکا ارتقاء:ڈاکٹر پی احمد باشاہ

Dr.Maimuna Begum Saradgi
Assistant Prof
Department of Urdu
Khaja Bandanwaz University, Kalaburagi
Karnataka
Cell no: 8951312502
E-mail ID:saradgi@kbn.university

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 150-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तराखण्ड की लोक कलाएँ

श्रीमती मंजीता रतूड़ी
असिस्टेंट प्रोफेसर,
मॉर्डन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी – 249137

1. **रम्माण–**

उत्तराखण्ड के चमोली जिले के सलूड़ गांव में प्रतिभा वैशाख (अप्रैल) मे आयोजित होने वाला उत्सव है। यह उत्सव यूनेस्को की विश्व धरोहर सूचि मे सम्मिलित है। रामायण के जुड़े प्रसंगों के कारण इसे ''रम्माण'' उत्सव कहते हैं। राम से जुड़े होने के कारण इसे लोक शैली मे प्रस्तुतिकरण, लोकनाटक, स्वांग, देवयात्रा, परंपरागत पूजा, अनुष्ठान, भूमियाल देवता की वार्षिक भेंट आदि आयोजन इस उत्सव से होते हैं। इसमें विभिन्न चरित्र लकड़ी के मुखौटे पहने हैं जिन्हें पत्तर ''शहतूत'' केमू की लकड़ी पर कलात्मक तरीके से उत्कीर्ण किये जाते हैं। सलूड़ गांव के डुगी, बरोशी, सेलंग गांवों मे भी रम्माण का आयोजन किया जाता है। इसके अलावा नंदानगर के लाखी मांव में द्वारि माता का धोरा मे जो पात्र है इनसे मिलते जुलते हैं। असली स्थान नंद नगर के धूनी गांव मे है यही से माता किन्ही कारणों से भाग कर सलूड़ गांव मे आ गई इसके पीछे बहुत बड़ी कहानी है। इन सब मे सलूड़ गांव का रम्माण ज्यादा लोकप्रिय है। इसका आयोजन सलूड़, डुग्रा की संयुक्त पंचायत करती है। रम्माण मेला कभी 11 दिन तो कभी 13 दिन तक मनाया जाता है। इनमे सामूहिक पूजा, देवयात्रा, लोकनाट्क, नृत्य, गायन, मेला आदि विविध आयोजन होते हें। यह भूम्याल देवता के वार्षिक पूजा का भी अवसर भी है। रम्माण इस गांव की 500 वर्षों से भी पुरानी कला है। यह परंपरा है संयुक्त राष्ट्र संघ के संगााव ने यूनेस्कों द्वारा 2009 मे इस रम्माण को विश्व की सांस्कृतिक धरोहर का दर्जा दिया था। 7 जोड़े पारंपरिक ढ़ोल, दमाऊ की धाप पर मोर मोसी नृत्य, बणया, बाणिधाण, रत्नासारी माल, नृत्य सबको रोमांचित करने वाला होता है। मान्यता है कि आदिगुरू शंकराचार्य जी ने सनातन धर्म मे नई जान फूंकने के लिये पूरे देश के चार मठों की स्थापना की जोशीमठ के आस–पास शंकराचार्य के आदेश पर उनके कुछ शिष्यों मे जाकर पौराणिक मुखौटों से नृत्य करके लोगों के चेतना जगााने का प्रयास किया था। जो धीरे–धीरे इन क्षेत्रों में इस समय का अभिन्न अंग बन गई।

चित्र संख्या–1

चित्र संख्या–2

2. **पाण्डव नृत्य–**

नृत्य का मतलब है नृत्य और पाण्डव नृत्य गढ़वाल के सबसे लोकप्रिय नृत्य रूपों मे से एक है। किवंदतियों के अनुसार पाण्डव नृत्य पहली बार उत्सव मे लब किया गया था। जब महाभारत के पौराणिक पाण्डवों (पांच भाईयों) ने उत्तराखण्ड पर शासन किया था। इस नृत्य का क़ाईम क्षेत्र मे हिन्दुओं द्वारा मनाये जाने वाले विशेष त्यौहारों मे से गहरा संबंध है और इसे दशहरा और दीपावली के दौरान व्यापक रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

चित्र संख्या–3

3. **दीवार पेन्टिंग–**

दीवार चित्रकला उत्तराखण्ड की एक प्रसिद्ध कला है। जो गुमनामी के वर्षो से स्थानीय इतिहास और संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। यह उत्तराखण्ड मे सर्वव्यापी है। और सौन्दर्य मूलय और इसकी भव्यता के कारण दुनियाभर के कला प्रेमियों द्वारा उनकी व्यापकता राज से सराहना की जाती है। दीवार चित्रकला कुमाऊ और गढ़वाल मे सर्वाधिक प्राचीन तथा इनकी एक समृद्ध परंपरा है। जिसके बारे मे दुनिया को तब तक पता नही था जब तक कि हाल मे ही विश्व के कला पारखी इस शानदार कला रूप और इसकी उत्कृष्ठता पर ध्यान नही दिया।

चित्र संख्या–4

4. **लघु चित्रकला**

उत्तराखण्ड की लघु चित्रकला को प्रमुख और महत्वपूर्ण कलाओं मे से एक है। इसका इतिहास बहुत समृद्ध है और यह मुगल काल से चली जा रही है। मुगाल राजकुमार सुलेमान शिकोह जो इस क्षेत्र की प्रकृति की सुन्दरता से आकर्षित थे। अपने निर्वासन के वर्षो के दौरान शक्तिशाली हिमालय गोद मे समय बिताने के लिये उत्तराखण्ड आये थे। वह अपने साथ–साथ अपने चित्रकारों को भी लाये थे जिन्होंने इस क्षेत्र मे सबसे पहले लघु चित्रकला की शुरूवात की।

चित्र संख्या–5

अन्य कलायेंः–

1. काष्ठ कलाः– यह यहॉ के प्राचीन भवनों, मन्दिरों आदि में काष्ठकला के सशक्त उदाहरण आज भी देखने को मिलते हैं। लकड़ी पर की गई कारीगरी काष्ठकला के उन मान कारीगरो की देन है। जो अब मल्ला, दानपुर के सीमान्त पर गिनती के रह गये है। काष्ठकला का निर्माण और दूसरा दरवाजा, खिड़कियॉ आदि पर की गई नक्काशी, भवन निर्माण सम्बन्धी उपकरणों में मोर, सिगाड़ा द्वार खिड़की खम्बे आदि है। विशेष रूप से दरवाजो के उपरी हिस्से में खोदी गयी उभरी मूर्तिया मिलती है। इन मूर्तियों के चारों तरफ गोल या चौकोर आकृति उभारी जाती है, और उनके बीच देवमूर्तियॉ या एक पशु की आकृति का अंकन किया जाता हैं।

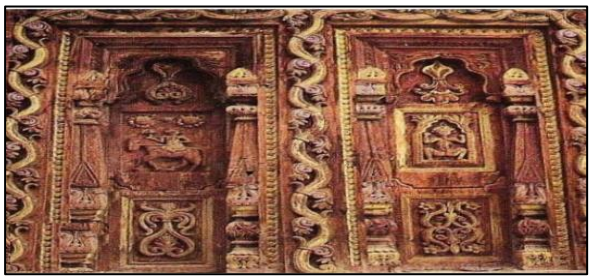

चित्र संख्या–6

2. **उकेरण शेलीः**– इनमें गोदना तकनीति का प्रयोग होता है। तथा जो चित्र उकेरण शैली से किया जाता है उसमें शिवपीठ का अन्य देवी देवताओं के मन्त्र, ताँबे की प्लेट पर खुरदाये जाते है, प्रचलित लोक चित्रकला में प्रयुक्त सभी प्रतीत धार्मिक है।

चित्र संख्या–7

3. **धातुकलाः–** धातु कला के रूप में सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल आदि से निर्मित पात्र आभूषण एवं मूर्तियॉ कुमाऊँ क्षेत्र में सभी जगह दिखाई देती है। विशेषकर ताँबा धातु कलात्मक पात्र के निर्माण से सर्वाधिक प्रयोग में लायी जाती है। इन पात्रों में विभिन्न प्रकार के बेलबूटे, मछली ,मोर , हाथी का चित्र रहता है। उत्तराखंड में एक विशिष्ट कला के ''स्वर्ण आभूषण'' है। जो उत्तराखंड राज्य की पहचान है।

चित्र संख्या– 8

4. **स्वर्ण आभूषणः–**

स्वर्ण आभूषण जैसे तिलहड़ी, हसूली, पौछी, झुमका, नथ आदि आभूषणों में उत्तराखंड की कला चित्रकारी दिखाई जाती है।

चित्र संख्या–160

पाद टिप्पणी

1. बैराठी, कृष्णा, कुमाऊं की लोक कला संस्कृति और परंपरा, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा 1992
2. बिष्ट, प्रोफेसर शेर सिंह, कुमाऊं हिमालय समाज एवं संस्कृति अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2008
3. प्रकाश, सत्य, उत्तराखण्ड की सामाजिक धार्मिक दशाए, आत्माराज एण्ड संस कश्मीरी गेट दिल्ली, 1998, पृ.सं.–11
4. बलूनी, डॉ दिनेश चन्द्र, उत्तरांचलः संस्कृति, लोकजीवन इतिहास एंव पुरातत्व, प्रकाश बुक डिपो बड़ा बाजार, बरेली प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं2
5. बलूनी, डॉ दिनेश चन्द्र, उत्तरांचलः संस्कृति, लोकजीवन इतिहास एंव पुरातत्व, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं.–3
6. बलूनी, डॉ दिनेश चन्द्र, उत्तरांचलः संस्कृति, लोकजीवन इतिहास एंव पुरातत्व प्रकाश बुक डिपो बड़ा बाजार बरेली, प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं.3
7. बलूनी, डॉ दिनेश चन्द्र, उत्तराचलः संस्कृति, लोकजीवन इतिहास एंव । पुरातत्व प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं.–2

फोन नः– 7017029797

पताः–मंजीता रतूड़ी, रतूड़ी भवन, शांतिनगर ढालवाला, निकट न्यू वॉटर टैंक वार्ड नं0 9

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 154-157
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत की जनजातिय भाषाएं और साहित्य संस्कृति की प्रासंगिकता (छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले में निवासरत गोंड जनजाति के संदर्भ में)

डॉ.अश्वनी कुमार ध्रुव
प्रोफेसर,
शास.महाविद्यालय नगरी,जिला–धमतरी (छ0ग0)

भारतीय समाज प्राचीन सभ्यता की जन्मस्थली है प्राचीन भारतीय संस्कृति के एकाकी स्वरूप और प्राचीन अन्य देशों की संस्कृतियों के मुकाबले पिछड़ेपन का यत्र तत्र उल्लेख किया जाता रहा है परन्तु भारतीय संस्कृति एवं समाज के अनेक आयाम है, और इन्हीं आयामों के अन्तर्गत भारतीय समाज की उत्पत्ति अथवा इसके इतिहास का प्रारंभ बताना कोई आसान कार्य नहीं और वह अपने ज्ञानमय प्रकाश से पथ भ्रष्ट मानवता को निरंतर रास्ता दिखलाई रही है , आज भी इस गौरव से भारत वंचित नहीं है, भारतीय समाजिक संरचना विश्व की विभिन्न संस्कृतियों विचारों भाषाओं प्रजातियों धर्मो एवं साहित्य आदि के प्रति अत्यधिक सहनशीलता का परिचय देते हुए उन्हे अपनें में स्थान दिया है , इस कारण भारतीय समाज विभिन्नताओं की एक अनुठी लीलाभूमि बन गया है।

भारत एक विशाल देश है जिसे किसी सरल सुत्र में बांधना संभव नहीं इसका एक लंम्बा इतिहास है। जिसमें अनेक उतार चढ़ाव है। भारतीय जीवन की अनेक अभिव्यक्तियों के पीछे आत्मा की एकता विद्यमान है भारत अनादिकाल से परस्पर विरोधि जातियों और सभ्यताओं का संगम रहा है। विश्व की अधिकतम देश अपना अस्तित्व खो चुके हैं। पर भारत केवल जीवित है। उसने एक अंखड संस्कृति का पोषण और विकास किया है इस भूमि पर विभिन्न जातियां मिली है लड़ाइयां लड़ी और भाई–भाई की तरह रहें हैं तथा एक दुसरे से घूल मिल गये है। भारत देश पर विरोधी संस्कृतियों में प्रभूता के लिए संघर्ष हुए है संघर्षो के फलस्वरूप नये संस्लेषण हुए जिनमें मनुष्य ने उपलब्धियों के नये स्तरों को छुआ है, प्रकृति के उपद्रवों और मानव के कुशासन पर प्राणत्व और बुद्धिमता का उद्घाटन भारतीय संस्कृति से प्राप्त होता है। यह कहानी एकता और संश्लेषण की है समन्वय और विकास की है पुरानी मान्यताओं और नये मूल्यों के सामानीकरण एवं सामान्जस्य की है। भारतीय संस्कृति विविधता में एकता का एक अनुपम उदाहरण है।

भारत महामानवता के लिए पुण्यतीर्थ के सामान है किसी को भी ज्ञात नहीं, कि किसके आव्हान पर मनुष्यों की इतनी धाराएँ प्रबल वेश से बहती हुई कहां कहां से आयी और महा समुद्र रूपी इसी भारत भूमि में आ मिली और घूल मिल गयी । जिसको जीव ईश्वर और जगत संबंधी वादों के प्रवर्तक होने का आसाधारण सौभाग्य प्राप्त है जिसको दुख सहना सिखाया गया है दुख देना नहीं अन्य धर्म जातियों के प्रति

सहिष्णुता की भावना रखी है। और उनकी पीड़ा व असहाय अवस्था में पनाह दी है। जहां ईश्वर दर्शनकारी संतो का सदा तांता बना रहा है। जिसकी सभ्यता प्रारंभ से चली आ रही है।

भारतीय समाज विभिन्न प्रजातियों का संगम स्थल रहा है समय समय पर भारत में विभिन्न समुदाय प्रवेश करते रहें लेकिन कालान्तर में ऐसे सभी समूहों की सांस्कृतिक परम्पराएँ भारतीय समाज का अंग बन गई। साधारणतः ऐसे समूहों को ही हम जनजाति के नाम से संम्बोधित करते हैं। ये जन जातियां प्रायः शहरी सभ्यता से दूर गहन जंगलो के अंधेरे कोने में पर्वतों की गगन चूंबी चोटियों पर एवं उनकी तलहटी तथा पठारी क्षेत्रों में निवास करती है। जनजातियां प्रत्येक अर्थ में अत्यंत पीछड़ी हुई है, इसीलिये इनको आदिम तथा खाना बदोश मानकर अवेहेलना की जाती रही है।

जनजाति समुदाय के अधिकांश अध्ययन जनजातियों की सामाजिक संस्कृति पक्ष से संबंधित रहे है जिसमें जनजातिय समुह की भाषा साहित्य और संस्कृति संरक्षण खान पान मान्यताए परिवार एंव विवाह के प्रतिमान प्रमुख रहा है।

समान्यतः जनजातिय तथा आदिवासी शब्द का अर्थ पिछड़े हुए और असभ्य मानव समुह से समझते हैं जो कि एक सामान्य भाषा बोलता है और सामान्य संस्कृति को प्रयोग में लाता है।

अदिम काल से ही जनजाति समाज धार्मिक विश्वास तथा व्यवहारों से सुसम्पन्न रहें है। जनजातियों में यह मान्यता रही है कि उनके लिए सभी स्थान धार्मिक है, क्योंकि वे स्थान जीवात्माओं के स्थान है। जानवरों, पौधों, वृक्षों, तलाबों, नदियों, व पत्थर, पहाड़, सब में जीव का निवास स्थान है। प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ में निवास करने वाले गोंड़ जनजातिय भाषाएं और साहित्य संस्कृति पर केन्द्रित है। प्रदेश की कुल जनसंख्या का 32 प्रतिशत आबादी जनजातियों का है, जो प्रदेश के 15 जिलों में निवास करती है। प्रदेश की विभिन्न भाषाएं और संस्कृति की झलक प्रदेश के दुरस्थ अंचलों तक फैले गोंड जनजातियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है।

छत्तीसगढ़ का पहचान यहां की संस्कृति है। भौतिकता से दूर मजरा–टोला गांव, पारा में रहने वाले लोक और यहां की प्राकृतिक जीवन शैली अपने उपाय में अदभूत है। गोंड समाज सादा जीवन उच्च विचार को अपना आदर्श अपनाये हुए अभावग्रस्त जीवन संघर्ष से जुझता हुआ किसान मजदूर अपनी संस्कृति के लिये सदियों से पहचाना जाता रहा है। गोड़ जनजाति समुदाय 750 कुल गोत्र के लोग जो 12 पेन सगा भाई शाखाओं में विभाजित है। प्रत्येक सगा भाई के लिए 100–100 गोत्र नाम है।

गोंड जनजातिय समूह के लोग बाहरी दुनिया से लम्बे समय से दुरी बनाए रखें है, तथा जंगलों पहाड़ो एवं पर्वत श्रृंखलाओं में निवास करती है। यही कारण है कि गोंड जनजाति समूह के लोग अपनी संस्कृति को जीवंत और सुरक्षित रखा है। गोंड़ जनजाति के लोगों में धार्मिक संस्कारों का विशेष महत्व है। इस समाज के लोगो में धार्मिक संस्कार अथवा धार्मिक कर्मकाण्ड की शुरूआत गर्भावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक चलती है। गर्भ पूजा, छठी, विवाह तथा मृत्यु संस्कार तीज त्योहार, फसल की कटाई इत्यादि अवसरों पर पूर्वजों की पूजा विशेष रूप से किया जाता है। उनमें विश्वास है कि पूर्वजों के प्रसन्न रहने पर ही परिवार सुख शांति, अच्छी फसल , अच्छी स्वास्थ्य रहता है। गोड़ी संस्कृति का अपना अलग पहचान है। भारत के इतिहास में कई संस्कृति पनपी और काल के गर्त मे विलिन हो गई परन्तु गोड़ी संस्कृति की पहचान आज भी विद्यमान हैं। गोड़ी संस्कृति का मूल आधार है प्रकृति शक्तियों (पेड़ पौधे, पर्वत, नदी, हवा, पानी, आग) आदि की आराधना। आज लाख उनकी विपदाओं के बीच गोंडी फल फुल रहे है तो इसका कारण उनकी उत्सव प्रियता, नृत्य, संगीत, धार्मिक एंव सामाजिक त्योहारों में रेला, मांदरी, हुलकी , चुटकुली क्षेत्रीय मुखिया की अनुमति से सम्पन्न होता है।

गोड़ी संस्कृति प्रमुख त्योहारों में आमा जोगानी, अच्छी फसल, उत्पादन के लिए, बीज निकालने, हरियाली, नवाखाई,

भादों माह में प्रमुख देवि देवताओं की सेवा मड़ई आदि। नृत्य गोड़ी संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था अनुसार (लिंगो ने देवी – देवताओं के शक्ति को पूर्वजों के रूप में मान्य किया जाता है। मृतक पूर्वजो को देव माना जाता है। जगत सर्वोच्च शक्ति माता–पिता सेवा की बात कही जाती है। लिंगो के अनुसार गोड़ी धर्म का अंतिम लक्ष्य सगाजनों का कल्याण करना है। लिंगो ने सर्वप्रथम सगाजनों को जय सेवा दर्शन का परिपाटी दी है, जय सेवा का अर्थ सेवा भाव का सदा जय–जयकार हो ऐसी मान्यता है।

टोटम व्यवस्था साथ–साथ रहने वाले परिवारों का समूह है, यदि किसी पेड़, पौधे, पशु पक्षी की जीव को अपने गोत्र या कुल समूह का चिन्ह मानता है तो उस समूदाय का कूल चिन्ह कहा जाता है। अपने कुल गोत्र को छोड़कर अन्य, पशु पक्षी, पेड़ , पौधें वनस्पति का उपभोग कर सकता है। सगा समाज 750 गोत्र धारक लोग प्रत्येक गोत्र धारक 3–3 कुल चिन्हों के हिसाब से प्रकृति के 2250 जीव तत्वों के संरक्षक होते है।

बारह सगा भाई में से विषम संख्या के कुल 420 गोत्र एवं सम संख्या के कुल 330 गोत्र संख्या है। इस प्रकार 420+330 = 750 सम विषम कुल गोत्र संख्या निर्धारित है। सम विषम गोत्र में विवाह संबध प्रस्तावित करते है।

गण गोत्र 750 का सामाजिक व धार्मिक महत्व व मान्यता इस प्रकार है :–

1. 7 – अंक/–जीवन के – 7 गोत्र /7 लॉकांज / 7 पीढ़ी / 7 वचन फेरे/ 7 खण्ड, (धरती आकाश पाताल इत्यदि)
2. 5 – अंक मृत्यु के – 5 तत्व/क्षिति,जल,पावक,गगन,समीरा) 5 खण्ड फेरे/कमर डोर (करधन) 5 खण्ड/ 5 गोड़ी,
   स्वर – रे, लो, चो, ल, य..... ।
3. 0 – अंक जीवन–मरण के – माता की कोख/गुफा/सल्ला गागरा/पृथ्वी का आकार आदि।
   7+5+0 = 12 सगा पेन शाखाएं/12 माह/बाजा/दोगंग/माई

गोड़वाना की पहचान – स्वाभिमान, स्वावलंबन और सम्मान

धार्मिक रीतियों में, टोंडा, मंडा, कुण्डा शब्द का प्रयोग किया गया है, टोंडा एक गोत्र समूह के भाई, टोंडा गोंडी शब्द है। वंश वृद्धि, संतानों का अच्छा परवरिश, माता, पिता का सहारा, लगा कुटुम्ब का सहयोग आदि। इसी प्रकार मंडा,गोड़ी शब्द (मडवा छत्त या लकडियों का आयताकार या आगे बढ़ने के लिए सहारा की आवश्यकता होती है। युवक/युवती जन्म से लेकर युवावस्था तक संस्कारिक होकर मडवा जैसी व्यवस्था (विवाह) में पदार्पण करते है। कुण्डा शब्द का अर्थ है सगा कुटुम्ब की मृत शरीर/जीव या लाकांज/जीव आत्मा को स्थान विशेष पर स्थापित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया/ पुर्नजन्म का सिद्धान्त आदि। गोड़ी संस्कृति में मरने के बाद आत्मा स्वर्ग नहीं अपितु शक्ति के रूप में स्थापित होकर हमारी रक्षा करते है। विवाह – परिवार नाम संस्था का उद्देश्य विवाह से हुई है। व्यक्ति अकेला रहकर परिवार का निर्माण नहीं कर सकता। विवाह, पुरूष, स्त्री, को सामाजिक, वैधानिक एवं नैतिक मान्यताएं प्राप्त होती है। जो परिवार विस्तार में अहं भूमिका का निर्वहन करते है ।

गोड़ी परम्परा में एक दिवसीय शादी, बड़े शादी, मंझली शादी, सगाई शादी का प्रथा चलन में है। विवाह के लिए लड़की की आयु 18 वर्ष एवं लड़के की आयु 21 वर्ष समाज ने मान्यता दी है। सगाई के पूर्व लड़का–लड़की दोनों पक्षो के डिहिवारों की उपस्थिति में गोत्र (नाता रिश्ता) की संम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर फलदान का कार्यक्रम किया जाता है। डिहीवारों की उपस्थिति में विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। विवाह में सगाई नेंग , बरोखी नेंग, मायसरी नेंग, डेढ सास नेंग, यथा शक्ति एक साड़ी भेट स्वरूप दिया जाता है। सुसरा खण्डा – 5रू ,मामावारी – 5रू का प्रावधान है। देवकौड़ी सत्ता देव संख्या के अनुसार लिया जाता है।

गोंडी संस्कृति में मंण्डप पूजा ग्राम की सेवा में गांयता द्वारा जिम्मेदारीन माई में देवतेला सेवा हेतु तेल, हल्दी, पिसान, चावल, छिंद मौर चढ़ाया जाता है। मंडप पूजन में परम्परानुसार महुआ पेड़ की डंगाली को विधिवत सेवा अर्जी परघौनी कर एवं गायता के हाथ से महिलाएं चुलमाटी प्राप्तकर सम्मानपूर्वक लाने की परम्परा है। मंडप में वर वधु को युवक युवतियों द्वारा हल्दी पानी से नहलाकर एवं हरिद्रालेपन कर सातपसर चावल खिलाने का नियम है, पचतेला में महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है जिसमे पछतेला के रूप में स्वेक्षिक तेल हल्दी चढ़ाने का नियम है। अपरान्त वर वधू को नहला कर तेल मौर पहनाकर तेल उतारने का कार्य दोषी (पंण्डित) द्वारा संम्पन्न कराया जाता है।

भांवर वर वधू को सातफेरा करवाया जाता है। जिसमें सात प्रतिज्ञा दोषी द्वारा करायी जाती है। विवाह कार्य में सम्पूर्ण रस्म को सम्पन्न कराने में दोषी ही प्रमुख व्यक्ति होता है। भांवर के पश्चात वर पक्ष एवं वधू पक्ष द्वारा दूल्हा दूल्हन का पांव पखारने की परम्परा है। गोड़ी संस्कृति ही उनके जीवन का आधार है। गोंडी संस्कृति में दहेज का कोई प्रावधान नही है। वधु के माता पिता व परिवारजनो के द्वारा इच्छा अनुरूप जो भी समाग्री प्रदान किया जाता है उसे वर पक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है।

जब कोई भी जीवन के आधार पर कुटाराघात करे तो उससे उत्पन्न मर्रमान्तक पीड़ा उससे महसूस की जा सकती है, संसार में जन्म और मृत्यु कटु सत्य शरीर नष्टवान है जो इस संसार में जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन पंचतत्व में विलिन होना ही पड़ेगा, गोंड़ी धर्म में मृत व्यक्ति के शव को मिट्टी में दफनाने का रिवाज है विषम परिस्थिति में किसी गंम्भीर बीमारी आदि से पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु या आकाल मृत्यु हो जाने पर दाह संस्कार का विधान है। मृत्यु के तीन दिन बाद या पांच दिन या दस दिन में तीज नहावन,पंच नहावन एवं दसगात्र किया जाता है जिसमें मृतक परिवार के सभी पूरूष सदस्यों का सिर मूण्डन कराया जाता है।

यह कहा जा सकता है, भारत देश की जनजातिय भाषाएं और साहित्य संस्कृति की प्रांसगिकता जनजातिय परिवार विशेषकर गोंड़ जनजातिय जो कि छत्तीसगढ़ प्रांत के लगभग 16 जिलों में निवासरत है। गोंड़ समाज का अपना एक परम्परा संस्कृति रीति रिवाज बोली भाषा प्रचलित रहा है ,जिससे गोंड़ समाज का एक अलग पहचान आदिकाल से रही है, समाज का अपना अलग अलग शैली रहन सहन समाजिक व्यवस्था रहा है। समय और देशकाल एवं परिस्थिति वश यह व्यवस्था परिवर्तित और संशोधित होता रहता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. यादव मनीष – भारतीय समाज
2. डॉ. अग्रवाल भरत एवं डॉ. मुकर्जी रवीन्द्रनाथ – भारत में समाज सेवा एवं परिवर्तन
3. कुजूर निस्तार आदिम जनजातीय कोर्वा
4. डॉ. बंजारे स्वामी राव
5. शर्मा प्रमोद कुमार – परिवार और विवाद के बदलते प्रतिमान

मो. 9617808055 , 9424237228

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 158-161
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महावाक्य के अपरोक्षावबोध की आवश्यकता एवं महत्त्व
(वेदान्ताचार्य सर्वज्ञात्ममुनि के कृतित्व के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. ममता स्नेही
सहायक आचार्या,
विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

कूट शब्द – उपनिषद्, महावाक्य, पदार्थ शोधन, प्रत्यगात्मा, अपरोक्षावबोध, तत्त्वमसि ।

अद्वैत वेदान्त दर्शन में स्वस्वरूपानन्दावाप्ति - ये वेदान्त का परम् प्रयोजन हैं, जिसकी प्राप्ति हेतु अविद्यानिवृत्ति आवश्यक है। ब्रह्मसम्बन्धी अविद्यानिवृति शास्त्रज्ञान से ही सम्भव है। शास्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से इस ब्रह्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति सम्भव नहीं है अर्थात् शास्त्र साक्षात् रूप से ब्रह्मज्ञान तो नहीं करवा सकता किन्तु महावाक्यों के अर्थ निर्धारण द्वारा ब्रह्मसम्बन्धी अज्ञान-निवृत्ति करवा कर ब्रह्म में अविद्या द्वारा आरोपित अतद्धर्मों को निवृत्त अवश्य करता है। **"शास्त्रं हि प्रत्यगात्मनि अविद्याध्यारोपितमतद्धर्मं निवर्तयत्येव केवलम्, न तु तं कर्मी करोति"[1]।** 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों के केवल पदार्थबोध से ही मुमुक्षु में कृतार्थता (स्वस्वरूपानन्दावाप्ति) नहीं आ सकती क्योंकि पदार्थविषयक परोक्षज्ञान अज्ञान का उच्छेदक नहीं हो सकता। महावाक्यजन्य अपरोक्षज्ञान ही अज्ञान का उच्छेदक है। यद्यपि शोधित 'तत्' पदार्थ ब्रह्म में प्रत्यग्रूपता का निश्चय वाक्यार्थबोध से पूर्व ही हो जाता है किन्तु वह परोक्ष ही रहता है। इसलिए श्रवण के बाद मनन एवं निदिध्यासन करने का आदेश श्रुति ने दिया है। अतः पदार्थबोध परोक्ष माना जाता है और वाक्यार्थबोध अपरोक्ष कहा गया है, वही अपरोक्षज्ञान अज्ञान का निवर्तक होगा। अज्ञाननिवृत्ति के पश्चात् ही साधक में कृतकृत्यता आती है[2]। तर्कबोध के द्वारा सम्पूर्ण अनात्मवस्तु का निषेध कर देने पर भी अद्वैत आत्मतत्त्व का स्फुरण हो जाता है किन्तु वह तर्कोद्भावित होने के कारण परोक्ष ही रहता है। महावाक्यजन्य बुद्धि वृत्ति में अद्वय अखण्ड तत्त्व अपरोक्षरूप से भासित होता है। इसलिए तर्क से होने वाला आपाततः अद्वैतबोध परोक्षमात्र होने के कारण मोक्षरूप फल को नहीं दे सकता, मोक्ष तो महावाक्यजन्य अपरोक्षबोध से ही मिल सकता है[3]। जैसे अधम, मध्यम और उत्तम शुद्धि वाले दर्पण में अपना मुख तरतम क्रम से प्रतिभासित होता है वैसे ही यहाँ बुद्धिवृत्तियों में तत्त्व भासता है। मलिन दर्पण में अपना मुख मलिन, स्वच्छ दर्पण में स्वच्छ और स्वच्छतम दर्पण में मुख अत्यन्त स्वच्छ दीखता है वैसे ही बुद्धिवृत्तियों में आत्मतत्त्व के प्रतिभान में अन्तर पड़ जाता है अर्थात् वृत्ति जितनी स्वच्छ होगी, उसमें उतना ही स्वच्छ आत्मतत्त्व प्रतीत होगा[4]।

'तत्त्वमसि' पदार्थशोधन की आवश्यकता –

पदार्थ विषयक परोक्षज्ञान अज्ञान का उच्छेदक नहीं हो सकता, तब पदार्थशोधन का क्या प्रयोजन है ? कोई भी मनुष्य महावाक्य बिना अद्वैततत्त्व को नहीं जान सकता। इसलिए पदार्थ के ज्ञानमात्र से मुक्ति नहीं मिलती क्योंकि वह परोक्ष ज्ञान है। मुक्ति तो अपरोक्षज्ञान से ही मिलती है जो महावाक्य श्रवण के पश्चात् ही होता है[5]। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानं करणम्' -** शाब्दिकों की इस उक्ति से वाक्यार्थबोध के लिए पदार्थज्ञान आवश्यक है। इसीलिए सर्वत्र वाक्यार्थबोध से पूर्व पदार्थ का शोधन किया जाता है। अतः कहा गया है कि पदार्थज्ञान को छोड़कर वाक्य आत्मसाक्षात्कारविषयिणी बुद्धि को उत्पन्न नहीं कर सकता है क्योंकि वाक्यार्थज्ञान में पदार्थज्ञान अपेक्षित है। पदार्थों का शोधन कर लेने के बाद वाक्यार्थ में विरोधी अंश का परित्याग कर शेष तत्त्व का बोध महावाक्य से जहदजहल्लक्षणा (भागत्याग लक्षणा) द्वारा होता है। **'तत्'** शब्द से अद्वय 'ब्रह्म' अवगत होता है और **'त्वम्'** इस पद से 'प्रत्यक्त्व' (आत्मा) जाना जाता है। इसप्रकार अद्वयत्व के बिना प्रत्यक्त्व एवं प्रत्यक्त्व के बिना अद्वयत्व हो नहीं सकता[6]।

महावाक्य में अपरोक्षावबोध की प्रक्रिया -

जो महावाक्य अपनी वेद शाखा में आया हो, विधिपूर्वक स्वाध्याय के द्वारा प्राप्त किया हो, श्रद्धापूर्वक दीर्घ समय तक आराधित हो, फिर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के द्वारा उपदिष्ट हो, वही साक्षात् अपरोक्षबोध उत्पन्न करता है, सामान्य महावाक्य नहीं[7] अर्थात् उक्त विधि से जिसने ब्रह्मसाक्षात्कार किये हुए गुरु से महावाक्य का श्रवण नहीं किया उस साधक को महावाक्य अखण्डार्थ का अपरोक्ष ज्ञान नहीं करा सकता।

महावाक्य द्वारा अपरोक्षज्ञान की उत्पत्ति में प्रमाण -

'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्'[8] इस वाक्य में वेद ने उद्घोष किया है कि वेदान्त वाक्यार्थ अनभिज्ञ पुरुष ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर सकता। ऐसे ही **'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'**[9]- इस वाक्य द्वारा ब्रह्म में औपनिषदत्व विशेषण लगाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि जो केवल उपनिषद्वाक्य के द्वारा जाना जा सकता है। अन्य किसी भाषा में रचे गये अभेदार्थक वाक्य अथवा पुराण वचनों के द्वारा उस अद्वय ब्रह्म का साक्षात्कार किसी को नहीं हो सकता [10]। पूर्वोक्त श्रुतिवाक्यों में वेद एवं उपनिषद् शब्द से महावाक्य को ग्रहण करने के लिए विवश होना पड़ता है क्योंकि महावाक्यों के बिना अन्य किसी भी वाक्य एवं प्रमाण से ब्रह्म का साक्षात्कार हो नहीं सकता। अतः ब्रह्मात्मैक्य बोध के लिए महावाक्य ही एकमात्र असाधारण कारण है [11]। **'उप-नि-षद्'** - इस वर्ण योजना के अनुसार 'समीप में अव्यवहितरूप से प्रत्यगात्मा का बोध कराने को' उपनिषद् कहा जाता है। वैसे ही 'प्रत्यगात्मरूप से ब्रह्म का बोध कराने वाले को वेद' कहते हैं। तदनुसार अखण्डाकार अन्तःकरण की वृत्ति में अभिव्यक्त चैतन्य को ही उपनिषद् एवं वेद शब्द से कहा गया है। ऐसे ब्रह्मात्मैक्यबोध कराने वाले महावाक्य को भी उपनिषद् और वेद कहते हैं। शेष सभी वेदान्तवाक्य इसके अंग हैं, इसलिए उन्हें भी वेद और उपनिषद् शब्द से कहा जाता है [12]।

महावाक्य की साक्षात् तत्त्वबोधकता में ज्ञापक प्रमाण -

तत्त्वबोधक **'तत्त्वमसि'** इत्यादि महावाक्य ही वस्तुतः उपनिषद् एवं वेद शब्द का अर्थ है क्योंकि श्वेतकेतु के पिता ने जब **'तत्त्वमसि'** इस महावाक्य का उपदेश किया, तत्पश्चात् वही श्रुति कहती है - **'तद्धास्य विजज्ञौ'**[13] अर्थात् श्वेतकेतु को उस ब्रह्मात्मैक्य अर्थ का बोध हो गया। इससे यह सर्वथा निश्चित हो जाता है कि महावाक्य ही तत्त्व के बोधक हैं, अतएव उन्हीं को मुख्यरूप से उपनिषद् एवं वेदशब्द से कहा जाता है। उसके समीपवर्ती शेष वेदभाग को वेद एवं उपनिषद् शब्द गौणीवृत्ति द्वारा कहा जाता है [14]। उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति को देखते हुए उसका वास्तविक अर्थ

ब्रह्मज्ञान ही है, उस ब्रह्मज्ञान का जनक होने के कारण **'तत्त्वमसि'** इत्यादि महावाक्य को लक्षणावृत्ति से उत्पनिषद् कहा जाता है। ब्रह्मात्मैक्य बोध में महावाक्य असाधारण कारण है, इसलिए ब्रह्मज्ञान के जनक महावाक्य में भी उपनिषद् शब्द की प्रवृत्ति होती है [15]। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि औपचारिक अर्थ में किसी शब्द का बार-बार प्रयोग होने पर वह मुख्य के समान हो जाता है। इसीलिए यह कह दिया जाता है कि उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ महावाक्य है और अवान्तर वाक्य गौण अर्थ है [16]। अतः जब उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा उपदेश करते हुए नौ बार **'तत्त्वमसि'** महावाक्य से ब्रह्मात्मैक्य बोध कराया, तब उस श्रुति को घोषणा करनी पड़ी कि श्वेतकेतु को बोध हो गया। अतः इससे सिद्ध होता है कि महावाक्य ही उपनिषद् शब्द का वास्तविक अर्थ है [17]।

इस प्रकार निष्कर्षरूपेण कहा गया कि अद्वैततत्त्व का अपरोक्षानुभव हो जाने के बाद ज्ञानी का शरीरादि में अभिमान नहीं रह जाता है। वह अपने शरीर को आत्मा से पृथक् वैसे ही देखता है और उसमें वैसे ही अभिमान नहीं रखता, जैसे सर्प छोड़ी हुई केंचुली को अपने से पृथक् देखता है और उसमें अभिमान नहीं रखता। जीवन्मुक्त को यह अनुभव होता है कि अब मुझे मोक्ष का अधिगम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया जैसे कि सामान्य जनमानस को जीवन भासता है। अब मैं हथेली पर रखे बिल्वफल की भाँति प्रत्यक्षतः अद्वैत का अनुभव कर रहा हूँ [18]।

---

1. लैंग्वेज एण्ड रीलीज, पञ्चप्रक्रिया सहित, पृ. 129
2. पदार्थबोधेन कृतार्थता न ते मतिः परोक्षा हि पदार्थगोचरा।
   अतो महावाक्यनिबन्धनैव धीः अबोधविच्छेदकारी भविष्यति॥ 3/294॥ सं.शा. पृ. 570
3. तर्कप्रतीतिसमयेऽपि तदद्वितीयं प्रत्यक् परिस्फुरति तत्प्रतिबिम्बितं सत्।
   वेदान्तवाक्यजनिताऽद्वयबुद्धिभूमिनिष्ठं पुनः स्फुटतरं भवतीति भेदः॥ 3/306॥ सं.शा. पृ. 581
4. अधममध्यमशुद्धिनि दर्पणे परमशुद्धिनि चाऽऽननमात्मनः।
   तरतमक्रमतः प्रतिभासते तदिव तत्त्वमिह प्रत्तिपत्तिषु॥ 3/307॥ वहीं, पृ. 582
5. विना महावाक्यमतो न कश्चित् पुमांसमद्वैतमवैति जन्तुः।
   ततः पदार्थावगमान्न मुक्तिः घटिष्यते तस्य परोक्षभावात्॥ 3/303॥ वहीं, पृ. 578
6. तच्छब्दादवगतमद्वितीयमासीत् प्रत्यक्त्वं समधिगतं त्वमित्यनेन।
   प्रत्यक्त्वं न खलु विनाऽद्वितीयमेवं नाद्वैतं भवितुमलं विना प्रतीचा॥ 3/305॥ वहीं, पृ. 580
7. स्वाध्यायधर्मपठितं निजवेदशाखावेदान्तभूमिगतमादरपालितं च।
   संन्यासिना परदृशा गुरुणोपदिष्टं साक्षान्महावचनमेव विमुक्तिहेतुः॥ 3/295॥ वहीं, पृ. 571
8. 3/12/9/7, तै.ब्रा. पृ. 387
9. 3/9/26, बृ.उ. पृ. 234
10. नावेदविद्धि मनुते पुरुषं बृहन्तम् इत्याह वेदवचनं कथमन्यथैतत्।
    वाक्यान्तरं च कथमाह पुमांसमेनं साटोपमौपनिषदत्वविशेषणेन॥ 3/296॥ सं.शा. पृ. 572
11. उपनिषदिति वेद इत्यपीदं समभिवदन्ति महावचो महान्तः।
    फलवदवगतिः स्यादन्तरेणैतदेकं वचनमिति न शक्यं वक्तुमित्यादरोऽस्मिन्॥ 3/297॥ वहीं, पृ. 573
12. उपनिषदिति शब्दो वेदशब्दश्च तस्माच्छ्रुतिशिरसि निविष्टो योज्यतामत्र वाक्ये।
    अपरमखिलमस्यैवाङ्गभूतत्वहेतोरिह समभिनिविष्टं तद्गिरो वाच्यमासीत्॥ 3/298॥ वहीं, पृ. 574
13. 6/7/6, छा.उ. पृ. 378
14. पित्रा तत्त्वमसीति बोधनमनु स्पष्टं विजज्ञावितिच्छान्दोग्ये यदवोचदेतदिह नो लिङ्गं भवेज्ज्ञापकम्।
    सर्वत्रैव महागिरामुपनिषच्छब्दो भवेद्ग्राहको वेदश्चायमतोऽन्यदस्य निकटे तेनात्र वेदादिगीः॥ 3/299॥ सं.शा. पृ. 575
15. उपनिषद्वचसा परमात्मधीः सहजशक्तिवशेन निगद्यते।
    तदुपचर्य महागिरि वर्तते निकटभावमपेक्ष्य तु मुख्यगीः॥ 3/300॥ वहीं, पृ. 576
16. उपनिषद्वचसाऽभिहिताऽऽत्मधीः निकटवर्त्तिमहागिरि मुख्यवत्।
    उपनिषद्वचनं तदवान्तरे वचसि गौणवदत्र विवक्ष्यते॥ 3/301॥ वहीं, पृ. 577
17. यतो महावाक्यत एव पुत्रो विजज्ञिवानस्य पितुः सकाशात्।

इति श्रुतं तेन स एव वेदः तथा च सैवोपनिषच्च सिद्धा ॥ 3/302 ॥ वहीं, पृ. 578

18. अद्वैतमप्यनुभवामि करस्थबिल्वतुल्यं शरीरमहिनिर्ल्वयनीव वीक्षे ।
एवं च जीवनमिव प्रतिभासमानं निःश्रेयसोऽधिगमनं च मम प्रसिद्धम् ॥ 4/55 ॥ सं.शा. पृ. 698

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. ईशादि नौ उपनिषद्, हिन्दी अनुवाद सहित, गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2060
2. सर्वज्ञात्ममुनि, पञ्चप्रक्रिया, इवान् कोमरेक कृत (Languag and Release) आङ्ग्लानुवादसहित, दिल्ली, मोतीलाल, बनारसीदास, 1985
3. सर्वज्ञात्ममुनि, संक्षेपशारीरकम्, श्रीस्वामीरामानन्दकृत भावदीपिका हिन्दीव्याख्या सहितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1987
4. शङ्कराचार्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2009
5. शङ्कराचार्य, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, व्याख्याकार, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2008
6. शङ्कराचार्य, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2009
7. शङ्कराचार्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित, गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2060

Email : mamatasnehi111@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 162-165
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अद्वैतवेदान्त दर्शनानुसार आत्मतत्त्व विवेचन

डॉ. सत्यमुदिता स्नेही,
सहायक आचार्य, संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय, दूदू (जयपुर)

प्रमुख शब्द - दर्शन, आत्मा, सूक्ष्म शरीर, बिम्ब-प्रतिबिम्ब, मोक्ष, अपरोक्षानुभूति।

भारतीय दर्शनों में सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा - यह छः आस्तिक दर्शन हैं एवं चार्वाक्, जैन और बौद्ध ये तीन नास्तिक दर्शन हैं। उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ है - अध्यात्मविद्या। इसलिए 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' जिसके द्वारा आत्मा का दर्शन (साक्षात्कार) हो, वह वेदान्त आदि भी दर्शन शब्द से कहा जाता है क्योंकि श्रुति ने आत्मदर्शन के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूप तीन साधनों का निर्देश किया है। उनमें से द्वितीय साधन तर्कात्मक मनन में अपेक्षित उपपत्ति के प्रतिपादक वेदान्तादि निबन्ध भी परम्परा से आत्मसाक्षात्कार करने में साधन हैं। इसलिए वेदान्त आदि को भी दर्शन कहते हैं[1]। इन छः आस्तिक दर्शनों के रचयिता गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि और व्यास - ये सभी महर्षि तत्त्वदर्शी थे। वेद के सिद्धान्त के सूक्ष्म-रहस्य को ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा जानते थे। इसी कारण प्रत्येक महर्षि के परमार्थ तत्त्व जानने में लेशमात्र भी विप्रत्तिपति नहीं है, किन्तु परमार्थ तत्त्व को लेकर व्यवहार की रक्षा तथा लोकसंग्रह हो नहीं सकता है। इसलिए महर्षियों ने अधिकारियों के भेद से भिन्न-भिन्न कक्षाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रस्थानों का निर्माण करके उनमें परम् गम्भीर आत्मतत्त्व का विवेचन करते हुए तत् तत् सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। प्रायः सभी दार्शनिकों के मत में मोक्ष नित्यसुख या दुःख-निवृत्ति रूप है। सांख्य, योग, वेदान्त आदि शास्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों को पुरुषार्थ मानते हैं, अर्थात् इनके मत में चार पुरुषार्थ हैं। इनमें से लौकिक सुख को काम कहते हैं। वह दो प्रकार का है - दिव्य (स्वर्गसुख) और अदिव्य (भूलोक सुख)। ये दो प्रकार के सुख उपेय (साध्य) हैं । अर्थ और काम उसके साधन हैं। इनमें मोक्ष ही परम् पुरुषार्थ है। वही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। मोक्ष की सिद्धि के लिए धर्म भी उपादेय है। धर्म की सिद्धि के लिए अर्थ भी उपादेय है एवं 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' इस नियम के अनुसार शरीर का साधन होने से काम भी उपादेय ही है । इसीलिए योगवासिष्ठ में कहा गया है –

"बुद्ध्वैव पौरुषफलं पुरुषत्वमेतद् आत्मप्रयत्नपरतैव सदैव कार्या ।
नेया ततः सफलतां परमामथासौ सच्छास्त्रसाधुजनपण्डितसेवनेन"[2] ॥

दुःखों की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्तिरूप मोक्ष केवल वेदान्तशास्त्र के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से होने वाले आत्मसाक्षात्कार से ही होती है। उसके फलस्वरूप विभिन्न दर्शनों का जन्म हुआ। श्रीमद्भागवतमें कहा

गया है कि धर्म अपवर्ग मोक्ष के लिए कर्तव्य है, न कि धनके लिए। धन-सञ्चय धर्म के लिए कर्तव्य है, न कि विषय सुख के लिए। विषय सेवन जीवन के लिए ही है, इन्द्रियों की परितृप्ति के लिए नहीं अर्थात् उतना ही विषय-सेवन किया जाए जितने से अपने जीवन का निर्वाह हो जाए और जीवन भी तत्त्व की जिज्ञासा एवं आत्मसाक्षात्कार के लिए है, नश्वर सांसारिक सुखके सञ्चयके लिए नहीं अर्थात् जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मों के चक्कर में पड़कर क्षणभंगुर सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें ही समस्त आयु व्यर्थ की जाय ? क्योंकि जीवनका परम लाभ तो वास्तविक तत्व को जानना ही है।

"धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः"[3] ॥

इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक - इन त्रिविध दुःखों से सन्तप्त प्राणी जब लौकिक और वैदिक दोनों उपायों से उस परम् सुख और परम् विश्रान्तिको नहीं प्राप्त करता है, तब लौकिक एवं वैदिक अनेक विधि साधनों के अनुष्ठान से खिन्न हुए उस सच्चे सुख, सच्ची शान्ति के जिज्ञासु को एकमात्र श्रुति की ही शरण लेनी पड़ती है। माता-पिता से भी कोटिगुण अधिक जीव का हित चाहने वाली भगवती श्रुति, पुत्रवत्सला जननी के समान समस्त दुःखों की निवृत्ति एवं परम् सुख की प्राप्ति का जो एकमात्र उपाय बतलाती है, उसको कहते हैं – 'आत्मदर्शन, आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार'। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' - इत्यादि श्रुति द्वारा निर्दिष्ट अतिगहन आत्मदर्शन का स्पष्ट रीति से प्रतिपादन करने के लिए गौतम आदि तत्त्वदर्शी मुनियों ने तत्तत् अधिकारियों की रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार न्याय, वैशेषिक आदि छः दर्शनों की रचना की है[4]।

समग्र विश्व का प्राचीन साहित्य है वेद। उस वेद का अन्तिम भाग है उपनिषद्। जिन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। सब दर्शनों में प्रधान दर्शन है - वेदान्त दर्शन। वही सम्यग्दर्शन, वैदिक-दर्शन, आत्मदर्शन इत्यादि शब्दों से कहा गया है । अन्य सभी आस्तिक दर्शनों का तात्पर्य इसी में है अर्थात् अन्य सभी दर्शन वेदान्त द्वारा निर्दिष्ट अद्वैततत्त्व की प्रतिपत्ति में ही सहायक हैं। इसलिए सच्चे सुख, सच्ची शान्ति के जिज्ञासु को उसका ठीक ठीक बोध कराने में वेदान्त शास्त्र ही समर्थ होता है क्योंकि वह आत्मविषयक समस्त विप्रतिपत्तियों का निराकरण करके, जिज्ञासु के हृदय से अज्ञान को निवृत्त करके, सत्य अपरोक्ष आत्मतत्त्व प्रकाशित कर देता है। आत्मा का अपरोक्षज्ञान होने पर ही यह जीव अनादि जन्म-मरण की परम्परा रूप संसार चक्र से मुक्त होता है[5]। यद्यपि जीव नित्य है, वास्तवमें उसके जन्म-मरण नहीं होते। तथापि वह अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीरों का ग्रहण और प्राचीन शरीरों का त्याग करता रहता है। इस शरीर के ग्रहण और त्याग को ही जन्म तथा मरण कहते हैं । वास्तवमें जीव का जन्म-मरण नहीं होता क्योंकि वास्तव में वह ईश्वर ही है। उपाधि के द्वारा भिन्न सा प्रतीत होता है। जैसे एक ही ज्योतिरूप सूर्य भिन्न-भिन्न जलों में प्रतिबिम्बित होकर अनेकरूप हो जाता हैं, वैसे ही प्रकाश स्वरूप एक ही परमात्मा अविद्या और स्थूल सूक्ष्म शरीरों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक (जीव) स्वरूप हो जाता है। जैसे आकाश में एकरूप से विद्यमान चन्द्रमा जल में प्रतिबिम्बित होकर अनेकरूप से दिखता है, वैसे ही एक ही परमात्मा तत्तत् शरीरों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूप दिखता है। इससे प्रतीत होता है कि जीव परमेश्वर का प्रतिबिम्ब है। परमेश्वर एक है। अविद्या और स्थूल-सूक्ष्म

शरीरों के भेद से उसके प्रतिबिम्ब अनेक हैं। **'मम मुखं दर्पणे दृश्यते', 'आकाशस्थः सूर्यो जले भासते'** इत्यादि अनुभव से भी प्रतीत होता है कि भेद के भासने पर भी बिम्ब और प्रतिबिम्ब वास्तव में एक ही है। अतः ब्रह्म और जीव भी एक ही हैं, भेद प्रतीति भ्रम से होती है[6]। जैसे परमार्थ ब्रह्म सत्, चित्, आनन्दरूप निर्विशेष है, वैसे ही उसके साथ ऐक्य होने से जीव भी सत्, चित्, आनन्दरूप निर्विशेष ही है। तथापि जैसे माया (विद्या) उपाधि से ब्रह्म सर्वज्ञता, अन्तर्यामिता, भूतानुकम्पिता आदि कल्याण गुण-गणोंका भाजन होता है, वैसे ही अविद्या उपाधि के वश जीव अल्पज्ञ, दुःखित्व आदि अशुभ गुणों से युक्त हो जाता है। भोक्ता - जीव, भोग्य - शब्दादि विषय और प्रेरिता - परमात्मा है। ये तीनों विचारदृष्टि से ब्रह्म ही हैं[7]। इन वचनों के अनुसार सम्पूर्ण द्वैत जब मिथ्या ही भासता है, परमार्थ में नहीं। तब जीव में कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुखी आदि भी मिथ्या ही है, अध्यस्त ही है। जीव का वास्तविक स्वरूप सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं। इस प्रकार के ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से अर्थात् स्वाश्रयभूत परिपूर्ण परब्रह्म के साथ जीव के अभेदज्ञान से ही सायुज्य मुक्तिरूप कैवल्य प्राप्त होता है। यही जीव की कृतकृत्यता है। यही परम् पुरुषार्थ की सिद्धि है। इस आत्मज्ञान के जानने में मनुष्यमात्र ही नहीं, किन्तु इन्द्रादि देवता भी अधिकारी हैं। इसलिए इन्द्रादि देवता लोगों ने भी आत्मतत्त्व की जिज्ञासा से ब्रह्मा के पास जाकर ब्रह्मचर्यपूर्वक तत्त्वज्ञान का सम्पादन किया। अतएव परम् शान्ति और विश्रान्ति के अभिलाषी पुरुषको आत्मतत्त्व के ज्ञान के लिए गुरुपरम्परा से अध्यात्मशास्त्र (वेदान्त शास्त्र) का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है[8]। "मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः। अविद्यावशगस्त्वन्यः तद्वैचित्र्यादनेकधा॥ भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्व प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्"[9]।

इस आत्मतत्त्व का विशद विवेचन यद्यपि समस्त वेदों, उपनिषदों में पर्याप्त है, इस प्रकार वेदों के अनादि होने से यह अद्वैतवाद यद्यपि संसार में अनादि काल से ही विद्यमान है, तथापि युग के ह्रास के अनुसार मनुष्य की ज्ञानशक्ति का ह्रास होता देखकर अज्ञान के वशवर्ती जीवों के कल्याण की कामना से द्वैपायन भगवान् वेदव्यास जी ने चार अध्यायों में उत्तरमीमांसा (ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेदान्तदर्शन) की रचना करके उसमें समस्त वेदों के अतिगूढ़ रहस्य आत्मतत्त्व के स्वरूप का स्पष्ट निरूपण किया। कालचक्र के प्रभाव से जब इस कलिकाल में सद्धर्म का, वैदिक धर्म का प्रचार और अनुष्ठान लुप्त हो गया और आत्मतत्त्वके स्वरूप का ज्ञान भी प्रायः कुछ उच्चकोटि के महापुरुषों में सीमित रह गया था, तब वैदिक धर्म के प्रभाव के मन्द पड़ जाने से जन सामान्य प्रायः श्रुतिसम्मत विशुद्ध अद्वैत ब्रह्मवाद को भूलकर अवैदिक भ्रान्त सम्प्रदायों द्वारा प्रचारित धर्मों को ग्रहण करने लग गया। तब उस अज्ञान प्रधान समय में साक्षात् परमात्मा की ज्ञानशक्ति ने ही श्रीशंकराचार्य के रूप में प्रकट होकर देशव्यापक अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक वैदिक धर्म-कर्म का एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किया[10]। सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि जीव के परमेश्वर रूपता के प्रतिपादक वाक्य को महावाक्य कहे जाते हैं। ये वाक्य ही यहाँ इष्ट हैं। ईश्वर प्रत्यक्षानुमानादि का अविषय है अतः उसके स्वरूप के विषय में केवल वेद ही आप्त हो सकता है। अतः वैदिक महावाक्य द्वारा प्रतिपादित एकता ही प्रमाण है[11]। महावाक्यों से एकता का विधान नहीं, केवल ज्ञापन किया गया है। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थरूपता का विधान असम्भव है। युक्ति से सम्भावित और सर्वदा सिद्ध एकता का विरुद्धांश निवृत्त करके प्रकट करना ही वेद का तात्पर्य है। सर्वज्ञात्ममुनि ने पञ्चप्रक्रिया में व्याख्यायित किया है कि अविद्यानिवृत्ति एवं स्वस्वरूपानन्दावाप्ति - ये दो वेदान्त के परम प्रयोजन हैं, जिसमें ब्रह्मसम्बन्धी अविद्यानिवृति शास्त्रज्ञान से ही सम्भव है अर्थात् शास्त्र प्रत्यगात्मा में अविद्या द्वारा अध्यारोपित उन धर्मों को निवृत्त मात्र करता है जो उसके (आत्मा) होते ही नहीं हैं। **"शास्त्रं हि प्रत्यगात्मनि अविद्याध्यारोपितमतद्धर्मं निवर्तयत्येव केवलम्, न तु तं कर्मी करोति"[12]।** इसके अतिरिक्त अखण्डवाक्यार्थ का ज्ञान होने के पश्चात् तत्त्वज्ञानी में कृतकृत्यता आ जाती है।

जीव सदा ब्रह्मरूप ही है, परन्तु मोहजन्य द्वैतप्रपञ्च के कारण उनमें भेद भासता है। वेदान्तवाक्यों के समन्वय द्वारा ब्रह्म की परोक्षता और जीव की परिच्छिन्नता मिट जाती है, तब पुनः जीव-ब्रह्म के अभेद का अपरोक्ष अनुभव होता है। इसके बाद उस तत्त्वज्ञानी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। इस स्थिति में 'कृतं कृत्यम्', 'प्रापणीय प्राप्तम्' इन वाक्यों द्वारा वह अपने में सदा कृतकृत्यता का अनुभव करता है[13]।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मुमुक्षु को अद्वैततत्त्व का अपरोक्षानुभव हो जाने के बाद ज्ञानी का शरीरादि में अभिमान नहीं रह जाता है। वह अपने शरीर को आत्मा से पृथक् वैसे ही देखता है और उसमें वैसे ही अभिमान नहीं रखता, जैसे सर्प छोड़ी हुई केंचुली को अपने से पृथक् देखता है और उसमें अभिमान नहीं रखता। जीवन्मुक्त को यह अनुभव होता है कि अब मुझे मोक्ष का अधिगम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया जैसे कि सामान्य जनमानस को जीवन भासता है। अब मैं हथेली पर रखे बिल्वफल की भाँति प्रत्यक्षतः अद्वैत का अनुभव कर रहा हूँ [14]।

---

[1] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 7

[2] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 7

[3] श्री.भा.म. (मूलमात्रम्), गीताप्रेस, गोरक्षपुर, श्लोक नं 1.2.9-10, पृ.सं. 50

[4] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 6

[5] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 8

[6] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 9

[7] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, श्वे.उ. 1-12, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 10

[8] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 10

[9] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, श्वे.उ. 1-12, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 10

[10] नै.सि., डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, पृ.सं. 11

[11] श्री महेशानन्दगिरि स्वामी, श्रीदक्षिणामूर्तिमठः, मानसोल्लास, 3.10, पृ.सं. 117

[12] लेंग्वेज एण्ड रीलीज, पञ्चप्रक्रिया सहित, पृ.129

[13] रूपं तावकमुज्झितद्वयमभूदद्वैतमेवाञ्जसा तच्चाद्वैतमपास्य मोहजनितं पारोक्ष्यमात्मा ह्यभूत् । एवं वेदशिरः पदान्वयवशादेकत्वमेकान्ततः सिद्धं प्रत्यगनन्तयोरिति तव श्रेयः समाप्तिं गतम्॥ 1/269॥ सं.शा. पृ. 329

[14] अद्वैतमप्यनुभवामि करस्थबिल्वतुल्यं शरीरमहिनिर्ल्वयनीव वीक्षे।
एवं च जीवनमिव प्रतिभासमानं निःश्रेयसोऽधिगमनं च मम प्रसिद्धम्॥ 4/55 ॥ वहीं, पृ. 698

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. सुरेश्वराचार्य, नैष्कर्म्यसिद्धि, डॉ. प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, संवत् 2007
2. सर्वज्ञात्ममुनि, संक्षेपशारीरकम्, श्रीस्वामीरामानन्दकृत भावदीपिका हिन्दीव्याख्या सहितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1987
3. सर्वज्ञात्ममुनि, पञ्चप्रक्रिया, इवान् कोमरेक कृत (Language and Release) आङ्ग्लानुवादसहित, दिल्ली,मोतीलाल, बनारसीदास, 1985
4. सुरेश्वराचार्य, मानसोल्लास, श्री महेशानन्दगिरि स्वामी, श्रीदक्षिणामूर्तिमठः, वाराणसी, 2009

Email: satyamuditajnu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 166-170
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमाउँनी काव्य में लोक विश्वास एवं रूढ़ियों का अध्ययन

गरिमा पंत त्रिपाठी
विषय –हिंदी,
हल्द्वानी उत्तराखण्ड (नैनीताल)

कुमाऊँ में लोक विश्वास एवं रूढ़ियाँ समाज में सदियों से जनश्रुति के रूप में प्रचलित है। जन समाज में अधिकांश लोग इसे संस्कृति का अंग मानते हुए विश्वास के साथ पालन भी करते हैं। कुमाउँनी समाज में प्रचलित लोक विश्वास एवं रूढ़ियाँ जीवन शैली का अंग बन गयी है, जिससे लोग इनसे स्वभाविक रूप से जुड़ गये है। सामान्यतः हम अपने परिवार आसपास के वातावरण में देखते हैं कि परिवार में किसी के अस्वस्थ होने पर या बाधा आने पर भूत-प्रेत, दैवीय प्रकोप, मृत व्यक्ति की आत्मा के आने की आशंका करते हैं। इन बाधाओं को शान्त करने हेतु जागर लगाना, तन्त्र-मंत्र, पूजा-पाठ करना जानवरों की बलि देना जैसी क्रियाओं को करते हैं, जिससे मृतक की आत्मा को शान्ति एवं अन्य बाधाओं के दूर होने की आशा करते हैं।

समाज के लोगों की धारणा है, यदि साँप, बिच्छू या अन्य कीटों के काटने पर मंत्र विद्या द्वारा विष का प्रभाव कम हो जाता है, उक्त समस्याएँ आने पर सर्वप्रथम लोग तांत्रिक व मंत्र विद्या को जानने वाले व्यक्ति के पास जाते हैं ।समाज में आज भी कई लोग कमर दर्द, पीलिया, लकवा जैसे रोगों से निजात पाने के लिए झाड़-फूक, तंत्र-मंत्र प्रक्रिया द्वारा उपचार कराते हैं। कुमाउनी समाज के लोग शगुन-अपशगुन जैसी विचार धारा को मानते हैं, जैसे कि घर से निकलते समय पानी से भरा बर्तन मिलना, सुन्दर आभूषण पहने हुए सुहागिन स्त्री के दर्शन होना, शुभ संकेत है। इसके विपरित बिल्ली का रास्ता काटकर जाना, घर से जाते समय किसी के द्वारा छींकना, बिल्ली व साँप का लड़ना, सियारों का रोना, बिल्ली का रोना, जैसे कई अन्य धारणा अशुभ होने के संकेत मानते हुए लोग आज भी इन विचार को मानते हैं । कुमाउँनी समाज में मान्यता है, कि हिचकी अथवा बाटुली लगने पर हमें परिचितों द्वारा याद किया जाने का संकेत का अनुभव होता है, पैरों में खुजली होने पर यात्रा करनी होगी, दाऐं हाथ पर यदि खुजली हो तो धन के आने का संकेत, अथवा बाऐं हाथ पर यदि खुजली हो तो धन के खर्च होने का संकेत मिलता है ऐसी लोगों की धारणायें है, आँख का फड़कना से भी शुभ-अशुभ सूचना, कौए का मधुर मीठी स्वर में बोले तो घर में अतिथि का आगमन होगा, इस प्रकार की अनेक धारणायें आज भी हमारे समाज में प्रचलित हैं । इसमें से अनेक प्रचलित रूढ़ियों एवं लोक विश्वास का वर्णन करते हुए कुमाँउनी कवियों ने समाज की मानसिक विचार धारा एवं अन्ध विश्वास का खण्डन करने का प्रयास भी किया है।

कवि 'शिवदत्त सती' व्यक्ति की मृत्यु के बाद होने वाले 'श्राद्ध' भोज पर अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हुए कहते हैं कि हम सभी अपने जीवन काल में बड़े बुजुर्गों की सेवा कर उनकी इच्छा पूर्ति करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करें क्योंकि मृत्यु के बाद श्राद्ध, ब्रह्म भोज कराने से कोई लाभ नहीं-

''ज्यून छन दुःख दियो कर बरबाद/मरी बेर गया काशी करलै सराद/सराद में आई बेर मरिया नी खाना/बामणज्यू खाई जानी बिरादर नाना/तू मूरख समझछै इजा पाली मेरी/बामण का घर जाली सब चीज तेरी''[1]

कवि 'हीरा बल्लभ शर्मा' समाज में प्रचलित बलि प्रथा का वर्णन करते हुए इसका विरोध करते हैं। कवि का कथन है अपने स्वास्थ्य सुख की कामना करते हुए लोग ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए बलि प्रथा जैसी क्रिया करते हैं जो पूर्णतः अनुचित है-

''बलिदान कणि भाई नि पाना भगवाना/किलैक मारछा भाई पराई छ ज्यान''[2]

कुमाउँनी सभ्यता संस्कृति में मान्यता है, कि जब किसी को बाटुली (हिचकी) आती है, तो उन्हें उनके प्रियजन याद करते हैं। इस लोक विश्वास का वर्णन करते हुए कुमाउनी कवि 'कुतबचन्द' ने अपनी कविता में वर्णन करते हुए कहते हैं कि एक नारी अपने पति को याद करते हुए अपनी नन्द से कहती है, तुम्हारे भैया मुझे याद ही नहीं करते हैं, क्योंकि ना ही मुझे बाटुली लगती है और ना ही आग भुर भराती है। इस उक्ति से स्पष्ट होता है, समाज में आज भी लोक विश्वास जन मानस में व्याप्त हैं-

''तुमरा दाज्यू लै कभै याद करि हन/आग कन भुर भुर उभा है उठन।/बाटुई लै कभै मकें नी लागी उनरी/परदेश बीच मज के नि हिय धरी।।''[3]

सदियों से हमारे समाज में पूजा पाठ के नाम पर अनेक प्रथायें प्रचलित हैं। इनमें से कुछ प्रथाएँ अनुचित है, जो समाज के कुत्सित स्वरूप को प्रकट करती है। फिर भी जनमानस इसका पालन परम्परा मानकर करता है, इन ही क्रियाओं में बलि प्रथा भी है, यह प्राचीन काल से चलन में है इसलिए समाज के लोग इसे संस्कृति परम्परा या पूजा पाठ के अन्तर्गत आज भी इस कुरीति को मानते हैं।

'देवी थान' नामक कविता में कवि शेरसिंह बिष्ट 'अनपढ़' कुमाउँनी समाज में बलि प्रथा को मानने वाले लोगो की अज्ञानता, रूढ़िवादिता का परिचय देते हैं। इस प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि माता भगवती के पवित्र दरबार में जाकर यह लोग अपने दुःखों के निवारण हेतु मनोकामना पूर्ण की आशा करते हैं किन्तु भक्ति के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण बलि प्रथा जैसी अनुचित प्रक्रिया को भक्ति का अंग मानते है जो पूर्णतया अनुचित है-

''खुलि गई देवी द्वार, खुलि गई धरमाक किवाड़/लगण फै ग्ये साक घाट, छाजण फैगई खुखरि/माचण फैगई, खुखरि, माचण फैगई बड्याण/बटी गई चढ़हु बकार, धूप-बाति फूल पाति/जै लै छी म्यार मुठिन, खुजि पड़ी भ्यैर बकराक जै खुटिन।''[4]

हमारे समाज में अधिकांश प्रथायें धर्म के साथ मिलकर उसमें समाहित हो गयी हैं लोग उसे धार्मिक क्रियाओं का अंग मानते है। जिससे इसमें कुछ अनुचित परम्परा भी प्रचलित हो जाती है। कवि इस स्थिति को देखकर व्यथित हैं, अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं-

''का जै भेट पुजूल कुनैछी/का जै भेट पुजि ग्यै/गणि-माणि लगनै रयू/फर्र फरकी खुट यारो धरहुँ उनै रयू''[5]

कवि शेर सिंह बिष्ट अनपढ़ समाज में परिवर्तन की कामना करते है 'देवी थान' कविता में समाज में प्रचलित बलि प्रथा पर पूर्ण रूप से रोक लगाने का संदेश देते हैं -

''सोचन-सोचनै मैं, रूजि गऊँ,/आँसुलै मैं, भिजि गऊँ,/घुन-मुनइ, टेकन टेकनैं/देवी त्यार् दरबार में,पुजि गऊँ!/खुलि गई देवी द्वार/खुलि गई धरमा किवाड़/गच्छूयनै रयू मन में भाव/य अन्यार भौ छौ उज्याव?/ फर फरकी खुट यारो/धरहु उन रयूँ''[6]

कुमाउँनी समाज में 'जागर' नामक पूजा पद्धति प्रचलन में है। समाज में मान्यता है कि जो व्यक्ति दुःखी अवस्था में या अल्पकाल में मृत्यु को प्राप्त करता है वह प्रेत बन जाता है, अपनी सन्तुष्टि के लिए अपने परिवार के लोगों के पास आता है। अपनी मन व आत्मा की शान्ति के लिए उन्हें संकेत देता है या परिवार को प्रभावित करता है, परिवार के लोग इसे 'देव बाधा' मानकर मृतक की आत्मा की शान्ति हेतु 'जागर' लगाते हैं। समाज में प्रचलित परम्परा व लोक विश्वास के रूप में आज भी जनमानस में विद्यमान है। कवियत्री 'देवकी महरा' ने 'जागर' कविता में कुमाउँनी समाज प्रचलित इस पूजा पद्धति का वर्णन किया है ''क्वे जगरी बंण गई, क्वे डंगरी बंण गई/मनिकसि नि भई जब, दौंकार वै ऐजानी द्याप्त/जागर लागी जब डङरिया कान में फैं जानी दयाप्त''[7]

समाज के लोगों का विश्वास है कि 'जागर' में डंगरी एवं जगरी लोक कथाओं का गायन कर लोक देवता का आह्वाहन करके लोक देवताओं जैसे-भोलेनाथ, हरू, सैम, बाला-गोरिया आदि को बुलाते हैं । जिससे मृतक आत्मा प्रकट होकर अपनी मुक्ति के लिए प्रकट होती है व बलि की माँग करती है। इस प्रकार की पूजा प्रक्रिया से भगवानों को मनाते हैं। रूढ़िवादी यह परम्परा समाज में अन्ध विश्वास फैला रही है। इन्हें रोकने के लिए शिक्षित समाज की आवश्यकता है-

''जागर लागाला जब/डंगरिया कान में फै जानी द्याप्त्।/जगरी कैं टांक पैरै/डगरि कैं बाकर खवै,/चांण बाणन कैं मुर्ग खवै,/कैलास हूं न्है जानी दयाप्त्।''[8]

बिना विचार करे आज भी लोग लोक विश्वासों पर आस्था रखते हैं। इन रूढ़िवादी परम्परा से शिक्षित लोग भी मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। आज भी लोगों की प्राचीन मान्यताओं में गहन विश्वास है; घर में कोई बाँधा आने या बीमार होने पर 'पुछयारी' अर्थात् इस विद्या को जानने वाले के पास जाते हैं-

''बिमार भया तुमरै कान पकड़नी/कैंसर लै भयो/तुमरी चुकटि रगड़नी/पढ़ी लगानी तलि है दौडनी''[9]

कवियत्री का कथन है समाज में फैले लोक विश्वास से आडम्बरों में वृद्धि से समाज का स्वरूप विकृत हो रहा है, लोग रूढ़िवादी विचार धारा में जकड़े हैं। उचित-अनुचित का विचार किये बिना रूढ़िगत विचारधारा का पालन करते हैं। इससे सम्पूर्ण समाज का विकास अवरूद्ध होता है-

''हम जत्ती छा उत्ती रया/पुस्त बिति गई/तुमर राऽस लगौण में''[10]

लोक विश्वास के नाम पर कुछ लोगों ने इसे धन अर्जन करने का व्यवसाय बना लिया है। लेखिका 'जागर' कविता के माध्यम से ऐसे लोगों का वर्णन करते हुए कहती हैं कि रूढ़िवादी प्रथा का उपयोग करने के लिए तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत बाधा जैसी समस्याओं का उपचार करने की विधि का प्रचार-प्रसार करते हैं और अपनी सन्तान को आधुनिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा से विमुख रखते हैं-

''नानतिना के डङरी बणैंण में/फटियै रे गई आङक टाल/ननतिन है गई ट्वाल''[11]

समाज में व्याप्त रूढ़ियों, परम्पराओं में अनुचित धारणाएँ, कुछ अन्धविश्वास भी सम्मिलित हो गये है। लोग इन्हें संस्कृति का अंग मान कर इनका अनुश्रवण करते हैं जिनसे समाज का विकास भी अवरूद्ध हो रहा है। इन्हीं अन्धविश्वासों को दूर करने हेतु कवियत्री ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहती हैं। आप ऐसे अन्धविश्वासी रूढ़िवादी लोगों को सद्बुद्धि दे-

''आब-जागर लगाला जब/डंगरिया कान में कै दिया/देबकि कौंणैछी कै दिया।/जो तुमरि-पुज लग नि करन-/उ पुजि गयीं चन्द्रलोक,''[12]

'जाओ बेटी' कविता में देवकी महरा का कथन है समाज में नारी को परम्पराओं के नाम पर परिवार समाज द्वारा अनेक रीति रिवाजों के बन्धन में रखा जाता है, नारी के जन्म से ही कहा जाता है कि बेटी पराये घर की अमानत है, उसे एक न एक दिन अपने घर जाना ही होता है, माता-पिता के मन में यही भाव बेटी के जन्म होने से आजीवन मन में रहता है, इसीलिए पुत्री को हर कार्य के लिए रोक लगाते हैं।

'सौरास करिये' कविता में रचनाकार ने उस मान्यता पर प्रकाश डाला, जिसमें माता-पिता पुत्री को पराये घर की अमानत मानते है लड़की को ससुराल भेजना ही अपना कर्तव्य समझते हैं व विवाह करना ही उन्हें अपना लक्ष्य नजर आता है-

''पुन्यू जून बणौल, आपण ख्वरक ब्वज बिसैन/चार दिन चेली भलि कै रये, जे करली सौरास करियै। जाओ तुम लाड़ो मेरी, परदेश बसन/सौपी हाली ज्वाई ज्यू, आपणी जै जात''[13]

'बाजि कुड़िक पहरू' कविता में राजेन्द्र बोरा का कथन है लोग भूत प्रेत छल से मुक्ति के लिए पूजा पाठ करते हैं, जानवरों की बलि देते है; किन्तु मेरे मन में ऐसे लोगों का छल बैठ गया है जो मानव जाति के विनाश हेतु कुमाऊँ की प्रकृति एवं समाज में लूट खसोट, भ्रष्टाचार जैसी गतिविधियों में लिप्त रहते हैं। मेरा मन विचलित है; कि समाज में व्याप्त इस आडम्बर दोहरा माप दण्ड का अन्त कब होगा? अतः अनुचित परम्पराओं का समापन आवश्यक है-

''है लांग करि हालो और मंगना नर अठवार/यौछौ कसिकै थामिलिये लो/यौ छौव कसिकै सादियलौ''[14]

समाज में आज अनेक लोग परिवार में आने वाली कठिनाई के लिए अन्धविश्वास रूढ़ियों के प्रभाव में आकर मन में काल्पनिक बातों को सत्य मानते हुए उसका उपाय खोजते हैं-

'देबुलि भौजि कै लाग मसाण' कविता में कवि जुगल किशोर पेटशाली ने समाज में प्रचलित अन्धविश्वास का वर्णन अपने काव्य द्वारा प्रकट करते हुए लोगों की मानसिकता का चित्रण दो मित्रों के आपसी बातचीत द्वारा प्रकट किया है-

''छोड़ हो भौन्दा तु परलोक है रोछे/पैली फुक तस कुकैल बुलाण''/मेरि स्यैणि है रै द्वि महैण बै बिमार,/यके लागि रौ बलि विसनाथौ मसाण/तैक कारण पुर परिवार के सुख नहॉ,/तके रीत नीन नहॉ में के दिन भुख न्हॉ।/आब कि करू भोनियॉ त्वी बतूने कन,/आ बैठ बिडि पे जरा मली ऊने कन।''[15]

आज के वैज्ञानिक दौर में भी समाज में आडम्बरों का जाल बढ़ता जा रहा है, लोग दिन प्रतिदिन इसके प्रभाव में अधिक मुड़ रहे हैं। तंत्र-मंत्र, भूत, मसाण पूजन करने के लिए बलि प्रथा, जादू, टोने टोटके करते हैं। कवि व्यथित होते हुए इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

''द्याप्ताक नाम पर मैन/ ढुंग तक पुजि हाली/बरमांड भितेर चड़कन भड़कन/राति भरि स्वैण में हलकन बलकण''[16]

जिस ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है लोग उसे मानव छल-कपट झाड़फूक व अन्य क्रियाओं का आश्रय लेकर प्रसन्न करने का दिखावा करते हैं समाज में हो रहे इन दिखावे से मानव स्वास्थ्य, धन, समय एवं सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है कवि सम्पूर्ण समाज को शिक्षित करते हुए कहते हैं, स्वास्थ्य की रक्षा हेतु झाड़-फूक, तंत्र-मंत्र क्रियाओं से दूर रहते हुए आधुनिक चिकित्सा पद्धति से स्वास्थ्य लाभ लेते हुए उचित जीवन शैली को अपनाएँ।

संदर्भ सूची-

1. पालीवाल नारायण दत्त; कुमाउँनी (हिन्दी के उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 106
2. पालीवाल नारायण दत्त; कुमाउँनी (हिन्दी के उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 126
3. पालीवाल नारायण दत्त; कुमाउँनी (हिन्दी के उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 126
4. भट्ट दिवा सं0; पछ्याण, सामूहिक पत्रिका, पृष्ठ संख्या 4
5. भट्ट दिवा सं0; पछ्याण, सामूहिक पत्रिका, पृष्ठ संख्या 4
6. भट्ट दिवा सं0; पछ्याण, सामूहिक पत्रिका, पृष्ठ संख्या 4
7. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 67
8. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 67
9. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 68
10. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 67,68
11. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 68
12. महरा देवकी; निशास, पृष्ठ संख्या 67
13. भट्ट दिवा पछ्याण;सं0 , पृष्ठ संख्या 22
14. जनौटी बालम सिंह; किरमोई तराण, सामूहिक पत्रिका, पृष्ठ संख्या 29
15. पेटशाली जुगल किशोर; बखत, पृष्ठ संख्या 39
16. पेटशाली जुगल किशोर; बखत, पृष्ठ संख्या 41

ईमेल garimapant14902gmail.com
मो0न0: 9456572421, मो0नं0: 7248800825

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 October 2025 Page No. : 171-173
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समुदायिक सशक्तिकरण में संवाद/समाधान का महत्व

डॉ. अश्वनी कुमार ध्रुव
प्रोफेसर,
शास.महाविद्यालय नगरी,जिला–धमतरी (छ0ग0)

संवाद शब्द तीन शब्दों के योग बना है। सम + वद –यञ जिसका अर्थ होता है – वार्तालाप, बातचीत जिसे अंग्रेजी में Dialogue , Converstion या Communication कहते है। दो या दो से अधिक लोगों के बीच की बातचीत या विचारों का आदान–प्रदान होता है। यह लिखित या मौखिक संचार का एक रूप, जिसमें लोग एक विषय पर बात करते है। संवाद में एक स्त्रोता या एक वक्ता होता है, कभी अनेक स्त्रोता और एक वक्ता होता है। वक्ता और स्त्रोता की भूमिका बदलती रहती है। बातचीत औपचारिक भी होता है और अनौपचारिक भी। अलग–अलग समुदाय, समाज धर्म में अभिवादन की अलग–अलग पद्धतियां होती है, जिसे शिष्टाचार कहते है। शिष्टाचार –समाजिक सबंधो से कायम होता है। उदाहरण नमस्कार, आलेकूम सलाम, राम–राम, सनम्र निवेदन, विनम्र प्रार्थना, अनुमति सुझाव आदि। संवाद से ही हम अपने दिनचर्या का आरंभ करते है और संवाद से ही हमारे दिनचर्या का अन्त होता है। संवाद भाषा संप्रेषण का प्रमुख आधार है। संवाद की प्रकिया काम को बनाता है और बिगाड़ता भी है। संवाद का दो रूप माना गया है औपचारिक और अनौपचारिक। अनौपचारिक संवाद में भाषा बोलचाल की होती है अर्थात् मौखिक होती है। औपचारिक संवाद, तर्कसम्मत व संस्कारित होता है। प्रमाणित संवाद एक सरल और प्रभावी शुरूआत है। जिसमें लोग अपना अनुभव व दृष्टिकोण साझा करते है, और दुसरों को समझने का प्रयास करते है। जब हम संवाद में करते है तो जो दुसरो के लिए सत्य है उसे सुनना अपने लिए जो सच है उसे साझा करना एवं यह जानने की कोशिश करना कि हममें क्या समानता है।

जब हम अपने समाज के इतिहास को सुनते है और विचार करते है और खोजते है, तब अर्थपूर्ण निर्णय ले पाते है। संवाद एक ऐसा वातावरण बनाता है जो विभिन्न संगठनों, समुदायों के दृीष्टिकोण का सम्मान करके गहन चिंतन मनन करने के बाद विश्वास पैदा कराता है।

संवाद सम्प्रेषण की शुरूआत बाल्यकाल से होता है जब बच्चा जन्म लेता है वह रोता है। यह मानव समाज से पहला संवाद होता है। धीरे–धीरे वह बोलना सीखता है, अपनी मां भाई, बहन परिवार और समाज की भाषा को अनुकरण करता है। फिर वह स्कूल जाना प्रारंभ करता है जहां से औपचारिक संवाद की प्रक्रिया हो जाती है। उसे बड़े और छोटों के बीच में शिष्टाचार सिखाया जाता है, धीरे–धीरे समझने लगता है कि उसे किसके साथ कैसे बात करनी है। बातचीत में हम जीवन के कई प्रकार के काम करते है। यह मूलतः विचारों का आदान प्रदान का माध्यम है। चर्चा का विषय पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक , संस्कृतिक , आर्थिक, कानून गत हो सकता है। जहां हम प्रश्न करते है। प्रश्नों का उत्तर देते है। हम वक्ता या इनकी बात से सहमति या असहमति व्यक्त करते है। इस कार्य में हमें कई अन्य युक्तियां अपनानी पड़ती है। विषय वस्तु पर नई बात जोड़ते है या कही हुई बात का विरोध करते है और अपना विचार रखते

है। यदि हम किसी बड़े व्यक्ति के मत का विरोध करें तो उसमें अभिवादन का गुण होना चाहिए । इस प्रकार समस्या का समाधान खोज निकालते हैं।

समाधान का अर्थ है किसी समस्या को हल करने की प्रक्रिया या किसी प्रश्न का उत्तर या किसी कठिनाई जटिल मुद्दे शंका को सुलझाने का तरीका, जैसे हल उपाय निराकरण निष्कर्ष या निपटारा या किसी प्रशन के उत्तर से मिलने वाली संतुष्टि या मन की शांति को संदर्भित करता है। समाधान का अंग्रेजी में मुख्य अर्थ है (Solution) (एक समस्या को हल करने का तरीका / Resolution (समस्या का समाधान) या किसी मतभेद को सुलझाने के संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें Conciliation (सुलाह) या Settlement (समझौता) जैसे अर्थ आते है।

समाधान का तात्पर्य समस्या का हल जैसे – आग है तो पानी है। धूप है तो छाँव है, गर्मी है तो ठंण्ड भी है, इसी प्रकार समस्या है तो समाधान भी होता है। पुरा जीवन चक्र इस समस्या– समाधान भी होता है। लेकिन बात यहीं नहीं रूकती है पुरा जीवन चक्र इस समस्या– समाधान कि आँख मिचौली में फँसा रहता है। तब तक जब तक जीवन का अंत न हो जाए।

एक समस्या का समाधान होता है तो दूसरी समस्या का आना तय है। दूसरी खत्म हुई तो तीसरी इस तरह हम जीवन जीते है। जिसे जीवन संघर्ष की कहानी हैं कहें तो ज्यादा अच्छा लगता है। जब आप कोई एक समस्या में उलझते हैं, तो आपको उस समस्या से निपटने का रास्ता भी दिखाई देता है । जीवन में कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका हल न मिल पाया हो। कोई ऐसा रोग नहीं जिसका निवारण न मिल रहा हो , और जब इनका हल मिल जाए उसे समाधान कहते है।

समस्या व्यक्तिगत, पारिवारिक, समाजिक, धार्मिक , आर्थिक, सांस्कृति का राजनीतिक हो सकता है। व्यक्तिगत समस्या का निवारण औपचारिक संवाद जैसे :– अफसर अधीनस्थ ,कर्मचारी, शिक्षक और विद्यार्थी, मालिक और नौकर, जज और वकील, डॉक्टर और मरीज, आदि साक्षात्कार में होता है जैसे :–

मरीज – नमस्कार डॉक्टर साहब

डॉक्टर – नमस्ते ! कहिये क्या तकलीफ है ?

मरीज – जी कल रात से बहुत बेचैनी है, पसीना भी बहुत आ रहा है, और बाएँ हाथ में दर्द भी है। पहले तो हल्का था मगर रात में बढ़ गया है।

डॉक्टर – देखिए फिलहाल मैं ये दवाएं लिख रहा हूँ। मगर आप अपना ई.सी.जी. और साथ में कुछ रूटीन टेस्ट करवाइये। अगले हफ्ते फिर आइयेगा।

मरीज – धन्यावाद डॉक्टर साहब।

व्यक्तिगत समस्या का समाधान औपचारिक संवादो एवं कार्य क्षेत्र की भाषा के अतिरिक्त– परिचय की सीमा और आत्मीयता का भी प्रभाव पड़ता है। परन्तु औपचारिक संवादो में यदि परिचय की सीमा अथवा आत्मीयता अधिक हो तो इसमें अनौपचारिकता का पुट भी आ जाता है। हमें अपने साथियों के बारे में किसी तरह कटु आलोचना या व्यक्तिगत आरोप से बचना चाहिए।

परिवारिक समस्या का समाधान संवाद की भाषा का चयन ,आयु, पद, लिंग,शिक्षा आदि कई कारकों पर निर्भर करता है। अगर हम समान्य भाषा में अर्थात घरेलु संदर्भ की बातचीत में औपचारिक भाषा के शब्दों या वाक्यों का प्रयोग करें तो सुनने में अटपटा लगता है जैसे –

पुत्री माँ से :– अगर आप मुझे रायपुर जाने की अनुमति दे सकें तो मै कृतार्थ होऊंगा।

व्यक्ति व्यवसायी से :– मैनें इस वस्तु को खरीदने का निर्णय कर लिया है।

इस प्रकार की संवाद में समस्या का समाधान न होकर जटिल हो जाएगा। इसमें संवाद अनौपचारिकता अथवा औपचारिकता दोनों हो सकती है। जैसे –

अनिल – अरे भाई रामावतार बड़े दिनों बाद दिखाई दिये।

अजय – हाँ अनिल आज ही महीने भर बाद शहर से आया हूँ।

अनिल – और सब खैरियत तो है ?

अजय – हाँ आप सब बड़े लोगों की दुआ है। जमीन का सौदा वौदा भी करना था।

सामूहिक संवाद का समाधान मित्र मण्डली घरेलू बातचीत शादी समारोह जन सभाओं आदि में सुने और बोले जाते है। सामुहिक समस्या का समाधान भी औपचारिक एवं अनौपचारिक संवाद से होते है। जैसे –

एक बेटी ने एक संत से आग्रह किया कि वो हमारे घर आकर बीमार पिता से मिले, प्रार्थना करें। बेटी ने यह भी बताया कि उसके बुजुर्ग पिता पलंग से उठ भी नहीं सकते । संत ने बेटी के आग्रह को स्वीकार किया। कुछ समय बाद जब संत घर आए तो उसके पिताजी पलंग पर दो तकियों पर सिर रखकर लेटे हुए थे और एक खाली कुर्सी पलंग के साथ पड़ी थी। संत ने सोचा कि शायद मेरे आने की वजह से यह कुर्सी यहां पहले से ही रख दी गई हो। संत ने पूछा – मुझे लगता है कि आप मेरे ही आने की उम्मीद कर रहे थे पिता – नहीं आप कौन है? संत ने अपना परिचय दिया और फिर कहा – मुझे यह खाली कुर्सी देखकर लगा कि आपको मेरे आने का आभास था।

पिता – ओह यह बात नही है ? आपको अगर बुरा न लगे तो कृपया कमरे का दरवाजा बंद करेंगे क्या ? संत को यह सुनकर थोड़ी हैरत हुई, पिर भी दरवाजा बंद कर दिया।

पिता – दरअसल इस खाली कुर्सी का राज मैंने आज तक किसी को नहीं बताया? अपनी बेटी को भी नहीं । पूरी जिंदगी मै यह जान नहीं सका कि प्रार्थना कैसे की जाती है। मंदिर जाता था ? पुजारी के श्लोक सुनता था, तो वो सिर के उपर से गुजर जाते थे। कुछ पल्ले नहीं पड़ता था। मैनें फिर प्रार्थना की कोशिश करना छोड़ दिया। लेकिन चार साल पहले मेरा एक मित्र मिला उसने मुझे बताया कि प्रार्थना कुछ नहीं , भगवान से सीधे संवाद का माध्यम होती है, उसी ने सलाह दी कि एक खाली कुर्सी अपने सामने रखीए फिर विश्वास करो कि वहां भगवान खुद विराजमान है अब भगवान से ठीक वैसे ही बात करना शुरू करो, जैसे कि अभी तुम मुझसे कर रहे हो। मैने ऐसा ही करके देखा, मुझे बहुत अच्छा लगा, फिर तो मैं रोज दो–दो घंटे ऐसा करके देखने लगा, लेकिन यह ध्यान रखता था कि मेरी बेटी कभी मुझे ऐसा करते न देख ले। अगर वह देख लेती, तो परेशान हो जाती यह वह फिर मुझे मनोचिकित्सक के पास ले जाती। यह सब सुनकर संत ने बुजुर्ग के लिए प्रार्थना की, सिर पर हाथ रखा और भगवान से बात करने के क्रम को जारी रखने के लिए कहा। संत को उसी दिन दो दिन के लिए शहर से बाहर जाना था। इसलिए विदा लेकर चले गए।

दो दिन बाद बेटी का फोन संत के पास आया कि उसके पिता की उसी दिन कुछ घंटे बाद ही मृत्यु हो गई थी। जिस दिन पिताजी आपसे मिले थे। संत ने पूछा कि उन्हे प्राण छोड़ते वक्त कोई तकलीफ तो नहीं हुई। बेटी ने जवाब दिया– नहीं, मै जब घर से काम पर जा रही उन्होने मुझें बुलाया मेरा माथा प्यार से चूमा, सह सब करते हुए उनके चेहरे पर ऐसी शांति थी, जो मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। जब मैं वापस आई , तो वो हमेशा के लिए आंखे मूंद चुके थे, लेकिन मैने अजीब सी चीज भी देखी। पिताजी ऐसी मुद्रा में थे जैसे , कि खाली कुर्सी पर किसी की गोद में अपना सिर झुकाए हों। संत जी वो क्या था ।

यह सुनकर संत की आंखो से आंसू बह निकले, बड़ी मुश्किल से बोल पाए – काश , मै भी जब दुनिया से जाऊं तो ऐसे जाऊं । बेटी ! तुम्हारे पिताजी की मृत्यु भगवान की गोद में हुई है। उनका सीधा सम्बंध भगवान से था। उनके पास जो कुर्सी थी उसमें भगवान बैठते थे और वे सीधे उनसे बात करते थे। उनकी प्रार्थना में इतनी ताकत थी कि भगवान को उनके पास आना पड़ता था।

आकर्षण अनेको के लिए हो सकता है , किन्तु समर्पण किसी एक के लिए होता है।

सदैव प्रसन्न रहिये। जो प्राप्त है, वो पर्याप्त है।

संवाद से समाधान बातचीत, विचारों का आदान प्रदान और सक्रिय श्रवण संघर्षों को सुलझाने का एक अहिंसक, शांतिपूर्वक और प्रभावी तरीका है जिसमें आपसी समझ बढ़ती है। और स्थायी न्याय संगत समाधान मिलते है, भले ही इसमें कुछ जोखिम और चुनौतियों भी हों। यह केवल वकालत करने के बजाय खोजबीन करने और विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने पर केन्द्रित होता है। जो अंततः एक सकारात्मक समाजिक परिवर्तन और सामुहिक उत्थान की ओर ले जाता है। हम उम्मीद करते है समस्याओं का समाधान में औपचारिक और अनौपचारिक संवादो का ध्यान रखेंगे। संवाद की कला सफलता की पूंजी है अगर यह कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए बोलते समय तौल–तौलकर बोलियें क्योकि मुंह से निकला शब्द और कमान से निकला तीर वापस नहीं आता।

बस इतना ही ध्यान रखिए ऐसी वाणी बोलिए, मनका आपा खोए।

संदर्भ ग्रंथ –

1. पाण्डेय कैलाशनाथ – संवाद और विमर्श – पृष्ठ 298
2. शर्मा ओ.पी. – पत्रकारिता और विभिन्न स्वरूप – पृष्ठ 128
3. प्रो. हुसैन शाहिद मुहम्मद – जन संचार परंपरा और प्रयोग
4. डॉ. सिंह दीपांकर – आधुनिक मीडिया लेखन – पृष्ठ 37
5. डॉ. शर्मा ओ.पी. – सामाजिक मनोविज्ञान – पृष्ठ 199

मो. 9617808055 , 9424237228